ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाका अठारहवां ग्रन्थ।

राष्ट्रीय आय-व्यय-शास्त्र।

लेखक—

श्रीप्राणनाथ विद्यालंकार।

ज्ञानमण्डल, काशी।

प्रथम संस्करण २०००]

मूल्य १।)

समर्पण ।

देश भक्त, कर्मवीर, विद्यावारिधि, प्रातःस्मरणीय

महर्षिप्रवर

श्रीमान् बाबू भगवानदासजी

के

चरण कमलोंमे

राष्ट्रीय आय व्यय शास्त्ररूपी

यह पुष्पाजलि

श्रद्धा-भक्ति पूर्वक

समर्पित ।

—लेखक ।

ग्रन्थकारका निवेदन

सम्पत्ति-शास्त्र जहां खतम होता है, राष्ट्रीय आयव्यय-शास्त्र वहांसे शुरू होता है। कुछ ही वर्षोंसे इस शास्त्रका महत्त्व विद्वानों-को प्रतीत हुआ है। प्रश्न यही था कि इसको सम्पत्तिशास्त्रका एक भाग समझा जाय या एक पृथक् शास्त्र माना जाय। निःसंदेह बहुतसे विद्वानोंने इसको सम्पत्तिशास्त्रके अन्तर्गत रखा है। हालैण्डके प्रसिद्ध अर्थतत्त्वज्ञ पियर्सनने अपने सम्पत्ति-शास्त्रके द्वितीय भागमें, और प्रोफेसर निकल्सनने तृतीय भागमें राज्यकर तथा राज्यकर प्रक्षेपण सम्बन्धी विषयोंपर प्रकाश डालते हुए इस विषयको उचित स्थान दिया है। चैप्मेनने भी अपने छोटेसे ग्रन्थमें इसका परित्याग नहीं किया है। इसके विपरीत बहुतसे विद्वानोंने इसको एक पृथक् शास्त्रका रूप दिया है। दृष्टान्त स्वरूप इंग्लैंडमें बैस्टेबल, अमरीकामें हेनरी कार्टर आडम्स, फ्रांसमें ली राब-ल्यूलियो और जर्मनीमें गुस्ताव कोन्ह बहुत बड़े राष्ट्रीय आय-व्यय-शास्त्रके लिखनेके कारण प्रसिद्ध हैं। महाशय सेलिग्मैनने राज्य करपर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं और उनके ग्रन्थ इस समय राज्यकरके सम्बन्धमें प्रामाणिक माने जाते हैं। ऐसे ऐसे विद्वानोंके छोटे तथा बड़े मिलाकर ८० ग्रन्थोंके संक्षिप्त नोटोंसे यह ग्रन्थ तैयार किया गया है और साथ ही पृष्ठके नीचे स्थान स्थानपर उन ग्रन्थोंका उद्धरण दे दिया गया है। इस ग्रन्थको तीन साल तक पाठ्य ग्रन्थके रूपमें विद्यार्थियोंको पढ़ाया भी जा चुका है। आज कल

इस विषयका अध्यापन प्राय: बी. ए. के बाद ही भारतीय आंग्ल-विद्यालयोंमें शुरू होता है। इस विषयका महत्त्व तथा काठिन्य इसीसे स्पष्ट है।

सम्पत्तिशास्त्रके साथ इस विषयका कितना सम्बन्ध है, इसका ज्ञान राज्यकर संभारके नियमोंसे ही जाना जा सकता है। भूमिके सम्बन्धमें रिकार्डोके लगान सम्बन्धी सिद्धान्त अति स्पष्ट है। प्रोफेसर हाक्सनने उसको श्रम तथा पूंजीके संबंधमें भी चरितार्थ किया है। इस ग्रन्थमें रिकार्डो तथा हाक्सनके आर्थिक लगानपर राज्यकर-प्रक्षेपण, कर विचालन तथा कर-संरोपण सबंधी नियमोंको दिया है। जिनको रिकार्डो तथा हाक्सनके आर्थिक लगान-सिद्धान्तका ज्ञान नहीं है उनके लिए इस ग्रन्थका समझना असम्भव है। यही बात उपयोगिता, सीमान्तिक उपयोगिता, न्यूनतम तथा अधिक हस्तक्षेपके सिद्धान्तोंके द्वारा राजकीय हस्तक्षेप तथा व्यष्टिवादके प्रश्नको सरल करनेमें है। संक्षिप्त नोटोंके सम्मिश्रणसे तैयार किये जानेके कारण ग्रन्थके काठिन्यने और भी उग्र रूप धारण कर लिया है।

इस ग्रन्थका सम्पादन कई महाशयोंके द्वारा हुआ है। इसके पहले दो फर्मोंका सम्पादन श्रीमान् बाबू श्रीप्रकाशजीने किया। उनके सम्पादनका क्रम यह था कि प्रत्येक पैरेका संक्षेप उसके साथ दिया जाय और मुख्य प्रकरणका एक पृष्ठपर और परिच्छेद शीर्षकका दूसरे पृष्ठपर उल्लेख किया जाय। इसके बाद इस ग्रन्थका सम्पादन प्रोफेसर रामदास गौड़के हाथमें गया। ग्रन्थके सम्पादनमें कुछ कठिनाई देखकर उन्होंने इस ग्रन्थका सम्पादन एकमात्र मेरे हाथमें दे दिया। ३९८ पृष्ठ तक इस ग्रन्थका सम्पादन मैं ही करता रहा। उसके बाद श्रीमुकुन्दी लालजीने इस ग्रन्थका प्रबन्ध अपने हाथमें लिया।

समय आया तो पाठकोंके सम्मुख कदाचित् यह ग्रन्थ द्वितीय संस्करणके समय अपने स्वच्छरूपमें आसके।

इस ग्रन्थके संबंधमें दो महाशयोंको मैं विशेष रूपसे धन्य-वाद देना चाहता हूँ। एक तो बाबू श्रीप्रकाश जी हैं जिन्होंने विशेष श्रमके साथ इस ग्रन्थके पहले दो फर्मोंका सम्पादन किया। निःसंदेह उनका सम्पादन आदर्श-सम्पादन था। लेखक का यह दौर्भाग्य है कि उनके जैसे महानुभाव उदार तथा-योग्य व्यक्तिकी कृपा इस ग्रन्थ पर चिरकाल तक न बनी रही। दूसरे बाबू शिवप्रसादजी हैं जिनकी उदारताकी प्रशंसा करना सूर्यको दीपक दिखाना है। इति शम्।

काशी।
१८-४-२२

प्राणनाथ।

इस विषयपर प्रकाश डालने वाली अन्य उपयोगी पुस्तकें।

---*---

कौटिल्य	... अर्थशास्त्रम्
श्रीप्राणनाथ विद्यालंकार	... भारतीय संपत्तिशास्त्र
जे० ए० निकलसन	... प्रिन्सिपिल्स आफ़ पोलिटिकल एकानामी—
बेंथम	... पेपर्स ऑन दी लेवलिंग सिस्टेम
सिडनी एन्ड वेब	.. इंडस्ट्रियल डिमाक्रेसी
शाफल	.. क्विन्टेसन्स आफ सोशलिज़्म
मेगुएल बील	... बुद्धिष्ट रिकार्ड्स आफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड
डिग्बी	... प्रास्परस ब्रिटिश इण्डिया
सी० डबल्यू० ई० काटन	... हैन्डबुक आफ कमर्शियल इन्फर्मेशन
वी० जी० काले	... इण्डियन इंडस्ट्रियल एन्ड एकानामिक प्राब्लेम्स
श्रीरमेशचन्द्र दत्त	... इंडियन एकानामिक्स,
„	... इंडिया अनडर अर्ली ब्रिटिश रूल,
„	... इंडिया इन दि विक्टोरियन एज,
„	... फैमीन्स इन इण्डिया
हेनरी कार्टर आडम	... दी साइन्स आफ फाइनान्स
सैलिग्मैन	... एसेज इन टैक्सेशन

सैलिग्मैन	... इंसिडेंस आफ टैक्सेशन
सी० एफ० बैस्टेबल	... पब्लिक फाइनांस
वी० जी० काले	... इंडियन एकानामी
आदम स्मिथ	... इंग्लिश इन्डस्ट्रीज़ एन्ड कामर्स, वेल्थ आफ नेशन्स
निकलसन रूसो	... प्रिन्सिपिल्स आफ पोलिटिकल एकानामी
सी० एस० देवा	... पोलिटिकल एकानामी
वाकर	... पोलिटिकल एकानामी
कोहन	... दी साइन्स आफ फाइनांस
सैलिग्मैन	प्रोग्रेसिव टैक्सेशन, दि इनकम टैक्स
जे० एस० मिल	प्रिन्सिपिल्स आफ एकानामी
एन० जी० पियर्सन	प्रिन्सिपिल्स आफ एकानामी
पोलक तथा मेटलैंड	हिस्ट्री आफ इंग्लिश
एजवर्थ	प्योर थ्योरी आफ टैक्सेशन
बोकस	पब्लिक एकानामी आफ दि अथेनियन्स
हाब्सन	इकानामिक्स आफ डिस्ट्रीब्यूशन
× × ×	एसेज़ इन टैक्सेशन इन अमेरीकन स्टेट्स एन्ड सिटीज़
रिचर्ड टी० एली	मानोपोलीज़ एन्ड ट्रस्ट्स
टासिग	... प्रिन्सिपिल्स आफ एकानोमिक्स
बेजहाट	... लम्बार्ड स्ट्रीट
लीयोनार्ड एल्स्टन	... एलिमेन्ट्स आफ-टैक्सेशन
गोखले ”	... एलिमेन्ट्स आफ इंडियन टैक्सेशन स्पीचेज़

× × × … इंपीरियल गजेटियर आफ इन्डिया भाग ३

× × × एन्नुअल फाइनांसियल स्टेटमेन्ट

आदम स्मिथ … पब्लिक डेट्स

गोखले नेशनल फाइनेन्स

वी० जी० काले … गोखले एन्ड एकानामिक रिफार्म्स

सर ए० वेस्ट … रिकलेक्शनस् आफ मि० ग्लैडस्टन

प्रोफेसर श्रीहन … पब्लिक फाइनान्स

वाचा … रिसेन्ट इंडियन फाइनान्स

आर—रंगस्वामीआयगर … दी इंडियन कांस्टिट्यूशन

टाड पार्लमेन्टरी गवर्नमेन्ट आफ इंग्लैंड

विषय-सूची ।

प्रथम भाग

राष्ट्रीय हस्तक्षेप ।

द्वितीय परिच्छेद ।

राष्ट्रीय हस्तक्षेप १६–३०

तृतीय परिच्छेद ।

व्यष्टिवाद ३१–५७

चतुर्थ परिच्छेद ।

भारत सरकारका भारतीय कृषि, व्यापार तथा व्यवसायमें हस्तक्षेप ५८–७८

पञ्चम परिच्छेद ।

भारत सरकारकी आर्थिक नीति तथा राष्ट्रीय आय-व्यय ७६–११६

——*——

द्वितीय भाग

राष्ट्रीय आय।

(प्रथम खण्ड)

प्रथम परिच्छेद।

द्वितीय परिच्छेद ।

राज्यकरके नियम १५६-१८१

तृतीय परिच्छेद ।

राज्यकर विभागके नियम १८२–२१३

चतुर्थ परिच्छेद ।

राज्यकर संभारके नियम २१४–२५१

पञ्चम परिच्छेद ।

भिन्न२ आयोंपर राज्यकर प्रक्षेपणके नियम २५२–२८४

षष्ठ परिच्छेद ।

सप्तम परिच्छेद ।

अष्टम परिच्छेद ।

—— * ——

द्वितीय खण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

द्वितीय परिच्छेद ।

तृतीय परिच्छेद ।

तृतीय खण्ड।

प्रत्यक्ष आय

प्रथम परिच्छेद।

जातीय सम्पत्तिसे राज्यकी आय ४२३–४३२

द्वितीय परिच्छेद।

राजकीय व्यवसायोंसे आय ४३३–४३८

तृतीय परिच्छेद

भारतीय सरकारकी प्रत्यक्ष आय ४३९–४४२

तृतीय भाग ।

राष्ट्रीय व्यय

प्रथम परिच्छेद ।

राजकीय व्ययका स्वरूप ४४७–४८६

द्वितीय परिच्छेद ।

राजकीय व्यय सिद्धान्त ४८७–४९२

तृतीय परिच्छेद ।

बजट ४९३–५२६

———

राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र

प्रथम भाग

राष्ट्रीय-हस्तक्षेप

उपक्रम

राष्ट्रीय आय व्ययका आधार राष्ट्रीय हस्तक्षेप है। बिना राष्ट्रीय हस्तक्षेपके न आय ही सम्भव है न व्यय ही। यही कारण है कि राष्ट्रीय आय व्ययका प्राण राष्ट्रीय हस्तक्षेप माना जाता है। अर्वाचीन आय-व्यय शास्त्रके लेखकोंने राष्ट्रीय हस्तक्षेपको एक पृथक् भागमें स्थान नहीं दिया है। इससे विषयके स्पष्ट करनेमें कुछ कुछ बाधा अवश्य पड़ी है। भारतमें राष्ट्रीय हस्तक्षेप प्रत्येक पगपगपर विचारास्पद है। जातीय दारिद्य तथा ह्रासका एकमात्र आधार इसीपर है। भारत सरकारका राष्ट्रके आय व्ययमें हस्तक्षेप भारतके स्वार्थमें पूर्ण रूपसे नहीं है। विस्तृत तौरपर विचार करनेकेलिये राष्ट्रीय हस्तक्षेपको एक पृथक् भागका रूप देना आवश्यक था। इसीलिये राष्ट्रीय हस्तक्षेपको ग्रंथका प्रथम भाग रक्खा गया है।

प्रथम परिच्छेद

राष्ट्रीय आय-व्यय-शास्त्रका स्वरूप

(१)

राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्रकी आवश्यकता

भिन्न भिन्न शास्त्रोंकी उन्नतिमें समाजकी आर्थिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक परिस्थितिका बहुत अधिक भाग है। साधारणसे साधारण समाजमें राजनैतिक, भाषा सम्बन्धी तथा अन्य कई एक प्रकारका संबंध कुछ न कुछ अवश्य ही होता है। यही कारण है कि राजनीति, व्याकरण, दर्शन आदिका इतिहास समाजकी आरम्भिक अवस्थाके साथ घनिष्ठ तौरपर जुड़ा हुआ है।

भिन्न भिन्न शास्त्र सामाजिक स्थितिके परिणाम हैं।

आजकल भिन्न भिन्न जातियों तथा समाजोंकी स्थिति बहुत ही पेचीदा है। नागरिकोंका उत्तरदातृत्व और राज्यके कार्य पूर्वापेक्षा बहुत ही अधिक बढ़ गये हैं। छोटेसे छोटे कामसे लेकर बड़ेसे बड़े कामतक राज्यका हस्तक्षेप है। पीनेका पानी तथा भोजनका प्रत्येक पदार्थ तक राज्यकी प्रबल शक्तिके प्रभुत्वसे बचा नहीं है। हमारा जातीय जीवन तथा सामाजिक संगठन पूर्वापेक्षा बहुत ही अधिक बदल गया है। मध्यकालमें रेल, तार, नलोंका जल, विद्युत् या गैसका प्रकाश, ट्राम्वे आदि

आधुनिक समाजोंका संगठन तथा भारतवर्षकी दशा

कुछ भी नही थी। अतः राज्यकी शक्ति हमारे अन्तरीय जीवन तथा अन्तरीय सामाजिक संगठन तक नहीं पहुँची हुई थी। परंतु अब दशा सर्वथा विचित्र है। हम लोग नवीन आविष्कारोंके परवश हो चुके हैं। हमारे सुख दुःखका आधार अब नवीन आविष्कार ही है। रेल न हो या रेलपर जाना किसी कारणसे रोक दिया जाय तो हम बनारससे लखनऊ नहीं पहुंच सकते है। प्राचीन तथा मध्यकालमें रथो, घोडा गाडियों तथा सिकरमकी संख्या अधिक थी। इनके द्वारा ही लोग इधर उधर आया जाया करते थे। परंतु अब यह बात नही है। रेलके बन जानेसे गमनागमनके उपरिलिखित साधनोंका लोप हो गया है और इस प्रकार हमारी संपूर्ण गति तथा व्यापार-व्यवसाय एकमात्र रेलके अधीन हो गया है। जिसका रेलपर प्रभुत्व है, एक प्रकारसे उसीका हमारे जातीय व्यापार-व्यवसाय तथा गमनागमनपर प्रभुत्व है। एक ही क्षणमे वह रेलके सहारे हमको भयंकर विपत्तिमे डाल सकता है, हमारे व्यापार-व्यवसायको तबाह कर सकता है और हमको भूखो मार सकता है। नलके जलके साथ भी यही बात है। भिन्न भिन्न नगरोंमें जलके नलके लग जानेसे घरोंमे कुएँ बनानेकी प्रथा अब इस देशसे उठती जाती है। नलके जलसे बहुत ही सुख मिलता है, परंतु एक प्रकारसे हमारे जीवनका

मुख्य आधार जल भी अब हमारे हाथमें नहीं रहा है। यदि जल भाण्डार* से हमको जल न दिया जाय तो हम प्यासे मर सकते है। हम पानीके लिये भी दूसरोंके आधीन है। यही बात विद्युत्के प्रकाश, डाक, तार, विदेशीय सामानके साथ है। साराश यह है कि आजकल जीवनके आवश्यकसे आवश्यक पदार्थमें हम परवश है। भारतमें उपरिलिखित कामोंमें प्रायः राज्यका ही एकाधिकार है और इसीसे यह स्पष्ट है कि राज्यके कार्य तथा शक्तियां कितनी महत्वपूर्ण है और उनका हमारे जीवन-मरणमें कितना अधिक भाग है।

भारत में राज्यकी आय व्यय संबंधी नीति तथा उस पर एक विचार

स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या भारतीय राज्यने उपरिलिखित शक्तिगर्भित कामोंको इंग्लैंडके धनकेद्वारा किया है या भारतवर्षियोंके धनद्वारा? यदि इन कामोंमें इंग्लैण्डका धन लगा है तो इन कामोंसे जो आर्थिक लाभ होता है, क्या उस आर्थिक लाभको एक मात्र इंग्लैण्ड ही भोगता है या इसका कुछ भाग भारतियोको भी मिलता है? जिन कामोंमें घाटा है, क्या लाभके सदृश घाटा भी इंग्लैण्ड स्वयं ही उठाता है, या उस घाटेको भारतीय राज्य भारतके धनसे पूर्ण करता है? भारतमें राज्यकी व्यापार-व्यवसाय विषयक नीति क्या है? क्या भारतीय राज्य वास्तवमें निर्हस्तक्षेप देवीका उपासक है? या इंग्लैण्डके

* जल भाण्डार = वाटर हाउस (Water House)

सदृश देशके व्यापार-व्यवसायको सन्मुख रखकर और उसकी उन्नतिका मूल निर्हस्तक्षेपको समझकर निर्हस्तक्षेप देवीका भक्त बन गया है? यदि यही बात है तो क्या उसका मुख्य उद्देश्य भारतका आर्थिक हित है अथवा इग्लैण्डका? भारतीय राज्यने किसपर अधिक धन व्यय किया है? नहरों अथवा रेलो पर? यदि रेलोपर अधिक धन व्यय किया है तो क्यो? भारतीय राज्य यदि भारतके व्यापार व्यवसायको उन्नतिमें उदासीन है और धनकी सहायता न देना ही अपना उद्देश्य बना बैठा है तो उसने रेलके व्यवसायमे इस नीतिको क्यो तोड़ा है? और "गाइरेण्टी" विधिके द्वारा भारतीय धनसे क्यो आंग्ल पूंजीपतियोकी जेबे भरी है? भारतीय राज्यने मादक द्रव्योका एकाधिकार अपने हाथमें रक्खा है। प्रश्न उठता है कि यह क्यो? क्या इसमें स्विटजरलैण्ड या जापान राज्यके सदृश भारतीय राज्यका कोई पवित्र उद्देश्य है? क्या भारतीय राज्यने इन चीजोंका एकाधिकार अपने हाथमे इसलिये रक्खा है कि लोगोमें इनका प्रयोग बहुत न बढ़े। यदि यही बात है तो चीनसे अफीम युद्ध क्यों किया गया? और महाशय शर्माने आत्मरायकी सभामें जब इस नीतिको स्पष्ट तौरपर उद्घोषित करनेके लिये भारतीय राज्यसे प्रार्थना की तो भारतीय राज्यने क्यों मौनव्रत धारणकर लिया? भारतमे प्रतिवर्ष मादक द्रव्योंका प्रयोग

क्यों बढ़ता जाता है ? भारतीय राज्यने भारतकी भूमि, जंगल, पर्वत, नदी आदि अनेक जातीय पदार्थोंपर अपना स्वत्व स्थापित किया है। प्रश्न उठता है कि क्या यह स्वत्व स्वाभाविक है या अस्वाभाविक है ? यदि यह स्वत्व स्वाभाविक है तो क्या भारतीय राज्य भारतीय जनताके प्रति उत्तरदायी है और अपनी प्रभुत्वशक्ति* तथा करीय शक्ति। का स्रोत भारतीय जनताको ही मानता है ? यदि यह बात नहीं है तो भारतीय सम्पत्तिपर उसका स्वत्व न्याययुक्त तथा स्वाभाविक कैसे कहा जा सकता है ? यदि राज्य जातिका प्रतिनिधि है तो उसका स्वत्व जातीय सम्पत्तिपर किस न्यायसे माना जा सकता है ? भारतीय राज्य भूमिपर अपना स्वत्व प्रकट करके जमींदारोंसे लगान लेता है। प्रश्न उठता है कि इस लगानकी मात्रा का आधार क्या है ? यदि राज्य युद्धादिके भयंकर खर्चोंको पूरा करनेके लिये लगानकी मात्रा बहुत ही अधिक बढ़ा दे तो इससे बचनेका उपाय क्या है ? उस लगानके द्वारा यदि देशमें प्रतिवर्ष दुर्भिक्ष पड़ने लगे और दरिद्रता तथा निर्धनतासे भारतीयोंका आचार गिर जाय तो इस पापका अपराधी कौन है ? भारतका राज्यकोष इंग्लैण्डमें स्वर्णकोष निधि+

---

* प्रभुत्व शक्ति = सावरन्टी (Sovereignty)

। करीय शक्ति = टैक्सिङ्‌ पावर (Taxing Power)

+ स्वर्णकोष निधि = (Gold reserve fund)

के नामसे रक्खा गया है। प्रश्न उठता है कि इसको भारतमें ही क्यों न रक्खा जाय, क्योंकि भारत में पूंजीकी बहुत कमी है और व्याजकी मात्रा इतनी अधिक है कि व्यवसायोंके खुलनेमें बहुत विघ्न पड़ते हैं। यदि यह कहा जाय कि भारतमें भारतीय धनको सुरक्षित तौरपर नहीं रक्खा जा सकता है, क्योंकि यहां कोई "बक आफ इंग्लैण्ड" के सदृश राष्ट्रीय वक नहीं है ठीक है। भारतमें राष्ट्रीय बंक की क्यों न स्थापना की जाय? क्योंकि जर्मनी आदि सभ्य देशोंमें उसी विधिपर काम किया जाता है। प्रत्येक देशका अपना अपना राष्ट्रीय बंक है। भारत ही क्यों इस बातमें सबसे पीछे पड़ा रहे? हां अमरीकाके सदृश राज्यकोषविधिपर भी काम चलाया जा सकता है। परंतु भारतीयोंकी स्थिति ही ऐसी है कि यहाँ राष्ट्रीय बक ही ज्यादा लाभदायक हो जायगा। इसपर आगे चलकर प्रकाश डाला जायगा। आमतौरपर यह कहा जाता है कि "करके द्वारा व्ययसे अधिक धन ग्रहण करना राज्य नियमोंकी ओटमें प्रजाको लूटना है"। क्या यह सत्य है? यदि यह सत्य है तो भारतीय राज्य ऐसा क्यों करता है? कुछ एक विशेष वर्षोंको छोड़कर प्रायः प्रतिवर्ष संपूर्ण खर्चोंके बाद राज्यके पास धन बचता है। भारतीय राज्य क्यों नहीं इस बुरी बातको दूर करता है? भारतीय राज्य जनताके प्रति उत्तरदायी

राष्ट्रीय बक = स्टेट बंक (State Bank)

नहीं है। उसकी करीय शक्ति तथा प्रभुत्व शक्ति आँग्ल जनता तथा आंग्ल पार्लामेंटके हाथमें है। यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि देशमें हलचल मचे जिसका वास्तविक कारण पीछे साबित हो कि राज्य की गलती ही थी तो क्या उस हलचलको दबानेका व्यय देशको ही देना पड़ेगा। क्या इसका व्यय आंग्ल देशसे आवेगा। ऐसे और बहुतसे प्रश्न है जिनपर गम्भीर तौर पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। इन प्रश्नोंके विचारमें कौनसी स्वयसिद्ध बातें हैं जिनको आधार बनाकर विचार प्रारम्भ किया जाय ? वह कौनसा मार्ग है जिसपर चलनेसे हम अपने उद्देश्य तथा लक्ष्यतक पहुंच सकते है ? राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र इन्हीं विकट समस्याओं तथा प्रश्नोंको सरल करने का यत्न करता है।

आय व्यय शास्त्रकी आवश्यकता।

---

* राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र = दि साइन्स आफ फाइनान्स या पब्लिक फाइनान्स (The Science of Finance or Public Finance)

राष्ट्रोंके लिये जमाखर्च सम्बन्धी एक ही सिद्धान्त उचित नहीं हो सकता है। यदि यूरोपीय देशोंमें भूमिपर राज्यका स्वत्व आवश्यक तथा उचित है तो इसका यह मतलब नहीं है कि *भारतवर्षमें भी यह आवश्यक तथा उचित ही है। इसका अभिप्राय यह है कि आयव्यय शास्त्र सम्बन्धी* प्रश्नोंपर विचार करते समय राष्ट्रोंकी भिन्न भिन्न स्थितिको सम्मुख रखना ज़रूरी है।

(३)

राष्ट्रीय आवश्यकताओंका स्वरूप

राष्ट्रको चाहे एक शरीरी मानें और चाहे एक संगठित संस्था मानें उसकी आवश्यकताओंका स्वरूप पूर्व वत् ही बना रहता है।

(१) राष्ट्रकी धन तथा संपत्ति सबंधी आवश्यकता—

राष्ट्रकी धन तथा संपत्ति संबंधी आवश्यकता।

राष्ट्रकी आवश्यकताएँ भिन्न भिन्न समयोंपर भिन्न भिन्न होती हैं। प्रतिनिधि-तन्त्र उत्तरदायी राज्योंमें राष्ट्रको भूमि तथा श्रमकी जरूरत होती है। निस्सन्देह यूरोपमें "फ्यूडल"–राजतंत्रके न रहनेसे राष्ट्रकी अपनी भूमि बहुत ही कम है। जो कुछ भूमि राष्ट्रके पास आजकल हैं वह पार्क, कंपनीबाग, दुर्ग, छावनी तथा सरकारी दफ्तर आदिके बनानेमें ही काम आती है। अधिक भूमिकी जब राष्ट्रको ज़रूरत

होती है तब वह भी व्यक्तियोंके सदृश ही रुपया देकर भूमि खरीद लेता है। भूमिके सदृश ही राष्ट्रको धनकी जरूरत होती है। विना धनके सेना, राजकर्मचारी तथा सरकारी दफ्तरोंका खर्चा चलाना राज्यके लिये असम्भव है।

राष्ट्र का मुफ्त कार्य करवाना

(२) *मुफ्त कार्य करवाना*—सभी देशोंमें भिन्न भिन्न राष्ट्रीय कार्योंको लोग मुफ्त ही कर देते हैं। भारतमें आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा अनाथालय या धर्मशालाके ट्रस्टीका काम लोग मुफ्तही करते हैं। अमरीकादि देशोंमें भी मेयर तथा भिन्न भिन्न शिक्षा सम्बन्धी कामोंको लोग विना रुपया पैसा लिये ही करते हैं। यह क्यों? इसके कई एक कारण हैं। कई एक पद ऐसे मानके है कि अमीर लोग उन पदों तथा अधिकारोंको मुफ्त काम करके भी प्राप्त कर लेना चाहते है। अमरीका आदि देशोंमें राज्यके अन्दर शक्ति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे भी भिन्न भिन्न दलके लोग ऐसा करते हैं। बहुतसे काम लोग दया तथा सहानुभूतिसे प्रेरित हो कर भी मुफ्त ही करते है। जो कुछ भी हो शासनशास्त्रके विद्वान् राज्यकार्यको उचित विधिपर चलानेके लिये यह आवश्यक समझते हैं कि किसीसे भी मुफ्त काम न लिया जाय। वे लोग इसमें निम्नलिखित चार युक्तियाँ देते हैं।

राज्य का मुफ्त कार्य लेने में विरोध।

धार्मिकभावनाकी चञ्चलता।

(क) मनुष्यमें सेवा, सहानुभूति तथा राष्ट्रीय प्रेमके भाव सदा एक सदृश नहीं रहते हैं। इस

हालतमें इन भावोंको आधार बना कर किसी भी मनुष्यसे मुफ्त राज्यकार्य लेनेम राज्यकार्य ठीक ढंगपर नहीं होने है। प्रबन्धमें शिथिलता आजाती है। इसमें संदेह भी नहीं है कि क्षणिक या सामयिक कार्योंमें देशभक्ति तथा देशप्रेमसे प्रभावित पुरुषोंसे काम लेना बहुत ही अच्छा हो सकता है, क्योंकि जो काम यह लोग कर देते है वह एक भृतिजीवी नहीं कर सकता है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि स्थिर कामों तथा स्थिर प्रबन्धोंके लिये वही लोग उत्तम है जो कि वेतन लेकर काम करते है।

उत्तर दातृत्वका न होना

(ख) उत्तम शासनके लिये आवश्यक है कि राज्य कर्मचारी अपने कामके लिये पूरे तौरपर उत्तरदायी हों। मुफ्तकाम करनेवाले प्रायः उत्तर दातृत्वकी परवाह नहीं करते हैं और किसीका दबाव नहीं मानते हैं। भृति जीवी सदा ही अपने ऊपरके अधिकारीकी आज्ञानुसार काम करते है और नौकरी छूटनेके भयसे कामगें किसी प्रकारकी भी गड़बड़ी नहीं करते है।

काम का अनुभव न होना

(ग) उत्तम शासन तथा उत्तम प्रबन्ध वे ही लोग कर सकते है जिन्होंने इसी प्रकारके काममें अपना जीवन व्यतीत किया हो। देशप्रेमसे काम करने वालोंमें प्रायः यह बात नहीं होती है। यदि राज्य उनको इसी प्रकारकी शिक्षा दे तो राज्यका बहुत सा समय और धन वृथा ही खराब हो सकता है क्योंकि शिक्षा भी तो एक दिनमें तथा मुफ्त ही

नहीं दी जा सकती है। उसके लिये भी तो धन तथा समयको जरूरत है।

धनाढ्योंकी प्रबलता।

(घ) मुफ्त काम लेनेसे राज्यकार्य धनाढ्योंके हाथमें जा सकता है। क्योंकि गरीबलोग मुफ्त काम नहीं कर सकते हैं। राज्यमें धनाढ्योंकी प्रधानता इस समष्टिवाद† तथा श्रमसमिति‡के जमाने में किसको मंजूर हो सकती है।

बाधित तौर पर कार्य लेना।

(३) *बाधित तौर पर कार्य करवाना* राष्ट्रका जीवन यदि खतरेमें हो तो राज्य नागरिकोंसे बाधित तौरपर कार्य ले सकता है। आजकल राष्ट्रका जीवन मुख्य और नागरिकोंका जीवन गौण समझा जाता है। महायुद्धके पूर्व जर्मनी में विशेष आयुके प्रत्येक मनुष्यको तीन वर्ष तक सेनामें काम सीखना पड़ता था और राज्यको यह अधिकार था कि २२ वर्ष तक उससे सैनिक कार्य बाधित तौर पर ले ले। भारतवर्षमें स्थिर सेना की विधि है। अतः जनतापर करका भार बहुत ही अधिक है। सारांश यह है कि लड़ाईके लिये बाधित तौरपर कार्य लेना या धन लेना यह दो ही विधि हैं जिनके द्वारा राज्य राष्ट्रकी रक्षा करते हैं। यूरोपीय देशोंमें जर्मनीके अन्दर बाधित तौरपर कार्य लेनेकी और अमरीका तथा इङ्गलैण्डमें धन

† समष्टिवाद=सोशलिज्म (Socialism)

‡ श्रमसमिति=ट्रेड यूनियन (Trade union)

लेनेकी विधि महायुद्धसे पहले प्रचलित थी। यहाँ पर यह प्रश्न स्वभावतः उत्पन्न होता है कि राज्यको अपना आर्थिक आदर्श क्या रखना चाहिये। राज्य अपनी आर्थिक नीतिका आधार किस सिद्धान्त पर रक्खे जिससे कार्य उत्तम विधिपर चले। अब इन्हीं प्रश्नोंको सरल करने का यत्न किया जायगा।

द्वितीय परिच्छेद

राष्ट्रीय हस्तक्षेप।

(१)

आर्थिक आदर्श

राष्ट्रका कौन सा आवश्यक कार्य है और कौन सा नहीं है, यह जानना कठिन है।

यदि हम भिन्न भिन्न जातियोंकी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक अवस्थाका निरीक्षण करें तो हमको पता लगेगा कि राज्यके कार्य इतने पेचीदा तथा नानाविध हैं कि उनका कोई एक वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। राज्यका कौनसा कार्य आवश्यक और कौनसा अनावश्यक है इसको कैसे जाना जाय। दृष्टान्तके तौरपर राज्य द्वारा राष्ट्रके संरक्षणके प्रश्नको ही लीजिये। भारतमें क्या राज्यका स्थिर सेना रखना आवश्यक है? क्या सेना तथा शस्त्रास्त्रपर अनन्त धन व्यय किये विना राज्य राष्ट्रका संरक्षण नहीं कर सकता है? इसीप्रकार यूरोपीय राज्य तोप, बारूद, रणपोतके बनानेमें जो अनन्त धन फूंक रहे हैं, क्या वह बहुत ही आवश्यक है? किस स्थानपर राष्ट्रीय संरक्षणमें लगा राज्यका धन फजूलखर्चीका रूप धारण करता है? प्रत्येक राज्यको कितनी कितनी तोपें, तथा शस्त्र रखने चाहिये? किसी समय रूसके ज़ारने इन्हीं प्रश्नोंको सपूर्ण सभ्य जातियोंसे पूछा था परन्तु उसे इन प्रश्नोंका कोई भी सन्तोषप्रद उत्तर न मिला।

क्या वैय-क्तिक स्वतंत्रता तथा संपत्तिकी रक्षा करना रा-ज्यका आव-श्यक काम है?

यह समझा जाता है कि वैयक्तिक स्वतन्त्रताकी रक्षा करना राज्यका मुख्य काम है। यहां पर यह प्रश्न स्वतः ही उत्पन्न होता है कि वैयक्तिक स्वतंत्र-ताका क्या तात्पर्य है और उसका सरक्षण किस प्रकार संभव है? क्या राज्य धार्मिक तथा शारी रिक अत्याचारोंसे वैयक्तिक स्वतंत्रताको बचावे? धार्मिक अत्याचारसे वैयक्तिक स्वतन्त्रताके बचानेका यह भाव है कि राज्य सभाषण, तथा धर्ममें व्य-क्तियोंको पूर्ण स्वतंत्रता दे? यदि मूर्तिपूजकलोग किसी मनुष्यकी अपने देवतापर वलि चढ़ावें और पतिके मर जानेपर उसकी स्त्रीको सती बनानेके लिये आगमें जलावें तो क्या राज्य उनके इस धार्मिक कार्यमें बाधा न डाले? वैयक्तिक स्वतंत्र ताके सदृश ही वैयक्तिक संपत्तिकी रक्षा भी विवा दास्पद है। क्योंकि पहिले तो संपत्तिके लक्षणमें ही भयंकर मतभेद है और यदि संपत्तिके लक्षणकी संदिग्धताका ख्याल न भी किया जाय तोभी यह नहीं पता लगता कि सपत्तिके संरक्षणकी क्या सीमा निश्चित की जाय। "सपत्तिकी रक्षा" पर यह प्रश्न प्रायः उठता है कि प्राकृतिक सपत्तिके सदृश ही क्या मानसिक संपत्तिको भी संपत्ति समझा जाय? क्योंकि एक आविष्कारसे जितनी संपत्ति उत्पन्न हो सकती है उतनी संपत्ति कदाचित् मैसूरकी हीरेकी खानोंसे न उत्पन्न हो सके। परन्तु अभीतक आविष्कार आदि तक संपत्तिका क्षेत्र नहीं

स्वतन्त्रता-का क्या अर्थ है?

माना जाता है। और जहां मुद्रण-धिकार अथवा अनन्याधिकार* द्वारा इसको कुछ कुछ माना भी जाता है वहां भी प्राकृतिक संपत्तिके सदृश अपरिमित काल तक उसपर वैयक्तिक स्वत्व नहीं रहता है।

राज्यके कार्योंकीपूर्णता की उत्तम विधि क्या है ?

इसी प्रकार राज्यके प्रत्येक कार्यमें यह जानना अत्यन्त कठिन है कि उसका वह कार्य कहां तक आवश्यक है और कहां तक अनावश्यक। आवश्यक अनावश्यकके सदृश ही राज्यके भिन्न भिन्न कार्योंकी पूर्णताकी उत्तमसे उत्तम विधि क्या है ? इसे जानना दुष्कर है। बहुतसे राजकीय कार्य भिन्न भिन्न परिस्थिति तथा समयके ख्यालसे किये जाते हैं। उनका एकमात्र आर्थिक दृष्टिसे ही विचार करना गलती करना होगा। दृष्टान्तके तौरपर शिक्षाको ही लीजिये। शिक्षा देनेकी उत्कृष्ट विधि क्या है? उसपर राज्य कितना धन व्यय कर सकता है ? यह दो भिन्न भिन्न प्रश्न हैं। इन दोनोंको एक मात्र आर्थिक दृष्टिसे सरल करना असंभव है।

राज्य एक मात्र आर्थिक विचारसे ही सब कार्योंको नहीं करते हैं।

राज्यके ऐच्छिक कार्योंसे तो आर्थिक संबंध और भी दूर है। भिन्न भिन्न जातियोंके राज्य नियम एकमात्र आर्थिक अवस्थाके परिणाम नहीं हैं। धार्मिक, राजनैतिक अवस्थाका राज्यनियमोंसे क्या संबंध है यह किसीसे छिपा नहीं है। आंग्लराज्यने भारतीयोंके सभाषण तथा लेखनकी स्वतंत्रताका प्रेस एक्ट अथवा समाचारपत्र संबंधी विधान द्वारा

* पेटन्ट या कापी राइट (Patent या Copy-right)

जो मर्दन किया है क्या उसमें राज्यका आर्थिक विचार काम कर रहा है? सारांश यह है कि राज्यनियमोंका जातिकी प्रत्येक प्रकारकी अवस्थाके साथ संबंध है और इसीलिये राज्यके कार्योंकी गति एकमात्र आर्थिक मापसे ही नहीं मापी जा सकती है। यहींपर बस नहीं। सभ्यताकी वृद्धिमें भी एकमात्र आर्थिक कारणका ही बहुत बड़ा भाग नहीं है। आचार, विचार, स्वभाव आदि सभी बातें सभ्यताको घटाने बढ़ानेमें भाग रखती हैं।

धनकी उत्पत्ति विनिमय विभाग तथा व्ययके साथ राज्यका घनिष्ठ संबंध है। इनमें राज्यका कहां तक हस्तक्षेप हो इस प्रश्नमें विचारकोंका बड़ा मतभेद है। बहुतसे विद्वानोंकी सम्मति है कि राज्यको "अल्पसे अल्प हस्तक्षेप द्वारा अधिकसे अधिक लाभ" पहुंचानेका यत्न करना चाहिये।

(२)

स्वाभाविक स्वतंत्रता, निर्हस्तक्षेप तथा अल्पतम हस्तक्षेपका सिद्धान्त

क्या स्वाभाविक स्वतंत्रता राज्यका आर्थिक आदर्श है?

स्वाभाविक स्वतंत्रताको‡ पूर्ण तौरपर न समझनेके कारण लोगोने जो जो गलतियां तथा खूनखच्चरियां की है, उनका गिनानातक कठिन

‡स्वाभाविक स्वतन्त्रता=नाचुरल लिबर्टी (Natural Liberty)

है। बहुत अध्ययनके बाद भी आदम् स्मिथने स्वाभाविक स्वतंत्रताको राज्यका आर्थिक या राजनैतिक आदर्श नहीं प्रकट किया। उसका कथन है कि "प्रत्येक मनुष्यको तबतक स्वेच्छानुसार तथा अपने ढंगपर ही काम करनेकी स्वतंत्रता होनी चाहिए, जबतक कि वह न्यायके नियमोंका भंग न करे"। इस कथनमें "न्यायके नियमोंका भंग न करे" यह वाक्य अत्यन्त ध्यान देने योग्य है। इससे यह परिणाम निकला कि वैयक्तिक व्यवसाय, संपत्ति तथा स्पर्धा आदिमें स्वतंत्रता तभीतक दी जा सकती है जबतक कि न्यायका भंग न होवे। सारांश यह है कि स्वाभाविक स्वतंत्रता तथा स्वाभाविक न्यायका संतुलन तथा संमिलन ही राज्यकी आर्थिक नीतिमें पथदर्शक है। स्वाभाविक स्वतंत्रताके विचारसे राज्यके मुख्य तीन कर्त्तव्य है। (१) राष्ट्र संरक्षण, (२) अत्याचार तथा अन्यायसे प्रजाको बचाना, और (३) एक मनुष्य या मनुष्यसंघका जिन उपयोगी राष्ट्रीय कार्योंके करनेमें स्वार्थ न होवे उन उपयोगी कार्योंको स्वयं करना। परंतु इन संपूर्ण कार्योंमें स्वाभाविक

राज्यका आर्थिक आदर्श न्यायानुकूल स्वाभाविक स्वतंत्रता है।

जे. एस निकल्सन कृत "प्रिन्सिपल्स आफ् पोलिटिकल एकानामी (Principles of Political Economy by of J S. Nicholson, Vol III. Book V chapt I P. 2 Page 178)

राज्यके हस्तक्षेपकी जरूरत है।

न्यायका भंग न राज्यको स्वयं न किसी दूसरे मनुष्यको करने देना चाहिए। यदि भिन्न भिन्न कार्यों-में वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा स्पर्धाका परिणाम अन्याय तथा अत्याचार होवे तो राज्यको अवश्य ही हस्त-क्षेप करना चाहिए। अध्यापक सिज्विककी भी यही सम्मति है कि "आर्थिक" मनुष्यो* से परिपूर्ण समाजमें भी स्वाभाविक स्वतंत्रताका परिणाम भयंकर हो सकता है। धनकी उत्पत्ति विनिमय विभागमे जनसंघर्ष इस बातका सूचक है कि आर्थिक चक्र कितना अग्निपूर्ण है और इसी-लिये राज्यका हस्तक्षेप कितना आवश्यक है।" इस दशामे अल्पतम हस्तक्षेप† या निर्हस्तक्षेप‡ की नीतिको राज्यका पथप्रदर्शक प्रकट करना कितना हास्यप्रद होवेगा? स्वाभाविक स्वतंत्रताके सदृश ही अधिकतम उपयोगिताका सिद्धान्त× भी राज्यकी आर्थिक नीति या आर्थिक आदर्शको दिखानेमें सर्वथा असमर्थ है। अब इसीपर कुछ प्रकाश डाल-नेका यत्न किया जावेगा।

---

*आर्थिक मनुष्य=इकानामिक मैन (Economic Man)
†अल्पतम हस्तक्षेप=मिनिमम इन्टर्फियरैन्स (Minimum interference)
‡निर्हस्तक्षेप=नान्इन्टरफियरैन्स (Non-interference)
×अधिकतम उपयोगिताका सिद्धान्त=दि प्रिन्सिपल आफ माक्सिमम यूटिलिटी(The Principle of maximum utility)

(३)

अधिकतम उपयोगताका सिद्धान्त

राज्यका आर्थिक आदर्श अधिकतम उपयोगताको उत्पन्न करता है

अधिकतम उपयोगिताके सिद्धान्तका विकास उपयोगितावाद§ से हुआ है। इस सिद्धान्तके अनुसार "राज्यको वहींपर ही हस्तक्षेप करना चाहिए जहांपर कि वह अधिकतम उपयोगिताको उत्पन्न कर सके। दृष्टान्तके तौरपर राज्य धनकी उत्पत्तिके अन्दर वैयक्तिक स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप कर सकता है यदि वह उस हस्तक्षेपकेद्वारा धनकी उत्पत्तिको बढा सके या जनसंख्याकी दृष्टिसे पदार्थोंकी उत्पत्तिको पूर्णसे पूर्ण सीमातक पहुंचा देवे। धनकी उत्पत्तिके सदृश ही धनके विभागमें भी वह हस्तक्षेप कर सकता है यदि उसके हस्तक्षेपकेद्वारा विभक्त धनकी उपयोगिता चरम सीमातक पहुंच सके। यदि यह मान लिया जावे कि प्रत्येक अन्यायका परिणाम अनुपयोगिता|| और प्रत्येक न्यायका परिणाम उपयोगता¶ होता है तो अधिकतम उपयोगता तथा स्वाभाविक स्वतन्त्रताके सिद्धान्तोंमें कुछ भी भेद नहीं रहता है। न्यायानुकूल स्वाभाविक स्वतन्त्रताको उपयोगता

अधिकतम उपयोगिता न्यायानुकूल स्वाभाविक स्वतन्त्रता दोनों एक ही अर्थको प्रकट करते हैं।

§उपयोगतावाद=यूटिलिटेरियनिज्म (Utilitarianism)

||अनुपयोगता=डिसयूटिलिटी (Disutility).

¶उपयोगता=यूटिलिटी (Utility)

तथा न्यायप्रतिकूल स्वाभाविक स्वतंत्रताको अनु
पयोगता कहा जा सकता है और इस प्रकार
अधिकतम उपयोगता तथा स्वाभाविक स्वतंत्रताके
सिद्धान्त परस्पर अभिन्न हो जाते है। उनमें केवल
नामका ही भेद रह जाता है। अस्तु जो कुछ भी
हो, राष्ट्रीय कार्योंके करनेके विषयमें अधिकतम उप-
योगतावादी "व्यय" को ही राज्यकी आर्थिक
नीतिका पथदर्शक प्रकट करते है। उनका विचार
है कि किसी राष्ट्रीय कार्यकी उपयोगताकी सबसे
बड़ी कसौटी यह है कि उसके लाभोंको उसके व्ययोंसे
मापलिया जावे। धन विभागके प्रश्नमें उपयोग-
तावादी समष्टिवादियोंके साथी है। अध्यापक
सिज्विकका कथन है कि "आधुनिक धन विभा-
गका सबसे बडा दोष यह है कि उससे असमानता
उत्पन्न होती है। साधारणसे साधारण मनुष्य
इस असमान धनविभागको दोषपूर्ण समझता
है"। अध्यापक सिज्विकके अन्तिम वाक्यसे
हमारी सहमति नहीं है। क्योंकि आजकल साधा-
रणसे साधारण मनुष्य यदि असमान धन विभा-
गको दोषपूर्ण समझता है तो उसका रहस्य कुछ
और ही है। महाशय वैन्थमने ठीक कहा है कि
"धनकी समानताके प्रेमका स्रोत पापमें है न कि
पुण्यमें ... इसको वही चाहते हैं जो कि दूस-
रोंकी वृद्धिको सहन नहीं कर सकते हैं। ऐसी
हालतमें धनकी समानताके प्रेमसे लाभ ही क्या

व्ययमें उपयोगवाद।

उपयोगतावाद तथा समष्टिवाद।

है ? इस ओर जानेसे क्या सत्यानाश न होवेगा ? ऐसे प्रेमसे स्वार्थ जैसी निकृष्ट वस्तु भी उच्च है।"* यह होते हुए भी अधिकतम उपयोगतावादी धनकी समानताकी ओर ही राज्यको ले जाना चाहते हैं। धनकी समानताको वह लोग निम्नलिखित दो सिद्धान्तोंके आधारपर पुष्ट करते है।

(१) अधिकतम धनसे अधिकतम सुख मिलता है

(२) ज्यो ज्यो धन बढता है, त्यो त्यो उससे उपलब्ध सुखकी घनता कम हो जाती है।

प्रथम सिद्धान्त पूर्ववर्णित उपयोगता सिद्धान्तका ही एक रूप है। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि आवश्यकताओंको पूर्ण करनेकी शक्तिका नाम उपयोगता है, और सपूर्ण सपत्तियोमें उपयोगता का होना आवश्यक है। आवश्यकताओकी पूर्ति पर सुख पूर्ति और आवश्यकताओकी वृद्धिपर सुखवृद्धि होती है। इस दशामे उपयोगतावृद्धि तथा सुखवृद्धि समान अनुपातमे बढे तो आश्चर्य करना वृथा है। उपयोगता तथा सपत्तिका घनिष्ट सबध है। अतः अधिकतम धनसे अधिकतम सुख मिलना ही चाहिए। जिस प्रकार प्रथम सिद्धान्त उपयोगता सिद्धान्तका एक रूप है, उसी प्रकार

* बेंथम लिखित "समतावादपर निबन्ध=एस आन दी लेवलिग सिस्टेम (Essay on the levelling system works Vol T P 361)

द्वितीय सिद्धान्त सीमान्तिक उपयोगता सिद्धा न्तका* एक अङ्ग है। यह स्पष्ट ही है कि एक भिख मंगेके लिये एक रुपयेकी जो उपयोगता है वह एक लखपतिके लिये नही। इस हालतमे धनवृद्धि तथा सुखवृद्धिकी घनताका उलटा अनुपातमे घटना बढना स्वाभाविक ही है। दोनों सूत्रोका परस्पर मिलानेसे यह परिणाम निकलता है कि किसी समाजमे धन विभाग जितना अधिक समान होवगा उसके धनकी उतनी ही आवश्यक उपयोगता होगी और इसलिये उसका कुल सुख भी उतना ही अधिक होवेगा।

अधिकतम उपयोगतावादी तथा समष्टिवादी इसी विचारसे यह कहते हैं कि प्रजातंत्र राज्योंका समाजके कुल सुखपर ध्यान देना चाहिए और धनकी असमानताको दूर करनेका यत्न करना चाहिए। हमारे विचारमे धनकी समानताको अधिकतम उपयोगतावादियोंका पुष्ट करना निरर्थक है। यदि गम्भीर तौरपर विचार किया जावे तो पता लगता है कि यह उनके अपने सिद्धान्तसे भी नहीं निकलता है। क्योंकि यदि भोग विलासके पदार्थ अनन्तराशिमें होते तब तो धनके समान या असमान विभागका प्रश्न ही उत्पन्न न होता। जिसको जिस पदार्थकी जरूरत होती उस

पदार्थ परिमित हैं अतः उनकी अधिक उत्पत्ति आवश्यक है।

---

* सीमान्तिक उपयोगता सिद्धान्त=मार्जिनल यूटिलिटी थ्यूरी (Marginal utility theroy)

को वह पदार्थ मिल ही जाता। परन्तु दौर्भाग्यसे यह बात नहीं है। पदार्थोंके उत्पन्न करनेमें व्यवसाय पतियोंका धन तथा श्रम लगता है। समाजके कुल सुखका ध्यान करके यदि अधिकतम उपयोगतावादी व्यवसाय पतियोको भी साधारण श्रमीके सदृश ही धन देवें तो इससे असन्तुष्ट हो कर वह पदार्थोंका उत्पन्न करना न छोड़ देवेंगे। इस प्रकार अल्प उत्पत्तिसे क्या समाजकी अधिकतम उपयोगता पूर्ववत् ही बनी रह सकती है? इसमें संदेह भी नही है कि यदि पूंजी तथा श्रमका उचित बदला न प्राप्त करते हुए भी व्यवसाय पति पूर्ववत् ही सुखी तथा संतुष्ट रहें तो अधिकतम उपयोगतावाद दोष रहित हो सकता है। वास्तविक बात तो यह है कि संसारकी सभी बातें तथा सभी पदार्थ गुण तथा दोषोंसे परिपूर्ण हैं। कही पर गुण अपना रूप प्रकट करता है और कही पर दोष। अधिकतम उपयोगतावादके अनुसार एक गुणको ध्यानमें रख करके जो बात पुष्टकी जाती है दूसरे स्थानपर उसीके दोष सम्मुख आ जाते हैं और इस प्रकार कुछ भी अन्तिम निर्णय नही हो सकता है। यदि धनका समान विभाग अधिक उपयोगी है तो धनकी उत्पत्तिको भी तो कम उपयोगी नहीं कहा जा सकती है। परंतु धनका समान विभाग तथा धनकी उत्पत्ति समान अनुपातमें नही चलती है। परिणाम इसका यह है कि जहां

समष्टिवादके अनुसार पदार्थोंकी उत्पत्तिका कम होना।

अधिक उत्पत्ति तथा समष्टिवादमें कौन अधिक उपयोगी है।

पहिला बनता है, दूसरा बिगड़ जाता है और जहां दूसरा बनता है वहां पहिला बिगड़ जाता है। इसी कारण राज्यका एकमात्र अधिकतम उपयोगताको अपना आदर्श बनाना कठिन है।

तृतीय परिच्छेद

व्यष्टिवाद

१-व्यष्टिवादके लाभ

राष्ट्रीय हस्तक्षेपमें हानि तथा लाभ दोनों ही हैं।

राज्यकी आर्थिक नीतिका अभीतक कोई पथ-दर्शक सूत्र नहीं मिला है, इसपर पूर्व परिच्छेदमें प्रकाश डाला जा चुका है। प्रत्येक कार्यमें हानि तथा लाभ दोनों ही होते हैं, राष्ट्रीय हस्तक्षेपमें भी इससे कोई भिन्न नियम नही है। कठिनता जो कुछ है वह यही है कि यह कैसे जाना जाय और मापा जाय कि अमुक राष्ट्रीय हस्तक्षेपके अमुक लाभ तथा हानियाँ है और लाभ तथा हानिमें कौन अधिक है और किस सीमातक अधिक है ? बहुतबार यह देखा गया है कि राष्ट्रीय हस्तक्षेपके प्रत्यक्ष परिणाम इतने महत्वपूर्ण तथा आवश्यक नहीं होते जितने कि अप्रत्यक्ष परिणाम।† इसी प्रकार यह भी स्पष्ट ही है कि वैयक्तिक हित इसीमें है कि राज्यनियमोंका प्रयोग भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके आचार व्यवहार तथा स्वभावको देखकर किया जाय। परन्तु ऐसा करना संभव न होनेसे राज्य नियमोंके प्रयोग तथा निर्माणका आधार उपयोगिता, स्वतन्त्रता, समानता आदि अमूर्त सिद्धान्तोंपर रखा जाता है।

† अप्रत्यक्ष परिणाम – इ डाइरेक्ट कान्सिक्वेन्सेज (Indirect consequences).

इस दशामें राज्यनियम तथा पारिवारिक स्नेहके पारस्परिक संबंधका कई स्थानोंपर भंग हो जाना स्वाभाविक ही है। जिस समय एक न्यायाधीश किसी मनुष्यको फाँसी देता है उस समय वह राज्य नियमोंको देखता है न कि उस मनुष्यको। संभव है कि वह मनुष्य बहुत ही अच्छा हो। उसपर कुछ ऐसी विपत्तियाँ आकर पड़ गयीं हो जिनसे घबड़ा करके उससे राज्यनियम भंग हो गया। इस दशामें फाँसीके बिनाही यदि वह मनुष्य समाजके लिये उपयोगी बनाया जा सके तो फाँसीपर चढ़ाकर सदाके लिए उसे खो देना कहाँतक युक्ति युक्त है? आजसे कुछ समय पूर्व यूरोपमें और भारतमें अबतक जनसमाजको विचार तथा भाषण संबन्धी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है; इसका परिणाम यह होता है कि बहुतसे योग्यसे योग्य मनुष्योंको असमयमें ही सत्य बोलने या लिखनेके कारण हमसे जुदा हो जाना पड़ता है। सत्याग्रहके कारण महात्मागांधीको जो जो कष्ट उठाने पड़े उनको कौन नहीं जानता। इस दशामें क्या यह ठीक न होगा कि राज्य जहाँतक हो सके वैयक्तिक मामलोंमें कमसे कम हस्तक्षेप करे।

राज्य नियमोंका पारिवारिक स्नेहसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

अतः राज्य का कमसे कम हस्तक्षेप ही लाभप्रद है।

(क) माग तथा व्ययमें व्यष्टिवाद

व्ययका पदार्थोंकी उत्पत्तिके साथ संबंध।

पदार्थोंकी उत्पत्ति उनके व्ययपर ही निर्भर है पदार्थोंकी माँगद्वारा ही व्यक्तियोंकी आवश्यकता-

का पता लगता है। मनुष्य, स्त्रियाँ तथा बालक अपनी अपनी आवश्यकताओंके अनुसार पदार्थोंको प्राप्त करना चाहते हैं। इनको पदार्थोंके प्रयोगमें स्वातन्त्र्य देनेके बहुतसे लाभ हैं। आजकल सहस्रों व्यययोग्य पदार्थ है। कौन सा पदार्थ कितना आवश्यक तथा कितना उपयोगी है यह भिन्न भिन्न व्यक्तियोंपर ही निर्भर करता है। व्यक्ति ही अपनी आवश्यकताको अच्छी तरहसे समझते हैं। समाजमें दरिद्र तथा धनी दोनों ही प्रकारके मनुष्य विद्यमान है। जिन जिन स्थानोंमें धनी पुरुष अपने धनका खर्च कर सकता है उन उन स्थानोंमें दरिद्र पुरुषका धन खर्च करना आवश्यक नहीं है। दरिद्र पुरुष अपने धनसे प्राय जीवनोपयोगी पदार्थोंको ही खरीदा करते हैं। इससे विपरीत धनी पुरुष अपने धनका बहुत बड़ा भाग भाग विलासके पदार्थोंमें ही व्यय करते है। इस दशामें राजनियमोंद्वारा पदार्थोंका व्यय कैसे निश्चित किया जा सकता है। यदि राज्य ऐसा करे तो भी इस कार्यमें वह सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। यही नहीं ऐसा करनेसे राज्यको स्वत लाभ ही क्या है ? यदि यह कहा जाय कि व्ययी लोग अपनी आवश्यकताको पूर्ण तौरपर समझनेमें असमर्थ हैं, वह शराब आदिपर धन फूँकते हैं और अपनी स्वास्थ्य नष्ट करते हैं, अत राज्यको व्ययमें हस्तक्षेप अवश्य ही करना चाहिए, तो इसका उत्तर

यह है कि व्ययमें राज्य वहाँ ही हस्तक्षेप करे जहाँ व्ययसे जनताको हानि पहुँचती हो। साधारणतः व्ययमें राज्यको निर्हस्तक्षेपकी नीतिका ही अवलम्बन करना चाहिए। परिश्रमसे कमाये हुए धनको स्वतन्त्रतापूर्वक व्यय करनेमें जो सुख मिलता है वह सुख इस अवस्थामें कभी भी नहीं मिलता जब कि दूसरोंकी आज्ञाके अनुसार धनका व्यय करना पड़े।

यही कारण है कि उन्नतिशील समाजमें पदार्थोंके उपभोगसे ही स्वातन्त्र्यका इतिहास प्रारम्भ होता है। पदार्थोंकी उत्पत्ति तथा विनिमयमें जनताको स्वतन्त्रता मिलनेसे बहुत पूर्व ही पदार्थोंके उपभोगमें स्वतन्त्रता मिल चुकी थी। बहुतसे विचारकोंकी सम्मति है कि व्ययकी स्वतन्त्रताका उत्पत्ति तथा विनिमयकी स्वतन्त्रता परिणाम है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि जब राज्य-नियम, देशप्रथा तथा जातपाँतके बन्धन व्ययको स्वतन्त्रताको रोकते हैं तो देशकी आर्थिक उन्नतिको बड़ा भारी धक्का पहुँचता है। यह सर्व सम्मतिसे सिद्ध है कि असभ्य जातियोंको उन्नतिकी ओर ले जानेका मुख्य साधन नवीन इच्छाओं तथा नवीन आवश्यकताओंको उत्पन्न करना है। यही कारण है कि असभ्य तथा अर्धसभ्य जातियोंको उन्नति करनेके लिए स्वतन्त्र व्यापारकी नीतिका अवलम्बन करना चाहिए। महाशय

वेबने ठीक कहा है कि "किसी जातिको अधिकसे अधिक सन्तोष तभी प्राप्त हो सकता है जब कि व्यक्तियोंके अनुसार पदार्थ उत्पन्न किये जायँ* समष्टिवादी भी व्ययियोंकी इच्छाओं तथा आवश्यकताओंको रोकना नहीं चाहते । माँगके अनुसार पदार्थको उत्पन्न करना ही उनका उद्देश्य है ।†

शिक्षा, धर्म आदिमें व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रता ।

प्राकृतिक पदार्थोंके सदृश ही अप्राकृतिक पदार्थोंके प्रयोगमें भी व्यक्तियोंको स्वातन्त्र्य मिलना चाहिए । यही कारण है कि सभ्य देशोंमें शिक्षा, धर्म तथा आमोदप्रमोदमें व्यक्तियोंको पूर्ण स्वतन्त्रता उपलब्ध है। इंगलड जर्मनी आदि उन्नत देशोंमें दरिद्र तथा अज्ञानी पुरुषोंके बालकोंके जीवनको उन्नत करनेके उद्देश्यसे राज्योंने प्राथमिक शिक्षा मुफ़ तथा बाधित की है । भारतीय चिरकालसे यही चाहते हैं, परन्तु अभीतक आंग्ल राज्यने भारतमें प्राथमिक शिक्षा बाधित तथा मुफ़ नहीं की है । सरकारी कालिजोंके विद्यार्थियोंको ही राज्यपद दे करके आंग्ल राज्यने भारतमें जातीय स्वतन्त्र शिक्षणको अवनत कर दिया है। इस प्रकार भारतमें जनसमाजकी शिक्षामें आंग्ल राज्यका एकाधिकार है जो जातीय उन्नतिके लिए कभी भी उपयुक्त नहीं कहा जा सकता ।

* Industrial Democracy by Sidney & Webb, Vol. II, p 418.

†Quintessence of Socialism by Schaffle, p.42.

डाक्टरी तथा वकालतमें राज्यका हस्तक्षेप।

इसी स्थानपर यह प्रश्न स्वभावतः उत्पन्न होता है कि क्या डाक्टरी तथा वकालतके कार्यों में भी राज्य हस्तक्षेप न करे? यह काम जो करना चाहें उनको करने देवें? इसका कारण यह है कि बहुधा अत्यन्त अयोग्य डाक्टर तथा वकील, डाक्टरी तथा वकालत करने लगते हैं। लोगोंको यह कैसे मालूम हो कि किसको क्या आता है, इससे लोगोंको अनेक बार नुकसान उठाना पड़ता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि यदि राज्य डाक्टरी वैद्यक तथा वकालतकी उपाधि तथा प्रमाणपत्र-को देना अपने हाथमें लेले तो भी ऊपर लिखित दूषण क्या दूर हो सकता है? क्योंकि ऐसा प्रायः देखा जाता है कि सम्पूर्ण उपाधियों तथा प्रमाणपत्रोंसे लदे हुए मनुष्य भी अपने कामको उस सफलतासे नहीं कर सकते जैसा कि दूसरे लोग। भारतमें आंग्ल राज्य चिरकालसे वैद्योंको स्वतन्त्रतापूर्वक वैद्यक करनेसे रोकना चाहता है, अपने इस उद्देश्यमें आंग्ल राज्य चाहे कितना ही युक्तियुक्त तथा पवित्र हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हम लोग अपने शरीरके स्वास्थ्यमें भी वस्त्रों आदिके सदृश ही अंगरेजी कारखानोंके अधीन हो जायँगे। अंगरेजी दवाइयोंके मँगानेसे देशको जो आर्थिक धक्का पहुँचेगा, उसका तो कहना ही क्या है? यही नहीं, वैद्योंको स्वतन्त्रतापूर्वक वैद्यक करनेसे रोकनेपर क्या वैद्यक-

वैद्यक करनेमें राज्यकी रुकावट। इससे देशका धन विदेशमें जाना और वैद्यकका लोप होना।

शास्त्र भारतसे लोप न हो जायगा? क्या वैद्यक-शास्त्रकी भी वही गति न होगी जो अन्य शास्त्रों-की हो रही है? वैद्यकके सदृश ही कानूनके स्वाध्यायकी दशा है। अंगरेजी कालिजोंके विद्यार्थी ही वकालत कर सकते हैं ऐसा आंग्ल राज्यका भारतमें नियम है। इससे भारतको कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचा है। प्राचीन न्यायविधिके लोप करनेसे भारतीयोंको न्याय प्राप्त करनेमें बहुत ही अधिक धन खर्च करना पड़ता है। प्राचीन कालमें पञ्चायतोंद्वारा जो न्याय होता था, उसका सौवां भाग भी अब सैकड़ों रुपये खर्च करनेपर भी जनताको नहीं मिलता होगा। कानूनका शिक्षण चाहे गुरुओंद्वारा हो या कालिजोंद्वारा, इसमें हमको कोई विरोध नहीं। परन्तु इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि कानून बनानेकी वर्तमानकालीन विधि हमारे लिए सर्वथा ही अनुपयुक्त है। इससे हमको हानिके सिवाय कुछ भी लाभ नहीं हो रहा है। प्रश्न तो यह है कि पञ्चायतोंद्वारा न्यायका कार्य्य शुरू होनेपर क्या राज्य-नियम-शिक्षणमें राज्यका जो एकाधिकार है उसपर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा? हमारी सम्मतिमें कानूनके शिक्षण में राज्यको एकाधिकार छोड़ना पड़ेगा या उसमें ऐसे परिवर्तन करने पड़ेंगे जिससे पञ्चायतकी रीति सफलतापूर्वक चल सके। बहुतसे विचा-रकोंकी यह सम्मति है कि डाकृर तथा वकील

न्यायका अंग्रेजी ढंग भारतके लिए हानिकर है।

पञ्चायतों द्वारा न्याय।

भारतमें वैद्य, वकीलों को अपने अपने कामोंमें स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।

एकमात्र राज्यसेवक ही हों। उनको स्वतन्त्रतापूर्वक काम करनेसे रोक देना चाहिए, यह विचार हमको युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। हम लोगोंकी जैसी सामाजिक तथा आचारसम्बन्धी दशा है उसके लिए यही उपयुक्त है कि वैद्यों, डाकूरों तथा वकीलोंको स्वतन्त्रतापूर्वक काम करनेसे न रोका जाय। इसमें स्वतन्त्र स्पर्धाका सिद्धान्त जहाँतक लगे वहाँतक उत्तम ही है। इसमें सन्देह नहीं कि आंग्ल राज्यकी सरकारी अस्पतालोंमें डाकूरोंके सदृश ही हकीमों तथा वैद्योंको भी अपनी ओरसे नौकर रखना चाहिए जिससे सम्पूर्ण धर्मके लोग लाभ उठानेमें समर्थ हो सकें। इसी प्रकार राज्यको अपनी ओरसे कुछ योग्य वकीलोंको नौकर रखना चाहिए जो कि दरिद्र निर्धन भारतीयोंकी ओरसे निःशुल्क या अत्यन्त कम फीस लेकर पैरवी कर दिया करें, भारतीयोंकी स्वतन्त्रताका भंग अन्य स्थानोंपर भी होता है जिसको भुलाना न चाहिए।

सरकारी अस्पतालोंमें हकीम वैद्योंका रखना

जिलोंके मजिस्ट्रेटोंके हाथमें ही न्याय तथा शासन है। इसका परिणाम यह है कि मजिस्ट्रेट ही एक ओरसे भारतियों पर अपराध लगाता है और दूसरी ओर वही उसका निर्णय करता है, आदम स्मिथने ठीक कहा है कि "जब निर्णायक तथा शासकशक्ति एक ही व्यक्तिके हाथमें हों उस समय राजनीतिके लिए न्यायका बलि चढ़ जाना स्वाभा-

मजिस्ट्रेटोंके हाथोंमें न्याय तथा शासन-शक्ति एक साथ ही न होनी चाहिए, इसपर राजनीतिज्ञोंकी सम्मति

विक ही होता है।" इसी प्रकार मान्टस्क्यूका कथन है कि "यदि न्याय सम्बन्धिनी शक्ति शासकों-के ही हाथमें दे दी जाय, तो अत्याचारका होना स्वाभाविक ही है क्योंकि जो किसी व्यक्तिपर अपराध लगानेवाला होगा वही उस व्यक्तिके अपराधका निर्णय करनेवाला भी होगा।"* जिन देशोंमें शासक तथा निर्णायक शक्ति एकहीके हाथमें होती है, वहाँ व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रता हर समय नष्ट होती रहती है, ऐसी भयङ्कर दशामें आर्थिक उन्नति तथा अन्य सामाजिक उन्नतिका न होना स्वाभाविक ही है। उन्नतिकी सम्पूर्ण दिशाओंमें स्वतन्त्रताके सदृश ही धर्ममें स्वतन्त्रताका होना अत्यन्त आवश्यक है। धार्मिक स्वतन्त्रताके लिए यूरोपीय लोगोंने जो यत्न किया वह प्रशंसनीय है।

इसका देश-की आर्थिक उन्नति पर प्रभाव।

धार्मिक स्वतन्त्रता।

(ख) उत्पत्तिमें व्यष्टिवाद

व्यक्तियोंकी आवश्यकताओंको पूर्ण करना ही उत्पादकोंका मुख्य उद्देश्य है। आजकल बहुत कम उत्पादक होंगे जो कि अपने लिये पदार्थोंको उत्पन्न करते हों। इस दशामें उत्पत्तिपर विचार करते समय दो बातोंका विचार कर लेना चाहिये।

उत्पत्तिमें राज्य का हस्तक्षेप।

(१) कौनसे पदार्थोंकी उत्पत्ति दूसरे मनुष्यों-की आवश्यकताओंपर प्रभाव डालती है और किस प्रकार।

* लेखकको "शासन पद्धति" पृष्ठ ११—१२

(२) कौनसे पदार्थोंकी उत्पत्ति उत्पादकोंकी स्वकीय आवश्यताओंपर प्रभाव डालती है और किस प्रकार।

उत्पत्तिमें पूर्ण स्पर्धाके लाभ।

उत्पादक लोग व्यक्तियोंकी आवश्यकताओंको अनेक तरीकोंसे पूर्ण कर सकते हैं, पर आम तौरपर माना जाता है कि पूर्ण स्पर्धा (free competition) से पदार्थ सस्ते अच्छे तथा बहुत बनते हैं और व्यक्तियोंतक सुगमतासे ही पहुँच जाते हैं।

विनिमयमें पूर्ण स्पर्धा भी इसीलिये आवश्यक है कि उसीके द्वारा उत्पन्न पदार्थ व्यक्तियोंतक पहुँचते हैं। पूर्ण स्पर्धाके कारण पदार्थोंकी संख्या-बढ़ गयी है। नये नये पदार्थ उत्पन्न किये गये हैं। रेलों तथा अखबारोंका दाम बहुत ही कम हो गया है। आजकल रेलद्वारा एक मील जानेमें केवल एक ही पैसेका खर्च होना इस बातको प्रकट करता है कि पूर्ण स्पर्धासे क्या क्या उत्तम काम हो सकते हैं। उत्पतिमें व्यष्टिवादसे पदार्थों-की उत्पत्ति बढ़ती है इसको समष्टिवादी भी मानते हैं। उनका व्यष्टिवादसे विरोध केवल इसी-लिये है कि इससे असमानता बढ़ती है। पदार्थों-की उत्पत्ति-वृद्धिमें उनका कुछ भी विरोध नहीं है। आजकल बड़े बड़े कारखानोंके कलद्वारा चलनेसे, पूर्ण स्पर्धा तथा क्रमागत वृद्धि नियमके पूर्ण तौरपर लगनेसे पदार्थोंका उत्पत्ति व्यय बहुत

पदार्थोंकी उत्पत्तिका बढ़ना।

ही कम हो गया है और पदार्थ बहुत ही सस्ते हो गये हैं।

पूर्ण स्पर्धासे पूँजीका नाश होते हुए भी लाभ ऐसे हैं जो कि भुलाये नहीं जा सकते

कुछ एक व्यष्टिवादके विरोधी यह कहते हैं कि पूर्ण स्पर्धाके कारण नवीन व्यवसायोंके खुलने तथा नवीन आविष्कारोंके निकलनेसे बहुतसी पुरानी स्थिर पूँजी वृथा ही नष्ट होती है। निस्सन्देह! परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या जनसमाजको यह थोड़ा लाभ है कि उसको नवीन बातोंका ज्ञान हो गया। नवीन आविष्कारोंका निकलना इतना बड़ा लाभ है कि उसके लिये करोड़ों रुपये भी पानीमें बह जावें तो थोड़ा है। आश्चर्य तो यह है कि श्रम समितियोंमें भी पूर्ण स्पर्धा करने, नवीन आविष्कार निकालने तथा उत्तम विधियोंसे पदार्थ उत्पन्न करनेकी ओर अत्यन्त अधिक प्रवृत्ति है। शुरू शुरूमें उन्होंने व्यवसायपतियों तथा देशप्रथाओंके विरुद्ध राज्यसे प्रार्थना की और अपनी भृति बढ़ानेका यत्न किया। परन्तु जब इससे उनका सफलता न प्राप्त हुई तो उन्होंने अपने आपको श्रम समितियोंके रूपमें संगठित किया। इसमें उनको पूर्ण सफलता मिली और वे आविष्कार कल प्रयोग आदिमें दिनपर दिन अग्रणी होते जाते हैं। अन्तरीय व्यापारमें सभी देशोंने व्यष्टिवादका अवलंबन किया है। जर्मन साम्राज्यकी सभी रियासतें एक दूसरी रियासतमें

किसी प्रकारकी बाधाके बिना ही स्वतन्त्रतापूर्वक पदार्थ भेज सकती हैं।

पूर्ण स्पर्धासे आर्थिक घटना उत्पन्न होती है।

(२) पूर्ण स्पर्धाके विरुद्ध सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि इससे उत्पादकोंको नुकसान पहुँचता है। प्रायः व्यवसाय टूट जाते हैं। यह कितनी बड़ी हानि है इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि पूर्ण स्पर्धाके भयसे अमरीकन व्यवसायोंने अपने आपको ट्रस्टके रूपमें परिवर्तित कर लिया है। इस हानिके साथसाथ पूर्ण स्पर्धाके लाभ भी बहुत ही अधिक हैं जिनको न भूलना चाहिये।

स्पर्धाके लाभ

पूर्ण स्पर्धाके कारण श्रमियोंको कार्य शीघ्र ही मिल जाता है, पदार्थोंमें मिलावट कम होती है। आजकल खानों, गृहों, भट्टों, रेलों आदिमें पुरुष स्त्री काम करते हैं। कपड़े बनानेवाले कारखानोंमें स्त्री तथा बालक भी काम कर लेते हैं। कृषिमें वृद्ध तथा स्त्रियाँ लग सकती हैं। इससे श्रमियों-की दशाका उन्नत होना आवश्यक है। इग्लैंडमें इन्हीं बातोंके कारण श्रमियोंकी कार्यक्षमता बढ़ गयी है। यह सब होते हुए पूर्ण स्पर्धाकी कुछ हानियाँ हैं। जिनको भूलना न चाहिए। अन्त-र्जातीय व्यापारमें पूर्ण स्पर्धासे जो हानिकर प्रभाव होता है उसका प्रत्यक्ष प्रभाव यही है कि आज-कल लगभग सभी सभ्य जातियोंने बाधित व्यापारकी नीतिका अवलम्बन किया है। जातीय विचारसे पूर्ण स्पर्धाको व्यावसायिक युद्धसे

पूर्ण स्पर्धाकी भयकर हानियाँ

ससारकी सभ्य-जातियोंका अन्तर्जातीय-व्यापारमें बाधा लगाना।

उपमा दी जाती है। समान शक्तिवाले ही युद्ध करनेमें तैयार हो सकते हैं बालक तथा युवा-का युद्ध जिस प्रकार बालकके लिए हानिकर है उसी प्रकार बालक व्यवसायी देशका युवा व्यवसायी देशोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त होना भी हानिकर है। यदि कोई देश ऐसे युद्धमें प्रवृत्त हो भी जाय तो परिणाम यह होगा कि उसके बालक व्यवसाय नष्ट हो जायँगे और उसको एकमात्र कृषक बनाना पड़ेगा। भारत तथा इंग्लंडका व्यापार इसी प्रकारका है। भारतको इंग्लैंडने ही स्वव्यावसायिक नीतिसे कृषक देश बना दिया है। ऐसी दशामें भारतको ऐसी पूर्ण स्पर्धा रोक कर शीघ्र ही व्यावसायिक देश बननेका यत्न करना चाहिए।

भारत के लिए भी विदेशीय व्यापारमें बाधा लगाना आवश्यक है।

ग—विभागमें व्यष्टिवाद

अति स्पर्धा तथा अल्प स्पर्धाकी जो हानियाँ हैं वे किसीसे भी छिपी नहीं हैं। 'आजकल ये इस सीमातक पहुँची हैं कि यदि यह कहा जाय कि आजकल पूर्ण स्पर्धा सर्वथा नहीं है' तो अत्युक्ति न होगी। व्यावसायिक प्रजातन्त्र राज्य (Industrial Democracy) के प्रसिद्ध लेखक महाशय वेबका कथन है कि व्ययी तथा उत्पादक, शारीरिक श्रमी तथा मानसिक श्रमी इत्यादिका पारस्परिक सम्बन्ध पूर्ण स्पर्धासे बहुत दूर है। आज-

पूर्ण स्पर्धा का व्यापार व्यवसाय में अभाव।

एकाधिकार के विषयमें वेब की सम्मति।

कल कहीं पर भी इसकी सत्ता विद्यमान नहीं है। वास्तविक बात तो यह है कि आजकल प्रत्येकके क्रय-विक्रयमें अपूर्ण स्पर्धा ही विद्यमान है। इसीलिए हमको एकाधिकार 'नियम' समझना चाहिए और पूर्ण स्पर्धाको 'अपवाद'। आजकल राजकीय एकाधिकार (Legal monopolies) प्राकृतिक एकाधिकार (Natural monopolies) पक्षपातजन्य एकाधिकार आदि नानाविध एकाधिकार सर्वत्र विद्यमान हैं। परन्तु इससे यह परिणाम निकालना कि प्राचीन कालमें एकाधिकार नहीं थे बड़ी भारी भूल करनी होगी। यूरोपीय देशोंमें मध्यकालके अन्दर व्यावसायिक कार्य्योंमें जो एकाधिकार थे, कुस्तुन्तुनियाके आर्थिक इतिहासको देखनेसे उसका अन्दाज़ लगाया जा सकता है। इस नगरने असभ्योंपर विजय प्राप्त करनेके अनन्तर एक हज़ार सालतक संपूर्ण यूरोपीय व्यापारपर अपना एकाधिकार रखा। यह एकाधिकार अन्तरीय विक्षोभ, दान तथा राष्ट्रीय कार्योंमें धनका फूँकना, राजकीय प्रभुत्व शक्ति, धनव्यय तथा करभार आदि कारणोंसे स्वयं ही नष्ट हो गया। इस एकाधिकारकी सीमाका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि प्रत्येक स्थानमें व्यावसायियों, शिल्पियों तथा कारीगरोंका कुस्तुन्तुनियामें एकाधिकार था। राजकीय कर्मचारियोंका जो प्रभुत्व था वह इसीसे

प्राचीन कालमें एकाधिकार

जाना जा सकता है कि कृषिजन्य पदार्थ, व्याव-सायिक पदार्थ, भृति, लाभ आदिको राज्य ही नियत करता था। मध्यकालमें जो एकाधिकार थे, वर्त्तमानकालीन एकाधिकार उनके छायामात्र हैं। यह क्यों? यह इसीलिए कि आजकल लोगोंमें एकाधिकारके विरुद्ध विचार बढ़ते जाते हैं। पूर्ण स्पर्धाको लोग उचित समझते जाते हैं। यह क्यों? इसके निम्नलिखित कारण हैं।

पूर्ण स्पर्धा क्यों उचित मानी जाती है

क—यदि पूर्ण स्पर्धा, श्रम तथा पूँजीका पूर्ण भ्रमण और माँग तथा उपलब्धि द्वारा पदार्थोंका मूल्य निश्चित हो तो इसका मुख्य लाभ यह है कि इससे लोगोंको समान कार्यक्षमताके लिए समान भृति मिलेगी और उनमें समष्टिवाद बढ़ेगा। इस प्रकार आदर्श व्यष्टिवाद तथा समष्टि-वादका अन्तिम परिणाम धनकी समानता ही है।

ख—माँग तथा उपलब्धि द्वारा पदार्थोंके मूल्य निश्चित होनेसे प्रत्येक क्रेता विक्रेताको स्वत-न्त्रता होगी कि वह किस कीमतपर पदार्थ खरीदे और बेचे। इससे न किसीको अधिक लाभ ही होगा और न किसीको नुकसान ही। आयकी समानताकी ओर प्रवृत्ति होनेसे लोगोंमें बन्धु-भाव बढ़ेगा।

ग—इस प्रकार पूर्ण स्पर्धा द्वारा स्वाभाविक स्वतन्त्रताको बिना भंग किये ही जनसमाजमें समानता, स्वतन्त्रता तथा बन्धुभाव बढ़ सकता

है। सारांश यह है कि आदर्श व्यष्टिवाद तथा समष्टिवादके परिणाम एक ही हैं। प्रथम जहाँ स्पर्धा द्वारा उन परिणामोंपर पहुँचना चाहता है वहाँ दूसरा स्पर्धा भंग करके राजकीय एकाधिकार द्वारा उन परिणामोंको प्राप्त करना चाहता है।

स्पर्धा तथा एकाधिकार दो सिरे हैं जिनके मध्यमें जन समाजका आर्थिक चक्र घूमता है।

ऊपर लिखी तीनों बातोंसे महाशय निकलसन यह परिणाम निकालते हैं कि आदर्श व्यष्टिवादके अनुसार प्रत्येक मनुष्य स्वेच्छानुसार पदार्थोंको उत्पन्न तथा व्यय कर सकता है और उसको श्रम भी बहुत करना नहीं पड़ेगा। हमको जो कुछ यहाँपर कहना है वह यह है कि पूर्णस्पर्धा वास्तविक जगत्से बहुत दूर है। कोई भी सिद्धान्त चाहे वह समष्टिवाद और चाहे वह व्यष्टिवादका प्रचारक हो हम लोगोंको लाभ नहीं पहुँचा सकता यदि वह हमारी वास्तविक दशाको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखता है। जन समाज सिद्धान्तोंको देख करके नहीं चलता है। एकाधिकार तथा स्पर्धा दो सिरे हैं, जिनके बीचमें जन समाजकी आर्थिक गति चक्कर खाती है। एकाधिकारकी प्रबलतामें वह स्पर्धा चाहती है और स्पर्धाकी प्रबलतामें वह एकाधिकार चाहती है। विदेशीय स्पर्धासे अपने व्यवसायोंको बचानेमें अमरीकाने बाधित व्यापारकी नीतिका अवलम्बन किया है। अन्तरीय स्पर्धा तथा बाधित व्यापारने अमरीकामें ट्रस्टको जन्म दिया और अब अमरीका ट्रस्टोंको तोड़ना चाहता है

एक ओर अमरीकाने स्वदेशीय व्यवसायोंको बाह्य स्पर्धासे बचाया और वही उनमें अन्तरीय स्पर्धा-को उत्पन्न करना चाहता है। यह इस बातको सूचित करता है कि किस प्रकार जातियों तथा राज्योंकी आर्थिक गति है। किस प्रकार स्पर्धा तथा एकाधिकारके दो सिरोंके बीचमें सम्पूर्ण आर्थिक घटनाएं घूमती हैं।

२-व्यष्टिवादकी हानियाँ

व्यष्टिवादका आधार (i) मनुष्यकी स्वाभाविक स्वतन्त्रता तथा (ii) उसकी स्वार्थपरता इन दो सिद्धान्तोंपर निर्भर है। यदि कार्य-जगत्में ये दोनों सिद्धान्त कार्य न करते हों तो व्यष्टिवादका प्रचार करना गलती करना होगा। वास्तविक बात तो यह है कि कोई भी मनुष्य स्वाभाविक स्वतन्त्रताकी दशामें नहीं है। सभ्यताके बढ़नेके साथसाथ राज्य धर्म जाति तथा परिवारके बन्धन दिनपर दिन अधिक दृढ़ होते जाते हैं। समाजके बन्धनके बिना स्वाभाविक स्वतन्त्रता कितनी निरर्थक है इसका रहस्य देश निकालेके दण्डसे ही जाना जा सकता है। इसी रहस्यको जानकर अरस्तुसे हेगलतक सम्पूर्ण दार्शनिकोंने मनुष्यको सामाजिक जीव प्रकट किया है। समाजके बिना जंगलमें पड़े रहना आजकल स्वातन्त्र्यके स्थानपर कैदसे भी अधिक बुरा समझा जाता है। निस्सन्देह

मनुष्यकी स्वाभाविक स्वतन्त्रता तथा स्वार्थपरता ही व्यष्टिवादका आधार है।

मनुष्यमें उपरिलिखित दोनों बातें पूर्ण सीमातक नहीं हैं।

अति सब जगह बुरा है। येही सामाजिक बन्धन जब अत्यन्त कठोर हो जाते हैं और उनकी लचक सर्वथा नष्ट हो जाती है, तो उस समय समाज इन्हीं बन्धनोंको तोडनेका यत्न करता है। फर्रांसीसी आक्रान्तिका जन्म इसी कारणसे हुआ था।

राज्यप्रबन्ध तथा राज्य नियमोंका पक्षपातशून्य होना आवश्यक है

राज्यप्रबन्ध तथा राज्यनियमोंका पक्षपात शून्य होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि किसी देशमें राज्यनियम तथा प्रबन्धका आधार किसी एक दल या परजातिके स्वार्थोंपर आश्रित हो तो उस दशामें उस देशको स्वतन्त्रता रहित ही समझना चाहिये। मैन्चस्टरदल तथा आंग्ल जातिकी नीतिके अनुसार ही भारतीय राजनीति है। इस दशामें भारतको स्वतन्त्र समझना गलती करना होगा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि शनै शनै स्वातन्त्र्य प्राप्त हो सकता है तो आक्रान्ति जहाँतक न की जाय उतना ही उत्तम है। परन्तु जहाँ शान्त विधियोंसे स्वातन्त्र्यकी आशा न हो वहाँ आक्रान्तिसे बढ़कर और कोई उत्तम साधन नहीं है।

देशप्रथा तथा दशकी दरिद्रता वैयक्तिक स्वतन्त्रता का नाश कर सकती है

राज्यनियम तथा राज्यप्रबन्धके स्वातन्त्र्य नाशक होनेके सदृश ही देशकी आर्थिक अवस्था तथा देशप्रथा वैयक्तिक स्वातन्त्र्यका घात कर सकती है। यदि किसी देशमें वेतन इतना कम हो कि उससे पेट भर खाना भी न मिल सके और श्रमियोंको १६ घंटे काम करना पड़े तो उस देशके

श्रमियोंको स्वतन्त्र कहना सर्वथा निरर्थक है। इसी प्रकार देशमें लोगोंकी बेकारीको समझना चाहिए। भारतमें सैकड़ों मनुष्य बेकार फिर रहे हैं, उनको कार्य तथा भोजन नहीं मिलता। राज्यका यह कर्त्तव्य है कि उनको कार्य तथा भोजन दे। इँगलैंडके सदृश ही भारतमें भी राष्ट्रीय कार्य्यगृह तथा दरिद्र नियम (Poor laws) बनने चाहिए जिनसे भूखे मनुष्योंको खाना और बेकार मनुष्योंको कार्य प्राप्त हो। व्यवसायोंके संरक्षणकेलिए राज्यको बाधक-करकी नीतिका अवलम्बन करना चाहिए और कृषकोंको समृद्ध बनानेके लिए भौमिक लगान सर्वथा ही न लेना चाहिए। यदि वह ऐसा न कर सके तो स्थिर लगानकी विधि प्रचलित करनी चाहिए। सारांश यह है कि स्वाभाविक स्वतन्त्रताकी आशा करना वृथा है। राज्यनियम देशप्रथा धर्मबन्धन तथा आर्थिक दशा आदि नानाविध कारण वैय-क्तिक स्वतन्त्रताके घातक हैं। उनके बुरे तथा हानिकर प्रभावोंसे जनताको बचानेके लिए राज-कीय हस्तक्षेप अत्यन्त आवश्यक है।

मनुष्य स्वार्थ के सदृश ही परोपकार में भी काम करते हैं।

स्वाभाविक स्वतन्त्रताके सदृश ही मनुष्य सदा ही स्वार्थसे काम नहीं करता है। सबसे बड़ी कठिनता तो यह है कि स्वार्थ क्या है इसीका हमको पता नहीं। क्योंकि स्वार्थ शब्दके उतने ही तात्पर्य हैं जितने कि मनुष्य हैं। स्वार्थमें भी

उन्नत अवनतकी श्रेणियाँ हैं। मौकेके लिए यत्न करना और बात है। प्रश्न यही उत्पन्न होता है कि उन्नत तथा अवनत स्वार्थकी भेदक रेखा कौन सी है? किस स्थानसे उन्नत स्वार्थ अवनत स्वार्थ हो जाता है? परोपकार उन्नत स्वार्थ है परन्तु अधिकतर एक संस्थाके उपकार करनेकी इच्छासे लोग वैयक्तिक जीवनकी स्वतन्त्रताको पददलित करते हैं। बड़ी बड़ी चालाकियोंसे लोगोंको फँसाकर लाते हैं और जब लोग काम करनेमें वृद्धावस्था या रोगके कारण असमर्थ हो जाते है तो संस्थाके नाम पर ही उनको पृथक् कर देते हैं। प्रश्न यही है कि यह कहाँतक उपयुक्त है? इस प्रकारका परोपकार कहाँतक किसी संस्थाको उन्नत कर सकता है? सारांश यह है कि वैयक्तिक स्वतन्त्रताके सदृश ही वैयक्तिक स्वार्थ भी पेचीदा है। इसको भी किसी सत्य सिद्धान्तका आधार नहीं बनाया जा सकता।

व्यष्टिवादकी सफलता व्यक्ति तथा परिस्थिति पर आश्रित है।

इस प्रकार स्पष्ट हो गया होगा कि व्यष्टिवादका आधार स्वाभाविक स्वतन्त्रता तथा वैयक्तिक स्वार्थपर नहीं रखा जा सकता। वास्तविक बात तो यह है कि कार्यजगत्में व्यष्टिवादकी सफलता वा असफलता व्यक्ति तथा परिस्थितिपर निर्भर करती है। किस परिस्थितिमें किस प्रकारका व्यक्ति व्यष्टिवादका अवलम्बन करता है इसपर ही उसकी सफलता असफलताकी नींव है। बहुधा

धर्मान्ध लोग व्यक्तियोंको स्वधर्मावलम्बी बनानेके लिए खूनकी नदियाँ बहा देते हैं और प्रायः साव-धान राजनीतिज्ञ अवनतसे अवनत देशको उन्नति-के शिखरपर पहुँचा देते हैं। इस दशामें क्या कहा जा सकता है। व्यष्टिवाद अच्छा या बुरा है इसका निर्णय कैसे किया जाय। यही कारण है कि भिन्न भिन्न परिस्थितियोंके ख्यालसे ही व्यष्टिवादकी सफलता असफलताका विचार करना चाहिए।

क—व्यय तथा मांगमें व्यष्टिवाद

समष्टिवादके खण्डमें इसपर प्रकाश डाला जा चुका है कि किस प्रकार प्रत्येक समाजमें सम्पत्ति तथा आयकी असमानता विद्यमान है। बहुतसे मनुष्योंको भोजन खानेतकको नहीं मिलता और बहुतसे मनुष्योंको कोटिशः धन इधर उधर भोग विलासके पदार्थोंमें फेंकना पड़ता है। पदार्थोंकी उत्पत्ति धनाढ्योंको ही देखकर प्रायः की जाती है। बहुत कम कारखाने हैं जो दरिद्रोंका ख्याल कर पदार्थोंको उत्पन्न करें। परिणाम इसका यह है कि दरिद्रोंका अपने आवश्यकीय पदार्थ महँगे मिलते हैं और धनाढ्योंको अपने आवश्यकीय पदार्थ सस्ते मिलते हैं। इससे कुल समाज-को नुकसान पहुँचता है। समष्टिवादी इसी उद्देश्यसे पदार्थोंकी उत्पत्ति तथा विक्रय पर राज्यका प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं।

संपत्ति तथा आयकी असमानता।

पदार्थोंकी उत्पत्तिमें धनाढ्यों तथा दरिद्रोंका भाग।

पदार्थोंके प्रयोगमें राज्य, का हस्तक्षेप

परिमित पदार्थोंमें असमान धन विभागकी भयङ्कर अप्रत्यक्ष हानियाँ हैं। इँगलैंडमें ऊनके काममें अधिक लाभ देखते ही जमींदारोंने अपनी अपनी जमीनोंपरसे दरिद्र किसानोंको निकाल दिया और जमीनोंको चरागाह बनाकर भेड़ बकरियोंको पालना शुरु किया। इससे इँगलैंडमें अनाज पूर्वापेक्षा महँगा हो गया। यह घटना इस बातको सूचित करती है कि व्ययमें भी राज्यके हस्तक्षेपकी आवश्यकता है।

धनाढ्य लोग कुत्तोंके सजाने, रंडियोंके नचाने तथा शराब आदि मादक द्रव्योंके पीनेमें अनन्त धन नष्ट करते हैं, इसमें राज्यका हस्तक्षेप होना आवश्यक है। अवधके तालुकेदारोंका आचार-व्यवहार कितना भ्रष्ट है यह वे ही लोग अच्छी तरह जानते हैं; जिनको उनसे कभी काम पड़ा है। तालुकेदार दरिद्र किसानोंका धन लूटते हैं जब कि उस धनसे समाजका कोई भी काम नहीं करते। भारतीय राज्यको इस प्रकारके तालुकेदारोंको नेस्तनाबूद करना चाहिए और साथ ही भारतीय भूमियोंका स्वयं महातालुकेदार बननेका शौक भी उसे छोड़ देना चाहिए। इसीमें भारतीय जनताका हित है।

अवधके तालुकेदार

तालुकेदारोंको नेस्तनाबूद करना चाहिये

खाद्य पदार्थोंके प्रयोगमें राज्यका हस्तक्षेप

प्रत्येक व्ययी सस्ता माल खरीदना चाहता है। परिणाम इसका यह होता है कि चीज़ोंमें मिलावट की जाती है। कलकत्ते तथा अन्य बड़े

बड़े नगरोंमें दूधमें पानी और गेहूँके आटेमें बाजरे मक्के आदिका आटा मिलाया जाता है। कई दिनकी रक्खी मिठाइयोंको हलवाई लोग बेचते हैं। इन बुराइयोंसे जनसमाजको बचानेके लिए राज्यको नियम बनाना चाहिए। प्राकृतिक सम्पत्तिके प्रयोगमें भी राज्यको हस्तक्षेप करना चाहिये क्योंकि यदि एक बार किसी स्थानसे सारे कासार। जंगल कट जाय तो वहाँ पेड़ोंका लगाना बहुत ही कठिन हो जाता है। भारतीय राज्यने जंगलात विभाग स्थापित करके बहुत ही अधिक बुद्धिमत्ताका काम किया है।

प्राकृतिक सम्पत्तिके प्रयोगमे राज्यका हस्तक्षेप

प्राकृतिक सम्पत्तिके व्ययके सदृश ही अप्राकृतिक सम्पत्तिके व्ययमें भी राज्यके हस्तक्षेपकी जरूरत है। शिक्षा, धर्म तथा शिल्पके प्रचारमें हस्तक्षेप आवश्यक है, उसपर प्रकाश डाला जा चुका है, व्ययके सदृश पदार्थोंकी माँगमें भी व्यष्टिवादसे काम नहीं चल सकता है, शराब, अफीम, गाँजा इत्यादि पीनेसे जनताको रोकनेके लिए राज्यको पूर्ण तौर पर यत्न करना चाहिए।

अप्राकृतिक सम्पत्तिके प्रयोग में राज्यका हस्तक्षेप

ख—उत्पत्तिमे व्यष्टिवाद

मांग तथा व्ययको देख करके ही प्रायः पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं। उत्पादकों तथा व्ययियोंका स्वार्थ भिन्न भिन्न है। एक महँगा बेचना चाहता है और दूसरा सस्ता खरीदना चाहता है। उत्पादकोंने व्ययियोंको तंग करनेके लिये किस प्रकार

उत्पत्तिमें हस्तक्षेप

ट्रस्ट तथा पूलमें अपने आपको संगठित किया है। इसपर लेखकने अपने वृहत्सम्पत्तिशास्त्रके एकाधिकार तथा पूँजीके प्रकरणमें प्रकाश डाला है। इस प्रकारके संगठन समाजके लिये हानिकर हैं अतः राज्यको इनमें हस्तक्षेप करना चाहिये।

उत्पत्तिमें पूर्ण स्पर्धा नहीं है। फुटकर बेचनेवाले आपसमें मिलकर पदार्थोंका मूल्य निश्चित करते हैं और इस प्रकार पदार्थोंको महँगा करके बेचते हैं। डाकूरों, वकीलों, पुलों, रेलों आदिके शुल्क निश्चित हैं। इन कार्योंमें राज्यका हस्तक्षेप इतना स्पष्ट है कि कुछ भी अधिक लिखना वृथा प्रतीत होता है। इश्तहार बाजीमें आजकल जो इतना धन फूँका जा रहा है, उसको रोकनेका कोई न कोई उपाय अवश्य ही सोचना चाहिये। कलों द्वारा पदार्थोंकी उत्पत्तिके कारण जो श्रमी बेकार फिरते हैं, राज्यका कर्त्तव्य है कि इन्हें काम दे। शिक्षामें भी राज्यकी सहायता अत्यन्त आवश्यक है, यही नहीं, आजकल पदार्थोंके विनिमयमें बजाजों तथा बनियोंकी श्रेणी इतनी बढ़ गई है कि उनका घटाना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। सारांश यह है कि पदार्थोंकी उत्पत्तिमें भी एकमात्र व्यष्टिवादसे काम नहीं चल सकता।

ग—विभागमें व्यष्टिवाद

आजकल विभागमें व्यष्टिवाद पूर्णरूपसे है।

उपयोगिता, स्वाभाविकन्याय तथा स्वतन्त्रताको आधार न बनाते हुए भी विभागमें यह प्रश्न स्वतः ही उत्पन्न होता है कि पूर्ण स्पर्धा या व्यष्टिवादसे कहाँतक श्रमियों को अपने श्रमका उचित बदला मिलता है ? कहीं धनविभागमें इनकी असफलता-का परिणाम स्वतन्त्रता, न्याय तथा उपयोगिताका नाश तो नहीं है ? इन प्रश्नोंपर गम्भीर विचार करनेके लिये प्रत्येक आयपर पृथक् तौरपर विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है ।

विभागमें हस्त-क्षेपका प्रश्न

( ) भौमिक लगान—भूमिमें उत्पादक शक्ति स्वाभाविक है । मनुष्य अपने श्रमसे भौमिक शक्तिको उपयोगमें लाकर लाभ उठाता है । भूमि-पर क्रय दायाद तथा लूटमारके द्वारा लोगोंने स्वत्व प्राप्त किया है । ऐसी दशामें राष्ट्र भूमिपर स्वत्व किस प्रकारसे प्राप्त करे ? कितना धन देकर उनके मालिकोंसे भूमि प्राप्त करे ? यदि भूमिको राज्य न खरीदे तो भौमिक लगानका कितना भाग करकेद्वारा ग्रहण करे कि उससे भूमिकी उत्पादक शक्तिपर कुछ भी प्रभाव न पड़े ? इत्यादि इत्यादि प्रश्न हैं जिनका उत्तर एकमात्र व्यष्टिवादसे ही नहीं दिया जा सकता । इस प्रश्नपर हम करके प्रकरणमें विस्तृत रूपसे विचार करेंगे अतः इसको यहाँ ही छोड़ देते हैं ।

भूमिका स्वत्व-सम्बन्धी प्रश्न

(ii) लाभ—व्यवसायोंमें जितना उत्पत्ति-व्यय होता है उतना लाभ व्यवसायपतियोंको नहीं

उद्योग धन्धों-की उन्नतिमें राज्यका हस्त-क्षेप।

मिलता। व्याज तथा संरक्षित व्यापारके सम्पूर्ण विवाद इस बातको प्रकट करते हैं कि एकमात्र व्यष्टिवादसे यहाँपर भी काम नहीं चल सकता। दृष्टान्तके तौर व्याजहीको लीजिये। व्याज के निश्चित करनेमें राज्यका प्रयास निरर्थक है, यह सभी संपत्तिशास्त्रज्ञ जानते हैं। परन्तु प्रश्न

व्याजमें हस्तक्षेप

तो यह है कि क्या कृषि प्रधानदेशोंमें भी व्याजको कम करनेका राज्यको यत्न न करना चाहिये। भारतमें आँग्ल राज्यने तकावी आदि विधियोंको व्याजकी कठोरता कम करनेके लिये प्रचलित किया है। यह इसी बातका सूचक है कि व्याज में किस प्रकार व्यष्टिवाद असफल है। व्याजके

लाभमें हस्तक्षेप

सदृश ही लाभको लीजिये। अन्तर्जातीय व्यापार-की यह प्रवृत्ति है कि व्यवसाय स्थानीय हो जावें। ऐसी दशामें अन्तर्जातीय और अन्तरीय स्पर्धाके कारण जिन व्यवसायोंको धक्का पहुँचा है, क्या राज्य उनका संरक्षण न करे? यूरोपीय देशों तथा आँग्ल उपनिवेशोंको बाधित व्यापारकी नीतिका अवलम्बन करना ही इस बातको बताता है कि राज्यकी सहायताकी कितनी आवश्यता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि जिन व्यवसायोंमें लाभके

आर्थिक लगान का प्रश्न

अन्दर आर्थिक लगान निकलता है उसको राज्य किस प्रकार ग्रहण करे? वास्तविक बात तो यह है कि आजकल जातियोंका ध्यान विशेषतः इस ओर नहीं है। फ्रान्स कितना अनन्त धन व्यय-

सार्योंके समुत्थानमें सहायताकी तौरपर खर्चकर रहा है। इसपर लेखकके बृहत्संपत्तिशास्त्रके "विनिमयके साधन" नामक परिच्छेदमें विस्तृत तौरपर प्रकाश डाला जा चुका है। आयकर साम्यकर मृत्युकर आदि ले करके ही जातियाँ आजकल सन्तुष्ट हैं। क्योंकि आर्थिक लगानके लेनेके लोभमें बहुत बार लाभके स्थानपर देशके व्यवसार्योंको नुकसान पहुँच जाता है। भारतमें भौमिक लगानके भागी करके रूपमें परि- वर्तित होनेसे भारतीय कृषिको जो धक्का पहुँच रहा है वह स्पष्ट है।

भृतिमें आर्थिक लगान

(111) **भृति—भृतिमें आर्थिक लगान है**' इसपर भी लेखकके बृहत्संपत्तिशास्त्रके लगानके परिच्छेदमें विस्तृत रूपसे प्रकाश डाला जा चुका है। लाभके सदृश ही भृतिको बढ़ाना ही यूरोपीय जातियाँ पसन्द करती हैं। क्योंकि इससे कार्यक्षमता बढ़ती है। यदि किसीकी अधिक भृति हो तो अन्य व्यक्तियोंके सदृश ही उससे भी आयकर आदि कर ले लिये जाते हैं। बहुत पेशोंमें भृति आवश्यकीय भृतिसे भी कम होती है। ऐसे देशोंमें भृतिके बढ़ानेका राज्यको यत्न करना चाहिए।

चतुर्थ परिच्छेद

भारत सरकारका भारतीय कृषि व्यापार तथा व्यवसायमें हस्तक्षेप

प्राकृतिक सपत्ति पर स्वत्व

१—भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिपर भारत सरकारका स्वत्व कहांतक न्याययुक्त है ? अर्थात् भारतीय भूमि, जंगल, खान आदिपर भारत सरकारका स्वत्व किस न्यायसे है ? क्योंकि इन प्राकृतिक सम्पत्तियोंको सरकारने नहीं बनाया है। भारत सरकार आंग्ल जातिकी प्रतिनिधि है और उसीके प्रति उत्तर दायी है। ऐसी दशामें प्रतिनिधिके रूपमें भारत सरकारका इंग्लैंडकी भूमि खान नदी जंगल आदिपर स्वत्व होना उचित है परन्तु भारतकी प्राकृतिक सम्पत्ति पर ऐसा स्वत्व न्याय संगत कभी भी नहीं कहा जा सकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि स्वत्वसम्बन्धी यह झगड़ा ही क्योंकर उठा ? भारत सरकारने भारतीय प्राकृतिक सम्पत्तिपर स्वत्व स्थापित ही क्यों किया ? यदि वह इसपर अपना स्वत्व न स्थापित करती तो उसको क्या नुकसान था ? इन प्रश्नोंका उत्तर कुछ भी कठिन नहीं है। आगे चलकर यह दिखाया

स्वत्व सम्बन्धी प्रश्नका रहस्य

जायगा कि भारत सरकारकी शिक्षाके सदृश ही आय व्ययको नीति भी विचित्र है। उसने एक ओर तो भारतको कृषिप्रधान देश बनाया है और भारतके व्यापार व्यवसायका एकाधिकार इंग्लिस्तानके लोगोंके हाथोंमें दिया है दूसरी ओर योरुपीय व्यवसायिक देशोंके भयंकर तौरपर बढ़े हुए खर्चोंको भारतपर फेंक दिया है। भारत को तो **सरकारने खेतिहर देश** बनाया है और नौसेना स्थलसेना तथा वायुसेनाकी वृद्धिमें सरकारको दिनरात चिन्ता लगी रहती है। योरुपीय लोगोंको भारतके उच्चसे उच्च पद देती है और उनकी तनख्वाहें भी बहुत ही अधिक रखती है। इन सब भयंकर खर्चोंका परिणाम यह हुआ है कि शिक्षा आदि उत्तम बातोंपर कुछ भी खर्चा नहीं किया जाता और दिवाला निकलनेके भयसे भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिको दिनपर दिन बड़ी तेजीसे हथियाया जाता है।

सरकारकी आय व्यय नीति

भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिपर स्वत्व स्थापित करनेसे भारत सरकारको बड़ा भारी लाभ है। एक मात्र स्वत्व स्थापित करनेसे ही भारतकी प्राकृतिक सम्पत्ति उसके लिए कामधेनुका रूप धारण कर लेती है। वह उस सम्पत्तिसे जितना अधिक धन चाहे निकाल सकती है। उसको बजटके रूपमें एक बार भी पास करवानेकी ज़रूरत नहीं पड़ती। क्योंकि बजटमें टैक्स बढ़ाने

प्राकृतिक सम्पत्ति पर स्वत्व स्थापित करनेके लाभ

या घटानेके मामलेको ही पेश किया जाता है। प्राकृतिक सम्पत्ति तो सरकारकी ही है। उससे यदि सरकारकी आय बढ़ती है तो यह सरकारके ही प्रबन्धकी उत्तमता समझी जावे। उसको बजटमें टैक्सका स्थान देकर क्यों पास कराया जाय ? इस कूटनीतिका फल यह हुआ कि सरकारने भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिको बुरी तरहसे निचोड़ा है। भारतके सारेकेसारे अनुचितउचित खर्चोंका भार इसी प्राकृतिक सम्पत्ति पर फेंका है। इससे भारतकी उत्पादक शक्ति घट गयी है। किसान मालगुजारीके बढ़नेसे भूखों मरने लगे हैं। जंगलातके नियमोंके कठोर होने और जंगलोंका स्वामित्व भारत सरकारके पास होनेसे लकड़ी बहुत महँगी हो गयी है। मालगुजारीकी अधिकतासे किसानोंको साराकासारा अनाज बेंचदेना पड़ता है। इस अनाजको युरोपीय देशोंके लोग खरीदते हैं। वे लोग समृद्ध हैं और अधिकसे अधिक दाम देकर यहाँका अनाज खरीदते हैं। इससे भयंकर महँगी उत्पन्न हो गयी है। इस महँगीका दूर होना तबतक असम्भव है जबतक सरकार भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिसे अपना स्वत्व न हटावेगी। क्योंकि इस स्वत्वके हटते ही मालगुजारीका लेना रुक जायगा और भारतीय किसान समृद्ध हो जायँगे और उनके कर्जेका चुकता हो जायगा। यह लोग विदेशियोंके हाथमें

धन शोषण

उस हदतक न बेचेंगे जिस हदतक अब वे बेच रहे हैं। इसके साथ ही साथ भारत सरकारको भारतीय अनाजका विदेशमें जाना रोक देना चाहिये।

क्या प्राकृतिक संपत्तिपर राज्य का स्वत्व पुरागत है?

यहाँ भारत सरकार यह कह सकती है कि भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिपर राज्यका स्वत्व अनन्त कालसे चला आया है। एक वही उस स्वत्वका परित्याग क्यों करे? इसका उत्तर यह है कि जो बात अनुचित है वह अनुचित ही है। कबसे कौन बात चली और कबसे कौन नहीं चली? और चूँकि पुराने जमानेसे चली आयी हैं अतः ठीक है इस ढंगके विचार तो बेईमान स्वार्थी मूर्ख लोगोंके होते हैं। यदि भारत सरकार स्वराज्य देनेमें जातपांतको भारतीय स्वराज्यका दिलसे बाधक मानती है तो फिर क्यों भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिपर अपने स्वत्वके लिये वंशागत तथा पुरागत तत्वोंको सामने रखती है। प्राचीन कालमें क्या था? इससे भारत सरकारको क्या मतलब? प्रश्न तो यह है कि भारत सरकारका भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिपर स्वत्व किस न्यायसे है? क्या भारत सरकारने भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिको बनाया है? क्या भारत सरकारने भारतभूमिके दलदलोंको सुखाया है और जंगलोंको काटा है? यदि ये बातें भारत सरकारने नहीं की हैं और इससे विपरीत मालगुजारी

ज्यादा बढ़ाकर भारतीय भूमिकी उत्पादक शक्ति तथा भारतीय किसानोंकी शक्तिको घटाया है और दोनोंको ही नीरस, निःशक्त तथा दरिद्र कर दिया है, तो ऐसी अवस्थामें भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिपर उसका स्वत्व किस प्रकार माना जा सकता है।

प्राचीन हिन्दू राजा भारतकी प्राकृतिक सपत्ति को अपनी नहीं समझते थे

सबसे बड़ी बात तो यह है कि भारतके प्राचीन राजाओंने कभी भी भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिको अपनी सम्पत्ति नहीं बनाया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण बंगाल ही है। बंगाली जमींदारोंका अभी अपनी भूमि तथा खानोंपर स्वत्व पूर्ववत् बना है यद्यपि सरकारने रोडसेस आदि अनेक राज्य करोंसे बंग देशकी सम्पत्ति पर उनके स्वत्वको निरर्थक तथा लाभरहित बना दिया है परन्तु इसको कौन छिपा सकता है कि बंग देशकी प्राकृतिक सम्पत्तिपर बंगीय प्रजाका ही स्वत्व है।

महर्षि जैमिनिका विचार

भारतके प्राचीन राजा अपनेको भारतीय भूमिका मालिक न समझते थे। प्रजाहीका भारतीय भूमि जंगलों तथा खानोंपर स्वत्व है ऐसे ही विचार मीमांसाकारोंने हम लोगोंके सम्मुख रखे हैं। महाराज जैमिनिने मीमांसादर्शनमें लिखा है कि—

न भूमिः सर्वान् प्रत्यवशिष्टत्वात्।
मीमांसा अ० ६ पा० ७ अधिकरण १-२

देया न वा महाभूमिः स्वत्वाद्राजा ददातु ताम्।
पालनस्यैव राज्यत्वान्न स्वं भूर्द यतेनसा ॥ २ ॥

यदा सार्वभौमो राजा विश्वजिदादौ सर्वस्वं ददाति, तदा गोपथराजमार्गजलाशयाद्यान्विता महाभूमिस्तेन दातव्या । कुतः भूमेस्तदीयधन त्वात् । "राजासर्वस्येष्टे ब्राह्मण वर्जम्" इति स्मृते । इति प्राप्ते ब्रूमः ।

दुष्टशिक्षाशिष्टपरिपालनाभ्यां राज्ञ. ईशितृत्वम् स्मृत्यभिप्रेतम् ।

इति न राज्ञो भूमिर्धनम् । किन्तु तस्यां भूमौ स्वकर्मफलं भुञ्जानानां सर्वेषां प्राणिनाम साधारणं धनम् । अतोऽसाधारणस्य भूखण्डस्य सत्यपि दाने महाभूमेर्दानं नास्ति ।

अर्थात् जब राजा सार्वभौम विश्वजित यज्ञमें सर्वस्वदान करता है तो क्या वह नहर, तालाब, सड़क आदि समेत सम्पूर्ण भूमिका दान कर सकता है ? क्योंकि स्मृतियोंमें कहा है कि राजा ब्राह्मणोंको छोड़कर सबका स्वामी है। ऐसा पूर्व प्रश्न होनेपर सिद्धान्तीका उत्तर है कि "राजाका स्वामित्व प्रबन्धके विषयमें है न कि भौमिक सम्पत्तिके विषयमें। इस प्रकार सिद्ध है कि 'न राज्ञो भूमिर्धनम्' अर्थात् भूमि राजाकी सम्पत्ति नहीं है। वह तो उन सब प्राणियोंकी सम्पत्ति है जो कि उनपर निवास करते हैं। अर्थात् प्रजाकी सम्पत्ति है। यही कारण है कि राजा अपनी

सम्पत्तिस्वरूप भूमिके किसी एक टुकड़ेका दान कर सकता है। परन्तु सम्पूर्ण भूमिका दान नहीं कर सकता।

महाराज जैमिनि भारतीय सम्पत्तिपर प्रजाका ही स्वत्व समझते हैं राजाका स्वत्व नहीं समझते, यह उपरिलिखित प्रमाणसे सर्वथा स्पष्ट है। हमारा प्रश्न है कि किस न्यायसे ईस्ट इण्डिया कम्पनीने बंगालको अंग्रेज प्रजाके हाथोंमें बेंचा? और किस न्यायसे अंग्रेज प्रजाने बंगाल खरीदनेका रूपया बंगालसे वसूल किया? असली बात तो यह है कि धर्म अधर्म पाप पुण्य तो पुरानी जमानेकी बातें हैं। सरकारको जो कुछ करना है वह करती है। न्याय तथा धर्म तो भारतके प्राचीन शास्त्रों तथा स्मृतिकारोंके साथ ही चितामें जल गये। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन स्मृतिकारों तथा सूत्रकारोंने भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिपर राज्यका स्वत्व कभी भी न माना और अपने आपका अपने ही रुपयासे बेचनेका विचार तो उनके स्वप्नमें भी न आया था। वह विचारे जब कभी सोचते थे तो भी यही सोचते थे कि

बंगालका बेचना अन्याय युक्त है

स्वभागभृत्यादास्यत्वे प्रजानाञ्च नृपः कृतः।
ब्राह्मणा स्वामिरूपस्तु पालनार्थं हि सर्वदा॥

शुक्रनीति अ० १ पृष्ठ १७
(वेंकटेश्वर प्रेसका संस्करण)

अर्थात् राजा प्रजाका धन राज्यकरके तौरपर

होता है अत प्रजाका दास है। वह तो स्वामीके पदपर तभीतक है जबतक कि प्रजाका पालन करता है। इसके सिवाय अन्य किसी समयमें भी वह प्रजाका स्वामी नहीं हो सकता।

परन्तु आंग्ल राज्यने तो इस स्वामित्वको इस हदतक बढाया कि भारतकी भूमि, खान, जगल आदि सभी भारतीय प्राकृतिक सम्पत्ति उसके पेटमे चली गयी। पालन करना तो दूर रहा! उसने उसको कामधनु समझकर बुरी तरहसे निचोडना शुरू किया। परन्तु भारतके प्राचीन राजा ऐसा नहीं करते थे। फाहियान जिसने सवत् ४५७ विक्रमायमे भारतवर्षमे यात्रा की थी अपनी यात्रा वृत्तान्त लिखते समय लिखा है कि—

भारतकी प्राकृतिक सम्पत्तिका दुरुपयोग।

फाहियानकी सम्मति।

'मथुराके आगे रेगिस्तान है। रेगिस्तान (राजपूताना) के लोग बाह्य हैं। इसके समीप ही वह देश है जो मध्यदेश कहलाता है। इस देशका जलवायु गरम और एक सदृश रहता है। न तो वहाँ पाला पडता है न बर्फ। वहाँके लोग बहुत अच्छी अवस्थामें हैं। उनको राज्य कर नहीं देना पडता और न राज्यकी ओरसे उनको कोई रोक टोक है जो लोग राज्यकी भूमिको जोतते हैं उन्हींको भूमिकी उपजका कुछ अंश देना पडता है। वह जहाँ चाहें जा सकते हैं और जहाँ चाहें रह सकते हैं। [देखिये समुएल

बील लिखित बुद्धिष्ट रिकार्डस आफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड (१८८४) प्रथम भाग भूमिका पृष्ठ ३७, ३८]

ह्यूनसांगकी सम्मति।

इसी प्रकार चीनी यात्री ह्यूनत्सांगका जिसने ६८७ विक्रमीयमें यात्रा की थी कथन है कि—

"देशकी शासन प्रणाली उपकारी सिद्धान्तों-पर होनेके कारण सरल है। राज्य चार मुख्य भागोंमे बँटा है। एक भाग राज्यप्रबन्ध चलाने तथा यज्ञादिके लिये दूसरा भाग मन्त्री और राज्यकर्मचारियोंकी आर्थिक सहायताके लिये तीसरा भाग बड़े बड़े योग्य मनुष्योंके पुरस्कारके लिये और चौथा भाग यशकी वृद्धिके लिये होता है। इस प्रकारसे लोगोंके राज्यकर हल्के है और उनसे शारीरिक सेवा हलकी ली जाती है। प्रत्येक मनुष्य अपनी सांसारिक संपत्तिको शांतिके साथ रखता है और सब लोग अपने निर्वाह के लिये भूमि जोतते बोते हैं। जो लोग राजाकी भूमिको जोतते हैं उनको उपजका छठाँ भाग राज्य-करकी भाँति देना पड़ता है। ... ...नदीके मार्ग तथा सड़कें बहुत थोड़ी चुंगी देने पर खुले हैं।*

ह्यून्सांग तथा फाहियानके ऊपर लिखित

---

* देखिये मेमुएल बील लिखित "बुद्धिष्ट रिकार्डस आफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड" (१८८४) का भाग १, पृष्ठ ८७ से ८६ तक।

वाक्योंमें "जो लोग राजाकी भूमिको जोतते हैं उनको उपजका ६ वाँ भाग राज्यकरकी भाँति देना पड़ता है" ये शब्द अत्यन्त ध्यान देने योग्य हैं। क्योंकि इन शब्दोंसे यह स्पष्ट झलकता है कि राजाका प्रजाकी सम्पूर्ण भूमिपर स्वत्व नहीं था। उसकी जो भूमि वैयक्तिक सम्पत्तिस्वरूप थी उसपर खेती करनेके लिये ६ठा भाग किसानोंको राज्य-करके तौर पर देना पड़ता था।

शुक्राचार्यका विचार।

'प्रजाका भूमिपर स्वत्व था' इसी कारणसे भूमिकी मालगुजारी राजालोग बढ़ाते नहीं थे। शुक्र नीतिमें लिखा है कि—

प्राजापत्येन मानेन भूभागहरणं नृपः ॥
सदा कुर्य्याच्च स्वापत्तौ मनुमानेन नान्यथा।
लोभात्संकर्षयेद्यस्तु होयते सप्रजो नृपः ॥

शुक्रनीति अ० १ पृष्ठ १८-१६
वेङ्कटेश्वर-प्रेस संस्करण।)

अर्थात् प्रजापति महाराजने जो भूमि-भाग राजाके लिये नियत किया है उसीके अनुसार राजाको अपना भाग लेना चाहिये। जब बहुत विपत्ति पड़े तब मनु महाराजके अनुसार भूमिका भाग ग्रहण करे। जो राजा भूमिसे अधिक मालगुजारी ग्रहण करते हैं वे प्रजाको तो नष्ट करते ही हैं उसके साथसाथ आप स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

इन सब प्रमाणोंके होते हुए भी भारत सरकार अपनी इच्छा तथा ज़रूरतके अनुसार

मालगुजारीका बढ़ाया जाना

भूमिसे मालगुजारी बढ़ाती जाती है। दुर्भिक्ष पड़ते हैं और करोड़ों लोग भूखे मरते हैं परन्तु भारत सरकारको इसकी क्या चिन्ता। अकबरके समयसे अब मालगुजारी दुगुनीसे कईगुना ली जा रही है जब कि भूमिकी उत्पादक शक्ति उस समय की अपेक्षा आधी रह गयी है। बंगाल मद्रास तथा बम्बईके प्रान्त इसी मालगुजारीकी वृद्धिसे वीयावान हो गये। अब एक समृद्ध प्रान्त इसी मालगुजारी वृद्धिसे अधिक दरिद्र प्रान्त हो गया* परन्तु सरकारको इससे क्या मतलब? उसको तो भारतमें इंग्लैंडके पूंजीपतियों तथा पुतलीघरके मालिकोंके स्वार्थपूर्ण उद्देश्योंको पूरा करना है। इसी कूटनीतिका परिणाम यह हुआ कि भारतके सम्पूर्ण व्यवसाय लुप्त हो गये और जो बचे हैं वे भी दिन पर दिन लुप्त होते जा रहे हैं।

२ व्यावसायिक अधःपतनमें भारत सरकारका भाग।

वस्त्र व्यवसाय

भारतका सबसे प्राचीन व्यवसाय वस्त्र व्यवसाय था। करोड़ों भारतीय विधवाएं तथा साधारण स्त्रियां सूत कात कर जीवन निर्वाह करती थीं। यहाँ जो कपड़े बनते थे वही यूरोपमें बिकने जाते थे और भारतको धनधान्यसे पूर्ण रखते थे। आंग्ल व्यापारियोंका जबसे भारत पर

* देखो, भारतीय सम्पत्तिशास्त्र प० प्राणनाथ लिखित खण्ड २. परिच्छेद २।

प्रभुत्व हुआ है तभीसे उनकी स्वार्थाग्निमें भारत-
का वस्त्र व्यवसाय झुलस गया है। चन्द्रगुप्तके
समयमें भारतसे रोममें ६ करोड़ रुपयेका सामान
प्रतिवर्ष जाता था। इससे रोमका धन भारतमें
चला आता था और रोमको इस धन क्षतिसे
बचनेके लिए हमारे सामानको बहिष्कृत करना
पड़ा था। मेगस्थनीज़ने चन्द्रगुप्तकालीन भार-
तीयोंके विषयमें लिखा है कि 'भारतवासी शिल्प-
में बहुत ही चतुर हैं। उनके कपड़ों पर सुनहरी
काम होता है और उनमें रत्न जड़े होते हैं। वे
प्रायः फूलदार मलमलके वस्त्र पहिनते हैं। उनके
पीछे नौकर लोग छाता लगाकर चलते हैं क्योंकि
वह लोग सुन्दरतापर बहुत ही ध्यान देते हैं
अपनी सुन्दरता बढ़ानेके लिए सबप्रकारके
उपाय करते हैं। इस वाक्यसे स्पष्ट है कि किस
प्रकार भारतीयोंका शिल्प तथा वैभव बहुत ही
अधिक बढ़ा हुआ था। चन्द्रगुप्तके कालसे
मुसलमानी कालके अंततक यह शिल्प तथा वैभव
पूर्ववत् ज्योंका त्यों हराभरा बना रहा।
शुरूशुरूमें आंग्ल व्यापारियोंको भारतके वस्त्र
व्यवसाय को तबाह करनेकी इच्छा न थी। यही
कारण है कि १७६५ से १८१३ तकके भारतीय
व्यापारसे इंगलैंडको भारतमें ४,२८,००,००,०००
रुपये भेजने पड़े। इसपर इंगलैंडमें बड़ा शोर मचा
और इंग्लैंडने भारतके वस्त्रोंको अपने देशमें

रोमका भारतीय पदार्थोंका बहिष्कार करना

मैगस्थनीजका मत

आनेसे सदाके लिए रोक दिया। १८७० विक्रमीयसे पूर्वतक भारतीय वस्त्रोंपर इंगलैंडमें राज्यकी ओरसे जो बाधक सामुद्रिक कर लगा था उसका ब्योरा इस प्रकार है।

इंग्लैंडमें वस्त्र व्यवसायपर बाधक सामुद्रिक कर

भारतीय पदार्थ	इँगलैंडमें सामुद्रिक कर
छीट	१०२५ रु०
मलमल	४१० रु०
रङ्गीन वस्त्र	बेंचना बिलकुल बन्द

१८५० वि० में यही सामुद्रिक कर इस प्रकार और भी अधिक बढ़ाया गया।

भारतीय पदार्थ	इँगलैंडमें सामुद्रिक कर
छींट	१८७५ रु०
मलमल	४७० रु०
रङ्गीन वस्त्र	बेंचना बिलकुल बन्द

बंगालमें जुलाहों पर अत्याचार

इन सामुद्रिक करों तथा धाधाओंसे इँगलैंडने भारतके वस्त्रोंको स्वदेशमें घुसनेसे रोका। बङ्गालमें जुलाहोंपर ऐसे भयङ्कर अत्याचार किये गये कि उन्होंने वस्त्रोंका बुनना छोड़कर इधर उधर भागना शुरू किया। इन सब कूटनीतियोंका परिणाम यह हुआ कि भारतसे वस्त्र-व्यवसाय सदाके लिए लुप्त हो गया। और जुलाहे लोग बेकार होकर खेतीके कामोंको करने लगे। विक्रमीय २०वीं सदीमें भारतीय पूँजीपतियोंने स्वतन्त्र व्यापार तथा निर्हस्तक्षेपकी नीतिका सहारा प्राप्त कर कपड़े बुननेके लिए कुछ एक मिलें खोलीं।

भारतीय कारखानोंपर व्यावसायिक कर

१८३८ विक्रमीयमें ये मिलें अच्छी तरह चलने लगीं और इन्होंने पतली धोतियाँ बनाना शुरू कर दिया। इस उद्योगसे मेञ्चेस्टर तथा पैस्लेके पुतलीघरके मालिकोंके कान खड़े हो गये। उन्होंने शोर मचाया और भारतीय मिलोंके सत्यानाशके लिए यत्न किया। भारत सरकार तो इंगलैंडके पुतलीघरके मालिकोंके प्रति अप्रत्यक्ष रूपसे उत्तरदायी है। अतः उसने बिना किसी प्रकारकी हिचकिचाहटके भारतीय मिलोंपर १८३८ विक्रमीयमें ३½ प्रति शतकका व्यवसायिक कर लगा दिया और मिश्रकी उत्तम रूईको भारतमें आनेसे रोक दिया। इसी कारण भारतमें पतले कपड़ोंका बनाना असम्भव हो गया। आजकल भारत सरकारने इँगलैंडके स्वार्थको पूरा करनेके लिए स्वतन्त्रव्यापारकी नीतिको छोड़कर सापेक्षिक करकी नीतिका अवलम्बन किया है। उससे इँगलैंडके बालक तथा छोटे मोटे व्यवसायोंको भारतीयोंपर अप्रत्यक्ष रूपसे राज्यकर लगाकर बढ़ाया जायगा। विदेशोंसे जो सस्ता माल मिलता था और जिसके भारतमें कारखाने नहीं हैं उनपर भी सामुद्रिक कर लगाया जायगा और भारतके उन पदार्थोंका मूल्य चढ़ाकर इंगलैंडके कारखानोंको बढ़ाया जायगा। रंग तथा जर्मनमालका बहिष्कार इस साल इसी देश्यसे इंग्लैएडमें किया गया है। भारतको इससे बहुत ही अधिक नुकसान है

व्यवसायिक कर तथा सापेक्षिक करकी नीति

परन्तु भारतीय गाढ़ निद्रामें मस्त हैं। उनको इसकी क्या चिन्ता है कि वे मर रहे हैं या जी रहे हैं।

नौ व्यवसाय

वस्त्र व्यवसायके सदृश ही भारतमें आंग्ल राज्यने नौ व्यवसायका लोप किया है। वैदिक कालसे मुसलमानी कालतक भारतवर्ष नौ व्यवसायी रहा। महाभारत तथा रामायण जलयात्राके किस्सोसे भरपूर है। इसपर बहुत लिखना वृथा है। क्योंकि प्रत्येक भारतीयको यह बात मालूम है।

नौकाओंका स्वरूप

युक्तिक पतरूमें भिन्न भिन्न भारतीय नौकाओंकी जो लम्बाई चौडाई दी है उससे यह स्पष्ट है कि भारतमें यह व्यवसाय बहुत उन्नति कर चुका था।

नाम	लम्बाई हाथोंमें	चौडाई हाथोंमें	ऊँचाई हाथोंमें
क्षुद्रा	१६	४	४
मध्यमा	२४	१२	८
भीमा	४०	२०	२०
चपला	४८	२४	२४
पटला	६४	३२	३२
भया	७२	३६	३६
दीर्घा	८८	४४	४४
पत्रपुटा	९६	४८	४८
गर्भरा	११२	५६	५६
मन्थरा	१२०	६०	६०
जंघाला	१२८	१६	१२$\frac{४}{५}$

धारिणी	१६०	१०	१६
वेगिनी	१७६	२२	१६$\frac{?}{४}$

पञ्जाबमें सिन्धु नदी उपरिलिखित प्रकारकी नौकाओंसे भरपूर थी। सिकन्दरने कुछ ही समयमें वहाँसे दो हजार नौकाओंको एकत्रित किया था और उनके सहारे भारतपर आक्रमण किया था। महाराज चन्द्रगुप्तने भी जलसेना तथा नौका प्रबन्धके लिए एक पृथक् सभाग निर्माण किया था। अन्त्र कुशान कालमें भारतका व्यापार रोमके साथ शुरू हुआ और इससे भारतके नौ व्यवसायको विशेष उत्तेजना मिली। गुप्त तथा हर्षवर्धनके समयतक भारतीय नौ व्यवसाय दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता चला गया। यह वही समय है जब कि चोलराज्यके पोतसमूह गङ्गा तथा ईरावती नदीको घेरे रहते थे। कलिङ्गका पूर्वीय राज्य इस समय एक समृद्ध और वभवशाली राज्य था। इस राज्यके कई एक शिलालेखोंसे विदित होता है कि पोतविद्याका जानना तात्कालिक राजाओंकी शिक्षाका एक प्रधान अंग था। मुसलमानी समयमें भारतका नौ व्यवसाय अपनी पूर्ण उन्नतिपर जा पहुँचा। सिन्धका प्रसिद्ध बन्दरगाह दीवाल चीनी तथा ऊमानके व्यापारियोंका केन्द्र था। चीनी जहाज भड़ोंच ठहरते हुए दीवाल जाते थे। वल्बनने सामुद्रिक पोतोंके द्वारा ही बंगालका विजय किया था। अकबरके

सिकन्दरको साक्षी

चन्द्रगुप्त कालसे मुसलमानी काल तक नौ व्यवसाय

अकबरके

समय भारत-के नौ व्यव-साय

समयमें निम्नलिखित स्थान बंगालमें नौ व्यवसाय-के लिए प्रसिद्ध थे।

(१) सन्द्वीप।
(२) दूधाली।
(३) जहाजघाट।
(४) चाकस्नी।
(५) टंडा।
(६) वल्क।
(७) श्रीपुर।
(८) सोनारगेचात।
(९) सन् गेयान्।
(१०) धार।

धारकी प्रसिद्धि

धार नगर चिरकालसे बंगालमें नौ व्यवसाय-का केन्द्र था। यहाँके कुछ एक व्यापारियोंने अपने अपने जहाजोंके द्वारा रूसतक यात्रा की थी और वहाँ रेशमका माल बेचा था। औरङ्ग-ज़ेबके समयतक भारतीय नौ व्यवसायको उन्नति तथा उत्तेजना मिली। आंग्लोंका राज्य भारत पर आते ही वस्त्र व्यवसायके सदृश ही नौ व्यव-सायका भी लोप हो गया। महाशय टेलरने अपने हिन्दोस्तानके इतिहासमें लिखा है 'हिन्दुस्तानी जहाज़ जब लन्दनके नगरमें पहुँचे, उसी समय आंग्ल कारीगरोंमें हलचल मच गई। उन्होंने भार-तीय जहाजोंको देखते ही अपने सत्यानाशको ताड़ लिया। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया कि अब

आंग्लोंका नौ व्यवसायके नाशमें यत्न

भारतीय जहाजोंके कारण आंग्ल नौ व्यवसायियों-को भूखा मरना पड़ेगा। १८७ विक्र० में इङ्गलैण्ड-के अन्दर इस प्रश्नने भयङ्कर रूप धारण किया। उसी समयसे आंग्ल राज्यने अपनी स्थिर नीति बना ली कि आगेसे भारतीय नौ व्यवसायियोंको किसी प्रकारकी भी सहायता नहीं पहुँचायी जायगी। इसका परिणाम यह हुआ कि कई हज़ार वर्षोंसे प्रफुल्लित होता हुआ भारतीय नौ व्यवसाय आंग्ल कालमें सदाके लिये नष्ट हो गया।

चित्र तथा शिल्पकलाका लोप

नौ व्यवसाय तथा वस्त्र व्यवसायके सदृश ही भारतीय शिल्प तथा चित्र व्यवसाय भी आँग्ल कालमें नष्ट हुआ है। अशोकके स्तम्भ तथा स्तूपों-को जिन कारीगरोंने बनाया था उन्हींके सन्तानों तथा वंशजोंने मुसल्मानी समयकी बड़ी बड़ी इमारतोंको बनाया था। ताजमहल, हुमायूँका मकबरा तथा आगरा और दिल्लीके किले भारतीय शिल्पियोंके शिल्पके ही नमूने हैं। शिल्पके सदृश ही प्राचीनकालमें भारतीय चित्रण व्यवसायने भी अपूर्व उन्नति प्राप्त की थी। अकबरके राज्य दर-बारमें निम्नलिखित चित्रकार प्रसिद्ध थे—

(१) ताब्रिजके मीर सय्यदअली, (२) ख्वाजा अब्दुस्समाद, (३) दष्यन्थ, (४) बसवान, (५) केशु, (६) मुकुन्द, (७) जल, (८) मुश्किन, (९) फर्रुख, (१०) काल्मक, (११) मधु, (१२) जगत, (१३) महेश,

(१४) क्षेमकरण, (१५) तारा, (१६) सन्नुल्लाह, (१७) हरिवंश, (१८) राम।

इन चित्रकारोंकी आमदनीका इससे पता लगाया जा सकता है कि अकबरने रज्मनामा नामकी पुस्तकको ६००००० रुपयेमें खरीदा था। जहाँगीरको अकबरकी अपेक्षा चित्रकलामें अधिक शौक था। उसने इस कलाको बहुत उन्नत किया। आँग्लकालमें इस कलाकी भी उपेक्षा की गई और यह सर्वनाशको ही प्राप्त हो चुकी थी। कुछ एक बंगाली उत्साहियोंने इसका पुनरुद्धार किया है।

हैवलकी सम्मति

महाशय ई. बी. हैवलकी सम्मति है कि आँग्ल महाविद्यालयोंने चित्रण व्यवसायको अत्यन्त उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा है। आंग्ल शासकोंने भी इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया है। अकबर जहाँगीर तथा शाहजहाँके कालमें बड़े बड़े चित्र-कारोंके साथ मुगल सम्राट् तथा मुसलमानी नवाब मित्रोंके सदृश व्यवहार करते थे। हिन्दू राजाओंके समयमें राजपूतानेमें भी शिल्पियों तथा चित्र-कारोंका अच्छा मान होता था। उन्हें उच्च राज्यपद दिये जाते थे। कलकत्ताके राजकीय पुस्तकालयमें एक हस्तलिखित परशियन पुस्तक है जिसमें ताजमहल बनाने वाले भिन्न भिन्न शिल्पि-योंकी वेतनें इस प्रकार दी हुई हैं :—

चित्रकारोंकी प्रतिष्ठा

शिल्पियोंका वेतन

		रुपया	
प्रथम श्रेणीके शिल्पीका		१०००	मासिक वेतन
द्वितीय "	"	८००	"
तृतीय "	"	४००	"
चतुर्थ "	"	१००	"

मुसलमानी जमानेमें अनाज बहुत सस्ता था अतः ऊपर लिखित रुपयोंकी क्रयशक्ति वर्तमान समयसे दुगुनीसे भी कईगुना अधिक थी। परन्तु आजकल दशा विचित्र है। आजकल भारतीय शिल्पियोंकी तीससे साठ तककी वृत्ति बहुत समझी जाती है। राज्यकी ओरसे यदि उनको कभी कुछ प्रदर्शिनीमें दिया जाता है तो वह चार या पाँच रुपयेका तमगा ही होता है।*

राज्यपर कृषि तथा व्यवसाय का आधार

सारांश यह है कि कृषि व्यवसायका राज्यकी सहानुभूतिसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह वे लताएँ है जो राज्यरूपी पेडके सहारे रहती है। यदि राज्य ही नाशक चिनगारियाँ उगलने लगे तो देशकी कृषि व्यवसाय व्यापारका नाश हो जाना स्वाभाविक ही है।

देशकी आर्थिक दशा तथा राष्ट्रीय आय व्यय

देशके कृषि व्यवसाय व्यापारके साथ राष्ट्रीय आयव्ययका घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारत कृषिप्रधान

* ऊपर लिखित सम्पूर्ण अंश स्वर्गीय लेखकने अपने भारतीय सम्पत्तिशास्त्रमें विस्तृत रूपसे प्रकाशित किया है। यहाँ पर इस विषयका विस्तृत रूपसे भिन्न भिन्न ग्रन्थोंके प्रमाण देते हुए पर्यालोचन किया गया है।

देश बनाया गया है परन्तु इसपर राज्यका व्यय व्यवसायिक देशोंके सदृश है। इससे भारतीय राज्य ऋणी हो गया है और अधिक खर्चोंको पूरा करनेके लिए भारतीय प्रजासे राज्यकर बहुत ही अधिक लेता है। अब हम इसी विषयको विस्तृत रूपसे लिखनेका यत्न करेंगे।

पञ्चम परिच्छेद

भारत सरकारकी आर्थिक नीति तथा राष्ट्रीय आयव्यय

१—भारत सरकारकी आर्थिक नीति

प्रस्तावनाके सातवें तथा आठवें प्रकरणमें भारत सरकारकी शिक्षा कृषि नौव्यवसाय वस्त्र-व्यवसाय तथा व्यापार सम्बन्धी नीति दिखाया जा चुकी है। इस नीतिका राष्ट्रीय आयव्ययके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। सरकारकी नीतिसे व्यापार सम्बन्धी पेशे ही भारतमें आयके स्रोत है और व्यावसायिक पेशे सरकारको अधिक आय देनेमें सर्वथा ही समर्थ है। परन्तु भारतमे राष्ट्रीय व्यय अन्य यूरोपीय व्यावसायिक राष्ट्रोंके सदृश होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतमें आय तथा राष्ट्रीय व्ययमें पारस्परिक संतुलन नहीं है। कृषिप्रधान देशोंपर व्यवसायिक देशोंके खर्चोंका भार पडना अत्यन्त भयङ्कर है। इससे देशकी उत्पादक शक्ति तथा लोगोंकी पदार्थोंकी उत्पत्तिमे रुचि घट जाती है। देश दरिद्रता तथा दुर्भिक्षाके पञ्जोंमे जा फँसता है।

कृषक देश
पक

क ना प्रभ

जनताकी उत्पा
दक शक्ति तथा
रुचिका घटना

विचारक कहते हैं कि भारतसरकारने इँगलैंडके सदृश स्वतन्त्र व्यापारकी नीतिका

स्वतन्त्र व्यापारकी नीतिका रहस्य

अवलम्बन किया था। परन्तु हमको दोनों ही देशोंकी स्वतन्त्र व्यापारकी नीतिपर सन्देह है। इग्लेण्डको स्वतन्त्र व्यापारसे व्यावसायिक लाभ था इसलिए उसने इस नीतिको प्रचलित किया था। भारतको स्वतन्त्र व्यापारसे स्वत नुकसान था, परन्तु इससे अन्य यूरोपीय देशोंको लाभ पहुंच सकता था अत भारतपर बलात् स्वतन्त्र व्यापारकी नीतिको लादा गया।

[illegible]

ईस्ट इण्डिया कम्पनीके व्यवहारसे बंगाल मद्रास तथा बम्बई आदि प्रदेशोंका कृषि अन्तरीय व्यापार तथा व्यवसायको जो धक्का पहुंचा वह किसीसे भी छिपा नहीं है। भारतीय व्यापार व्यवसायमें राज्यका हस्तक्षेप चिरकालसे एक सदृश बना हुआ है। राज्यकी यह नीति है कि भारतवर्ष कृषिप्रधान देश ही रहे। यही कारण है कि भारतीय व्यापारियों तथा व्यवसायियोंको राज्यकी ओरसे वह सहायता नहीं मिलती जो मिलनी चाहिए। आश्चर्य तो यह है कि विजातीय स्वार्थोंको सन्मुख रखकर आंग्लराज्यने भारत के वस्त्र-व्यवसायोंपर १८९६ वि० में ३॥) सैकड़ा व्यावसायिक कर लगा दिया। उचित तो यह था कि इन कारखानोंको राज्य धन तथा बाधक आयातकरके द्वारा सहायता पहुँचाता परन्तु राज्य-ने उलटे उनकी उन्नतिको रोक दिया। आजकल आंग्लराज्य भारतमें सापेक्षिक कर (Imperial

preference) की नीतिको प्रचलित करना चाहता है। इसका परिणाम यह होगा कि भारतको विदेशीय कारखानोंसे जो सस्ता माल मिल रहा है वह भी न मिलेगा। यदि यह कहें कि इससे भारतीयोंको नये नये कारखाने खोलनेका मौका मिल जायगा, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि यह कौन कह सकता है कि आंग्ल-राज्य भारतीय कारखानोंपर व्यावसायिक कर (Excise duty) न लगावे और इंग्लैण्ड का बना माल भारतमें अधिकसे अधिक बिके, इसके लिए प्रबल प्रयत्न न करेगा। सारांश यह कि आंग्ल राज्यका भारतीयोंके व्यापारसे साधारण काममें हस्तक्षेप है। यदि यह हस्तक्षेप भारतीयोंके हितमें होता तब तो खुशीकी बात थी। शोककी बात तो यह है कि यह हस्तक्षेप हमारे स्वार्थमें नहीं है। ऐसी दशामें क्या किया जाय? भारतीयोंको आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिए। अपनी जातिके आयव्ययपर भारतीयोंका ही प्रभुत्व हो यही न्याययुक्त बात है। इसके बिना उन्नति करनेका यत्न करना बालूका भीत उठाना है।

सापेक्षिक कर की नीतिका दोष।

आर्थिकस्व-राज्य ही अन्तिम लक्ष्य है

उपरिलिखित व्यापारीय तथा व्यवसायिक नीतिका भारतके आयव्ययपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। सापेक्षिक करका मुख्य परि-

"सापेक्षिककर की नीतिसे चीजे मँहगी रहेंगी और भारतीयो पर अप्रत्यक्ष कर बढ़ेगा।

दाम भारतपर अप्रत्यक्ष करका बढ़ जाना होगा। सापेक्षिक सामुद्रिक करकी नीतिके द्वारा जर्मनी आस्ट्रियाहंगरी रूस जापान आदिका माल भारतमें स्वतन्त्र रूपसे न आ सकेगा। उसपर बाधक या सापेक्षिक सामुद्रिक करके लगनेसे वह भारतवर्षमें महँगा बिकेगा। प्रश्न उठता है कि विदेशीय मालको सामुद्रिक करके द्वारा किस हद्दतक भारतमें मँहगा किया जायगा। उसको भारतके व्यवसायोंको सामने रखकर मँहगा किया जायगा या इंग्लैंगडके व्यवसायों को? यदि इंग्लैण्डके व्यवसायोंको सामने रखकर विदेशीय मालको मँहगा किया जायगा (जो कि बहुत कुछ सम्भव है) तो एक प्रकारसे यह भारतीयोंपर अप्रत्यक्ष करका रूप धारण करेगा। दुःखकी बात तो यह है कि राज्यकर भारतीय देंगे और इंग्लैण्डके व्यवसाय खुलेंगे तथा बढ़ेंगे। यहाँ ही एक प्रश्न यह भी है कि भारतमें जिन चीजोंके व्यवसाय हैं ही नहीं क्या उन चीज़ोंपर भी सापेक्षिक सामुद्रिक करका प्रयोग किया जायगा या उनको भारतमें खुले तौरपर आने दिया जायगा? यदि भारत सरकारने ईस्ट इण्डिया कम्पनीवाली ही नीतिको पूर्ववत् जारी रखा तो उन चीज़ोंपर भी सापेक्षिक करका प्रयोग किया जायगा। क्योंकि इससे उन्हीं चीज़ोंसे इंग्लैण्डके कारखानोंको लाभ पहुँचेगा। अर्थात् भारतीय

राज्यकर देंगे और मँहगा माल काममें लावेंगे। यह भी इसीलिए कि स्वदेशीय व्यवसायोंके प्रफुल्लित होनेके स्थानपर इंग्लैण्डके व्यवसाय प्रफुल्लित हों। पिछले वर्षोंके स्वतन्त्र व्यापारसे भारतको बहुत ही अधिक धनसम्बन्धी नुकसान रहा। यदि आजसे बहुत समय पूर्व ही इंग्लैण्डके कपड़ेके कारखानोंके मालपर बाधक सामुद्रिक करका प्रयोग किया जाता (क्योंकि एक इसी चीज़के कारखाने भारतमें हैं जैसा कि पिछले प्रकरणमें दिखाया जा चुका है) तो भारतकी आयव्यय-सम्बन्धी समस्या बहुत कुछ हल हो जाती। आंग्ल मालपर राज्यकर लगानेसे जो आय होती उससे भौमिक लगानकी मात्रा कम कर दी जाती और भारतसे दुर्भिक्ष सदाके लिए उठ जाता।

भारत सरकारकी रेलवे नीति।

रेल, तार नहर आदिपर भारतमें राज्यका ही प्रभुत्व है। भारतमें रेलोंका व्यवसाय घाटेका व्यवसाय है। लड़ाईकी मंदगीसे लाभ उठाकर अब बहुत सी रेलें लाभपर चलने लगी हैं। यह होते हुए भी इसमें सन्देह नहीं है कि लड़ाईसे पहले जहाँ रेलोंकी ज़रूरत नहीं थी वहाँ भी राज्यने रेलोंको पहुँचा दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि रेलोंका वार्षिक खर्चा भारतीयोंके भौमिक लगानसे पूरा किया जाने लगा। यहींपर बस नहीं है। सरकारने रेलोंको गारैण्टी विधिपर चलाया है। भारतीयोंको इस विधिपर रेलोंका

गारैन्टी विधिका दोष।

चलाना पसन्द नहीं है क्योंकि इससे फजूलखर्ची बढ़ती है और सारीकी सारी भारतकी पूँजी व्याज-केद्वारा इंग्लैण्डमें पहुँचती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि भारतीय राज्यने यह शपथ खायी थी कि वह स्वतन्त्र व्यापारी रहेगा। व्यापार व्यवसायके काममें जनताको कुछ भी सहायता नहीं पहुँचावेगा। प्रश्न तो यह है कि रेलोंके मामलेमें उसने अपनी निर्हस्तक्षेपकी नीति क्यों तोड़ी है। यदि रेलोंको राज्य गारण्टी विधिद्वारा धनकी सहायता पहुँचा सकता था तो भारतके कपड़े आदि के कारखानोंको धनकी सहायता पहुँचानेमें कौन सी हानि थी। इसी प्रकार सरकारने नदियोंकी जो नहरें बनायी हैं उनको जंगलोंमेंसे घुमाकर व्यापार-के अयोग्य कर दिया है। इससे भारतीय नौ व्यवसायको बहुत ही धक्का पहुँचा है। मल्लाहों तथा मांझियोंकी पुरानी जातियाँ बेकार हो गयी हैं। भारतके नेताओंका कथन है कि सरकारको रेलें बनाना छोड़कर व्यापारीय नहरें बनानेका यत्न करना चाहिए। इसीमें देशका हित है।

सरकारकी मुद्रानीति।

व्यापार व्यवसायकी उन्नतिमें सिक्केका बड़ा भारी भाग है। भारतमें चाँदीका सिक्का रुपया है। उसमें युद्धसे पूर्व चाँदी वास्तविक मूल्यसे कम थी। भारतीयोंके लिए टकसालें खुली नहीं हैं। सिक्कोंकी संख्या अधिक निकल आनेसे भारतमें पदार्थोंकी कीमतें चढ़ गयी हैं। भारतीयोंकी

इच्छा है कि भारतमें सोनेका सिक्का चलना चाहिए और टकसालें सबके लिए खुलनी चाहिए।

भारतका खजाना इंगलैंडमें 'स्वर्णकोपनिधि' के नामसे इंगलैंडमें रखा हुआ है। भारतमें कोई राष्ट्रीय बैंक नहीं है जिसमें इस खजानेको रक्खा जा सके। इसी प्रकार नोटोंके निकालनेका भी काम राज्य ही करता है। भारतीयोंकी इच्छा है कि फ्रांसके सदृश भारतमें एक राष्ट्रबैंक खोला जाना चाहिए और उसीमें भारतके खजानेको रखना चाहिए।

स्वर्णकोपनिधि

आजकल प्रेसीडेन्सी बैंक आपसमें ही मिला दिये गये हैं और उन्होंने साम्राज्यके एक बड़े बैंकका रूप धारण कर लिया है। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि क्या वह आपसमें मिल करके भी राष्ट्र बैंक (State bank) का पूरा पूरा काम कर सकेंगे? इन बैंकोंसे जो लाभ होगा क्या वह भी आंग्ल पूँजीपतियोंके जेबोंमें ही जायगा या भारतमें रहेगा? भारतकी व्यापारीय तथा व्यावसायिक आवश्यकताओं यह बैंक कहाँतक पूरा कर सकेंगे। कहीं ये बैंक पूर्ववत् यूरोपीयोंहीको तो रुपयोंसे सहायता न देंगे? क्या भारत सरकार स्वर्णकोषको इस बैंकमें रखेगी और लन्दनमें न रखेगी? क्या भारत सरकार अपना नोट निकालनेका अधिकार इन बैंकोंको दे देगी? क्या अब आगेसे लड़ाईकी ज़रूरतोंके अनुसार

इम्पीरियल बैंक

नोट न निकलकर व्यापारीय जरूरतोंके अनुसार नोट निकाले जायँगे देखें क्या होता है, समय स्वय ही सब बातोंको खोल देगा।

स्थिर सेना

राज्यने भारतीयोंको हथियाररहित कर दिया है और इस दोषको दूर करनेके लिए स्थिर सेना रखना शुरू किया है। इससे राज्यका खर्चा बहुत ही अधिक बढ गया है। भारतीयोकी इच्छा है कि स्थिर सेना बहुत ही कम कर दी जाय। लोगोंको हथियार दे दिये जायँ। जनतामें बाधित सैनिक विधिको प्रचलित किया जाय। सेनाकी ओरसे राज्यका जो धन बचे वह लोगोंकी शिक्षा तथा भारतीय व्यापार यवसायकी उन्नतिमें खर्च किया जाय। व्यापारीय नहरें बनायी जायँ जिससे भारत वर्ष स्वय ही नौ शक्ति बन जाय।

भूमिपर स्वत्व

ऊपरलिखित दोषपूर्ण सरकारी नीतिका परिणाम भारतके लिए दिन पर दिन भयकर हो रहा है। सरकारको राष्ट्रके खर्चाको पूरा करना है। परन्तु वह कहाँसे धन प्राप्त करे जिससे उसके खर्चे चल सकें? इस प्रश्नको हल करनेके लिए सरकारने अपने सपूर्ण करोका भार भूमिपर लाद दिया है। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि भूमिपर राज्यकरका भार किस प्रकार लादा गया। क्योंकि भूमि तो राज्यकी सम्पत्ति नहीं है जो वह उसको अपनी सम्पत्ति समझकर उससे जितना धन निचोडना चाहे

निचोड़े ? भारतमें चिरकालसे भौमिक लगान उत्पत्तिका १/१० भाग और युद्धकालमें १/४ से १/३ भाग तक नियत था * वह बढ़ाया ही कैसे जा सकता है ? क्योंकि ऊपरलिखित लगानकी मात्रा भारतमें कभी भी बदली न गयी। मैगस्थनीज़ ह्यून्त्सांग आदि विदेशीय यात्रियोंकी सम्मति भी इसी प्रकार है। फाहियानकी सम्मतिमें तो (भौमिक लगानके तौरपर) कृषिजन्य पदार्थोंकी उत्पत्तिका कुछ भाग उन्हींको देना पड़ता था जो कि राजाकी ज़मीनोंको जोतते थे। उसके शब्द हैं कि "केवल जो लोग राज्यकी जमीनोंको जोतते हैं, उन्हींको भूमिकी उपजका कुछ अंश देना पड़ता है।"† यही सम्मति ह्यून्त्सांग की है। उसके भी ये शब्द है कि "जो लोग राजाकी भूमिको जोतते हैं उनको उपजका छठा भाग करकी भाँति देना पड़ता है।‡ भारतमे भूमिपर राजाका स्वत्व कभी भी नहीं माना गया। बंगालमें ज़मीदारके जो पुराने हक हैं वे इस बातके साक्षी हैं। महर्षि जैमिनिने

* पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञापशुहिरण्ययो धान्यानामष्टमो भाग षष्ठो द्वादश एवत्रा मनु० अ० ७ श्लो० १३०

कृषक राज्यको उत्पत्तिका १/१०, १/८, १/६ भाग देवे। गौतम धर्म-शास्त्र १०.२४. धर्मसूत्र नियमोंके अनुसार राज्य करनेवाले राज्यको धनका १/६ भाग लेना चाहिए। वशिष्ट धर्मसूत्र १.४२

† सैमुयल बीललिखित "बुद्धिष्ठ रिकार्ड्स आफ् दी वेस्टर्न वर्ल्ड, (१८८४) प्रथम भाग, ७.३८

‡ उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ८७—८९

मीमांसामें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि "न भूमिः स्यात् सर्वान्प्रत्यविशिष्टत्वात्" अर्थात् राज्यका भूमिपर स्वत्व नहीं है क्योंकि वह तो प्रजाकी मलकीयत है।*

मुसलमानी समयमें भूमिकर

मुसलमानी कालमें भारतीयोका भूमिपर स्वत्व कुछ कुछ हटा। मुसलमान राजाओंने भारतीय भूमिपर अपना स्वत्व स्थापित किया। परन्तु उन्होने इस स्वत्वका कभी भी दुरुपयोग न किया और न तो भौमिक करको अति सीमा तक बढाया। आम उस्सगीरमें लिखा है कि "विजित भूमि चाहे वह नहर द्वारा सिञ्चित हो, चाहे झरना द्वारा—यदि उसमें अनाज उत्पन्न हो तो उसपर राज्यकर लिया जायगा। सम्राट् अकबरने अधिकसे अधिक कर उपजका ⅓ भाग नियत किया था परन्तु वास्तवमें जो कर उसको मिलता था उपजका ⅓ भागसे कुछ अधिक न था।"

भौमिक लगान की वृद्धि

ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज्य जब भारतपर आया तब उसने बगालके भौमिक लगानके सहारे भारतको जीतना शुरू किया। युद्धके खर्चोंकी वृद्धिके साथसाथ उसने भौमिक लगानका बढ़ाना शुरू किया। बंगालमें जमींदारोंने जब इस बातका

---

* न भूमि स्यात् सर्वान्प्रत्यविशिष्टत्वात् मीमांसा अ० ६ पा० ७ अधि १.२

देयानवा महाभूमि स्वत्वाद्राजा ददातिनाम।
पालनस्यैव राज्यांश स्य भूर्दीयते न गा २।

विरोध किया तो कम्पनीने उनकी जमीनोंको नीलाम करना शुरू किया। इससे बंगालका बहुत भाग उजाड़ हो गया। असामी लोग इधर उधर भाग गये। इससे लगानके और भी अधिक बढ़ने-की जब कम्पनीको कुछ भी आशा न रही तो उसने बंगालमें स्थिर लगान विधिकी नीतिका अवलम्बन किया। बंगालके सदृश ही धीरे धीरे अन्य भारतीय प्रान्तोंको भी निचोड़ा गया। आंग्लराज्यने अपने आपको ही सारीकी सारी भारतीय भूमिका मालिक बना लिया और भौमिक करको भौमिक लगानका रूप देकर मनमाने तौरपर बढ़ाया।* राज्य यह न करता तो करता ही क्या? भारतका व्यापार व्यवसाय नष्ट हो चुका था, युद्धोंके द्वारा भारतके अन्य प्रान्तोंको कैसे जीता जाता? युद्धों-का खर्चा कैसे पूरा किया जाता? इसके दो ही तरीके थे। या तो राज्य भौमिक लगानको बढ़ाता वा जातीय ऋण लेता। आंग्लराज्यने दोनों ही तरीकोंसे काम लिया। यही कारण है कि भौमिक लगान तथा तज्जन्य दुर्भिक्षकी वृद्धिके साथही साथ भारतपर जातीय ऋण बढ़ा है। १८४६में भारत-पर जातीय ऋण साढ़े दस करोड़ रुपये थे और वह धीरे धीरे बढ़ता हुआ १६७०में ४१ अरब १४॥ करोड़ रुपये तक जा पहुँचा।

---

* लेखकका भारतीय सम्पत्तिशास्त्र प्रथम खण्ड, दूसरा परिच्छेद।

इसी प्रकार भौमिक लगान भी बढ़ते बढ़ते ३३५३७७५०० रुपयेतक पहुँच गया है। आश्चर्य की बात है कि भौमिक लगान तथा जातीय ऋणकी

दुर्भिक्षोंकी वृद्धि

वृद्धिके साथ ही साथ दुर्भिक्षोंकी भी संख्या बढ़ी है। दृष्टान्तके तौर पर*

आंग्लराज्यसे पूर्व दुर्भिक्षोंकी संख्या

			सदी		दुर्भिक्ष
१५०	विक्र०	से	११५०	तक	२
१२५०	"	"	१३५०	"	१
१३५०	"	"	१४५०	"	३
१४५०	"	"	१५५०	"	२
१५५०	"	"	१६५०	"	३
१६५०	"	"	१७५०	"	३
१७५०	"	"	१८०२	"	४

आंग्ल राज्यमें दुर्भिक्षोंकी संख्या

सदी	दुर्भिक्ष
विक्र० १८०२ से १८५७	४
वि० १८५७से १९५०	३१

वि० १९११से १९५८ तक २८८२५००० मनुष्य मर गये

प्राकृतिक सम्पत्तिपर स्वत्व

भारतीय भूमिके सदृश ही राज्यने भारतके गल्लों तथा खानोंको भी दुहना शुरू किया है। •इसकेलिये भारतकी भूमि जंगल तथा खानोंपर

* डिग्बी रचित "प्रास्परस ब्रिटिश इण्डिया", पृष्ठ १२३ —१३१।

राज्यने अपना प्रभुत्व प्रकट किया है। भारतीयों-को राज्यका यह हस्तक्षेप पसन्द नहीं है। हम लोगों की यह इच्छा है कि या तो राज्य उत्तरदायी हो जाय और इस प्रकार भारतकी जातीय सम्पत्ति-पर अपना प्रभुत्व प्रकट करे या भूमि जंगल खान आदिपर अपना प्रभुत्व छोड़ दे। जो राज्य जातिका प्रतिनिधि न हो वह जातीय सम्पत्ति-को अपनी सम्पत्ति बना ही कैसे सकता है? इन सब ऊपर लिखित राष्ट्रीय हस्तक्षेपोंके विचारने-के अनन्तर यही परिणाम निकला कि भारतीयों-को आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करना चाहिये। इसीमें भारतका हित है। क्योंकि इसके बिना राष्ट्रीय आयव्ययका चक्र भारतके हितके लिए कभी भी नहीं घूम सकता।

२—भारत सरकारके हस्तक्षेप तथा नियन्त्रणका नया रूप।

संसारके सभ्य राष्ट्रोंका आय व्यय

लड़ाई खतम होनेके बाद संसारके सभी युद्ध-में पड़े राष्ट्रोंको चिन्ता थी कि राज्यके खर्चों-को कैसे पूरा किया जाय और आमदनी प्राप्त करने-का क्या तरीका ढूंढा जाय। १९२०-२१ का बजट संसारके सभी राष्ट्रोंका महत्वपूर्ण है। जेको-स्लाविक तथा इंग्लैंडको छोड़कर सभी सभ्य राष्ट्रोंके बजटमें आमदनीकी अपेक्षा खर्चा अधिक है। इटली बैलिजयम पोलैण्ड आस्ट्रेलिया

फ्रान्स तथा ग्रीसकी तो यह हालत है कि इनके १६२०-२१ के बजटमें जितनी आमदनीकी राशि है उससे दुगुनेसे अधिक खर्चोंकी राशि है। आश्चर्य्यकी बात तो यह है कि अमरीकाकी आमदनी भी खर्चोंसे १० फी सैकड़ा कम है।

आयव्यय-सतुलन.

प्रश्न जो कुछ है वह यही कि इस उलझनको कैसे सुलझाया जायगा? अधिक खर्चोंको पूरा करनेके लिए राज्यकी आय किन साधनोंसे बढ़ायी जायगी? यूरोपीय देशोंमें राज्य-कर तथा राजकीय एकाधिकार इन दोनों ही तरीकोंसे आमदनी प्राप्त की जायगी। जर्मनीमें १०० फी सैकड़ा आमदनी राज्य-करसे ही बढ़ायी जायगी। इग्लैण्ड-में यही संख्या ७३ फी सैकड़ा और फ्रान्समें ७२.६ फी सैकड़ा है। इटली बैलिजयम तथा स्विटजर्लैण्ड में यह बात नहीं है। वहां राज्य-करसे आमदनी क्रमशः ३४.३,३४.६ नथा ४८.८ फी सैकड़ा ही प्राप्त की जायगी।*

राज्य-कर तथा राजकीय एकाधिकार

सरकारका नियन्त्रण तथ एकाधिकार

भारतका राष्ट्रीय आयव्यय किस धुरेपर घूमेगा इसका अभी से निर्णय करना कठिन है। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि सरकारका व्यापार व्यवसायमें दिन पर दिन हस्तक्षेप बढ़ेगा और धीरे धीरे बहुतसे पदार्थोंकी उत्पत्तिपर

---

* दि इकानामिस्ट। शनिवार। जनवरी ८।१६२१-न० ४०३६। पृ० ४६-४७।

उसीका एकाधिकार हो जायगा जिनपर उसका एकाधिकार अभीतक नहीं है। चावल तेलहन पदार्थ, गेंहू जांगलिक पदार्थ तथा खनिज पदार्थ आदि अनेकों पदार्थोंपर भारत सरकारका कड़ी नजर है। इनके नियन्त्रणके द्वारा वह अपनी आमदनी बढ़ाएगी और इग्लैण्डको आयको भी सहारा पहुँचाएगी।

सन् १९२० के मार्च महीनेकी खबरों से यह बात झलकती थी कि भारत सरकारकी आर्थिक नीति अब किसी दूसरे धुरेपर घूमेगी। १९२० को ५ मार्च को इंग्लिशमैन पत्रके संपादकको जो विशेष तार मिला था वह इस प्रकार है।*

"लार्ड मिलनरने साम्राज्यको विस्तृत या पूर्ण तौरपर उन्नत करनेका इरादा किया है। साम्राज्य के व्यय तथा नीतिके निर्देशके लिए उन्होंने एक समिति नियुक्त की है। समिति साम्राज्यके कच्चे मालको राज्यके द्वारा अधिक से अधिक मात्रामें हथियाने के उपायोंपर विचार कर रही है।"

लार्ड मिलनर

तारके शब्द यद्यपि साधारण हैं तौभी उनसे बहुतसे परिणाम निकाले जा सकते हैं। जिनको पहिली घटनाओंका ज्ञान है उनके लिए उन परिणामोंका पता लगाना सुगम काम है दृष्टान्त स्वरूप

* देखो भारतीयसम्पत्तिशास्त्र। प्रस्तावना। पृ ९८ १०६ पं० प्राणनाथ विद्यालंकार लिखित।

१६१६ की जुलाई तथा अगस्तकी बात है, कि टाइम्सपत्र में बहुत से लेख प्रकाशित हुए थे। इन लेखोंपर लार्ड मिल्नर बहुत ही मुग्ध हुए और उन्होंने उनको एक ग्रन्थके रूपमें अपने उपक्रमके साथ प्रकाशित किया। भारतके बड़े

राष्ट्रीय वाद

बड़े कारखानों खानों तथा लाभदायक पदार्थोंपर सरकारका स्वत्व हो और वही उनसे लाभ उठावे, यही उस ग्रन्थका मुख्य विषय था। इस ग्रन्थके प्रकाशित होने के बाद कुछ समयतक इंग्लैण्डके राज्यसूत्रधार छिपे छिपे सलाह करते रहे। उसके बाद लार्डमिल्नर की उपसमिति बैठी। उसने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया।

(१) भारतवर्षकी प्राकृतिक संपत्तिपर राज्य अपना स्वत्व दिन पर दिन अधिक अधिक बढ़ावे।

(२) विशेष विशेष खाद्य तथा भोज्य पदार्थोंके व्यापारपर सरकार अपना नियन्त्रण स्थापित करे।

इंपीरियल इंस्टिट्यूटकी उपसमिति

इन प्रस्तावोंको काममें लानेके लिए इंग्लैण्डके अन्दर इंपीरियल इंस्टिट्यूट्की उपसमिति बैठायी गयी। उसका मुख्य उद्देश्य इस बातपर विचार करना था कि सरकार चावल तेलहनद्रव्य जांगलिक पदार्थ आदि अनेकों पदार्थोंकी उत्पत्ति तथा व्यापारपर नियन्त्रण स्थापितकर इंग्लैण्डका आर्थिक लाभ किस प्रकार सुरक्षित रख सकती है और भारतवर्षके बढ़े हुए खर्चोंको किस प्रकार पूरा कर सकती है। इंपीरियल इंस्टिट्यूट्की उप-

समितिकी रिपोर्टका पहिला भाग तेलहन पदार्थों-पर दूसरा भाग चावलोंपर और शेष अन्य भाग जाँगलिक तथा खनिज पदार्थोंपर हैं।

क—भारत सरकारका नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप

तेलहन द्रव्यों का नियन्त्रण

(१) तेलहन द्रव्यों का नियन्त्रण * तेलहन द्रव्योंके नियन्त्रणका प्रश्न क्यों उठा ? इसका रहस्य यह है कि संसारमें तेलहन द्रव्योंका महत्व दिन पर दिन बढ़ेगा। साबुन सेन्ट्स आदि अनेकों व्यावसायिक पदार्थोंका आधार तेलहन पदार्थोंपर ही है। तीसी मूँगफली विनौला सरसों रेंडी तिल गरी महुआ पोस्ता तथा काला तिल आदि पदार्थ बहुत ही जरूरी हैं। जहाजों तथा हवाई जहाजोंमें भी इनमें से कइयों का तेल काम आता है। भारतमें इन पदार्थोंकी उत्पत्ति ५००००० टन है। जिनका मूल्य लगभग ५० करोड़ रुपयोंके है। लड़ाईसे पहिले इनका विदेशीय व्यापार जर्मनीके हाथमें था। वही इनसे तेल निकालकर सैकड़ों प्रकारके व्यावसायिक पदार्थ बनाता था। लड़ाई शुरू होनेपर धीरे धीरे इन पदार्थोंका विदेशीय व्यापार इंग्लैण्ड-के हाथमें चला गया। अब उसको भी इन पदार्थों-

* देखो। कामर्स तथा कैपिटल नामक साप्ताहिक पत्र। दिसम्बरसे फर्वरीतकका। सन् १९२० से १९२१ तक।

तेलहन द्रव्यों-के नियन्त्रण-का तरीका

के व्यापार तथा व्यवसायका महत्व मालूम पड़ गया है। यही कारण है कि इंपीरियल इंस्टिट्यूट् की उपसमितिने भारत सरकारको निम्नलिखित सलाह दी है—

(१) हिन्दुस्तानी किसानोंको रुपया देकर तेलहन पदार्थोंकी उत्पत्तिपर भारत सरकारको नियन्त्रण स्थापित करना चाहिये।

(२) यदि उचित हो तो तेलहन पदार्थोंके नियन्त्रणके लिए ठेके तथा लैसेन्सका प्रयोग किया जाय।

(३) इंग्लिस्तानके तेल पेरनेके बड़े बड़े कार-खानोंकी सहायताके लिए विदेशीय तेलपर बाधित सामुद्रिक करका प्रयोग होना चाहिए और उसको इंग्लिस्तानमें न आने देना चाहिए।

(४) इंग्लिस्तानमें तेलहन पदार्थोंको सस्ते दामों पर पहुँचानेके लिए रेलों तथा जहाजोंका किराया कम रखना चाहिए। सामुद्रिक करकी मात्रा भी उन पदार्थोंके लिए बहुत ही कम होनी चाहिए।

यह नियन्त्रण भारतके लिए कभी भी हितकर न होगा। इससे सरकारके सैनिक खर्चे पूरे हो जायँगे और इङ्गलैएडके उद्योग धन्धे बढ़ जायँगे परन्तु भारतकी दरिद्रता दूर होनेके स्थानपर और भी भयंकर रूप धारण करेगी।

(२) चावलका नियन्त्रण—इंपीरियल इंस्टि-ट्यूट्की उपसमितिकी रिपोर्टका एक भाग चावलों पर है। रिपोर्टमें लिखा है कि संसारके भिन्न भिन्न देश चावलोंकी जो राशि विदेशोंसे मंगाते थे उसका ६४फी सैकड़ा एक भाग भारतसे ही जाता है। अभीतक भारतसे अन्य देशोंमें २४५०००० टन * चावल जाता है जो इंग्लैण्डके गोरे साम्राज्यकी जरूरतोंको बड़ी आसानीसे पूरी कर सकता है। इसी उद्देश्यसे इम्पीरियल इंस्टिट्यूट्की उपसमितिने चावलोंपर भी भारत सरकारका नियन्त्रण आवश्यक समझा है। उसके विचारमें चावलके नियन्त्रणके लिए भी तेलहन पदार्थोंके नियन्त्रणमें जो तरीके काममें लाये जाँय उन्हीं तरीकोंको काममें लाना चाहिए। दुःखका विषय है कि यह नियन्त्रण भारतके लिए हानिकर होगा क्योंकि भारतमें चावल पहिलेसे ही कम होता है और भारतकी बढ़ी हुई आबादीको संभालनेमें असमर्थ है। दृष्टान्त स्वरूप चावलोकी उत्पत्तिको लीजिए। १९१३—१४ से १९१८–१९ तक वर्मा तथा आसाम सहित संपूर्ण भारतमें चावलोंकी उत्पत्ति इस प्रकार थी‡:—

चावलका बाह्य व्यापार

चावलकी उत्पत्ति तथा रफ्तनी

* १ टन—२७॥ सेर।

‡ हैन्डबुक आव् कमर्शियल इन्फार्मेशन। सी० डबल्यू० ई० काटन लिखित। पृ० १३५

सन	टनोंमें	बाहर भेजा गया
१९१३–१४	३०१३८०००	२४१९८५०
१९१४–१५	२८२४४०००	१५३८३००
१९१५–१६	३३२०६०००	१३३९८००
१९१६–१७	३५४४२०००	१५८४७५०
१९१७–१८	३६५९४०००	१९१०८८४
१४१८–१९	२४०९५०००	२०१७९२६

ऊपर लिखी सूचीसे स्पष्ट है कि १९१८–१९ में भारतमें २॥ करोड़ टन चावल उत्पन्न हुआ था, जो तीस करोड़ जनतामें बाँटा जाकर प्रत्येक मनुष्यके पीछे केवल ५ सेर महीनेमें पड़ता है। इसमेंसे भी लगभग १ सेर चावल बाहर जाता है और इस प्रकार कुल मिलाकर ४ सेर चावल प्रतिमास भारतीयोंको मिलता है।

१९१५ की अप्रैलसे गेहूँपर सरकारी नियन्त्रण

(३) गेहूँका नियन्त्रण—१९१५ की अप्रैलसे भारत सरकारने गेहूँपर भी नियन्त्रण स्थापित किया। इसी दिन गेहूँके बाह्य व्यापारमें व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रताको पददलित किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य यही था कि गेहूँके बाह्यव्यापारसे लाभ भारत सरकारको मिले और यूरपकी जरूरतोंके अनुसार मनमानी राशिमें गेहूँ देशसे बाहर भेजा जा सके। १९१५ के बादसे ह्वीट्कमिश्नरने अपने एजन्टोंके द्वारा भारतका गेहूँ खरीदना शुरू किया

और गेहूँका बाजारी दाम भी स्वयं ही नियत किया। यह कार्य्य बहुत ही असन्तोषजनक था। क्योंकि सरकार एक ओर शासनका काम करे और दूसरी ओर व्यापार करे। इससे जनताकी स्वतन्त्रताका नष्ट होना स्वाभाविक ही है। दुःख-की बात तो यह है कि इससे जनताका हित भी सुरक्षित नहीं रहता। पर-राष्ट्रका गुलाम होनेसे सरकार स्वदेशके हितको भुलाकर गेहूँ बाहर भेज सकती है।

चार लाख टन गेहूँका बाहर भेजना।

ईस्वी १९२० सन्‌के अक्टूबरमें भारत सर-कारने ४००००० टन गेहूँ बाहर भेजनेकी उद्-घोषणा की। इससे देशमें भयंकर शोर मचा। ऐसे चिन्तजनक समयमें, जब कि देशवासियों-को दुर्भिक्षका डर दिनरात सताता हो, सवाकरोड़ मनके लगभग गेहूं बाहर भेजनेकी आज्ञा देना और साथ ही भेज देनेका यत्न करना इस बातका सूचक है कि सरकार जनताके सुखसे कहाँतक निर-पेक्ष है और क्या करना चाहती है। * सरकारी नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप कहाँ तक दोषपूर्ण है और कितनी हानि पहुँचा सकता है यह भी इसीसे स्पष्ट है।

* दि लीडर, मन्डे, अक्टूबर ४, १९२०। लेख एक्सपार्ट आव् व्हीट्। हैन्डबुक् आव् कमर्शियल इनफार्मेशन फार इंडिया। सी. डबल्यू. ई काटन लिखित। भारतीय सम्पत्तिशास्त्र, प० प्राणनाथ विद्यालंकार लिखित, पृ. २२६ से २२८।

(४) जगलोंका नियन्त्रण—जगलों पर भारतसरकारने चिरकालसे अपना स्वत्व स्थापित किया है। यह स्वत्व कहाँतक अन्याययुक्त है इसपर पूर्वप्रकरणोंमें प्रकाश डाला जा चुका है। जगलोंपर सरकारी नियन्त्रण तथा हस्तक्षेपका ही यह फल है कि लोगोंको पशु चरानेके लिए चरागाह नहीं मिलते और आग जलानेके लिए लकडियाँ महँगी मिलती हैं। लडाईके खर्चोंको पूरा करनेके लिए अब भारत सरकार जॉगलिक पदार्थोंके बाहय व्यापारको उत्तजित करना चाहती है।

जगलोंपर सरकारका नियन्त्रण तथा प्रजाके कष्ट

एम्पायर मेल नामक पत्रमें लिखा है कि "भारतसरकारने लन्दनमें होनेवाली भारतीय लकडियोंकी प्रदर्शिनीमें बहुत ही अधिक भाग लिया है। तरह तरहकी खूबसूरत लकडियाँ भारतके जगलोंसे इकट्ठी की गयीं और उनकी तरह तरहकी चीजें बनायी गयीं।' यह इसी लिए कि किसी प्रकारसे जागलिक पदार्थोंका बाह्य व्यापार बढे। महाशय हावर्डने दिनरात की अथक मेहनतके साथ अग्रेजलोगोंसे भारतीय लकडियोंके महत्वको प्रगट किया। इन लकडियोंमें सगमरमरकी तरह सफेद रुपहली सुनहली गाढ़ी लाल हल्की लाल हरी पीली नीली तथा काली रगकी खूबसूरत से खूबसूरत

लन्दनमें भारतकी लकडीकी प्रदर्शिनी।

भारतकी अपूर्व जांगलिक सम्पत्ति।

लकडियाँ थीं जिनको देखकर इग्लैंडएडवाले चकित हो गये । इन लकडियोंके खूबसूरतसे खूबसूरत पदार्थ बनाकर प्रदर्शिनोमें रखे गये कि अंग्रेज उनको देखकर आश्चर्य करने लगे ।

महाशय हावर्डने प्रदर्शिनीमें आये हुए अंग्रेजों तथा यूरोपीय लोगोंको जो शब्द कहे वह इस प्रकार हैं—

"भारतके जगलोंकी बहुमूल्य अनन्त सम्पत्ति का यूरपके लोगोंको तनिक भी ज्ञान नहीं है । लोग खूबसूरतसे खूबसूरत बहुमूल्य लकडीका नामतक नहीं जानते हैं । टीक लकडीका सबको पता है । परन्तु पादुकका किसीको भी ज्ञान नहीं है । यह लकडी घरेलू सामानके लिए अपने मुकाबिलेमे किसी लकडीका नहीं रखती । अन्डेमन द्वापका सगमरमरकी तरह सफेद लकडी ससारमें सबसे अधिक खूबसूरत लकडी है । पियकदा हजारों साल तक नहीं गलती । कोकन सान सुन्दरी पिनकदा तथा अन्य प्रकारकी सुन हरा रुपहली पीली हरी नीली काली तथा लाल रंगकी लकडियोंसे भारतके जगल पटे पडे है । यूरोपीय लोगोंको इनसे लाभ उठाना चाहिए ।"

हावर्डका लकडी प्रदर्शिनीमे व्याख्यान

लकडीकी प्रदर्शिनी इस बातको सूचित करती है कि भारतसरकार का राष्ट्रीय आयव्यय आगे चलकर कैसा रूप धारण करेगा ? भारत

सरकारका नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप दिन पर दिन बढ़ेगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। भारत सरकारका परराष्ट्रका गुलाम होना और अंग्रेजों-के हितोंको सामने रखकर काम करना भारतीयों-के लिए भयकर है। ऐसे राज्यका हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण कभी भी देशकी समृद्धिको नहीं बढ़ा सकता। लकडीको प्रदर्शिनीके प्रश्नको ही लीजिए। यदि भारत सरकार इन लकड़ियो तथा इनके बने हुए पदार्थोंकी प्रदशिनी भारतके मुख्य मुख्य नगरोंमें कर चुकती और भारतके धनाढ्यों ताल्लुकेदारो तथा नामधारी राजा महा राजाओंको इनके कारखानो खोलनेके लिए उत्ते जित कर चुकती और इसपर भी यदि कोई तैयार न होता तो फिर लन्दनमें भारतीय लक डियोंकी प्रदर्शिनी की जाती तौ भी कोई बात थी।

लकडीप्रदर्शिनीपर आक्षेप

भारत सरकारका नियत्रण तथा हस्तक्षेप कभी भी देशके लिए हितकर नहीं होसकता इसी को पुष्ट करनेवाले और भी बहुतसे प्रमाण हैं। अब उन्हींको दिया जायगा।

(ख) भारत-सरकारके नियन्त्रण तथा हस्तक्षेपके दोष।

धन प्राप्त करने तथा सैनिक खर्चोंके चलानेके लिए भारत सरकार जिन जिन पदार्थोंपर और जिस ओर अपना नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप

करना चाहती है उसका उल्लेख किया जा चुका। भारत सरकारका नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप कुछ भी बुरा न होता यदि भारत-सरकार हिन्दुस्तानियोंके प्रति उत्तरदायी होती और जनताके हितके सम्बन्धमें अपनी जिम्मेदारियाँ समझती दुःख तो यह है कि यही बात भारत-सरकार में नहीं है। इङ्गलैण्डके महाजनों तथा महाजनी राज्योंका हित ही भारत-सरकारके नियन्त्रण तथा हस्तक्षेपका मुख्य आधार है। भारत-सरकारकी नीति है कि भारतवर्ष चाहे तबाह होजाय परन्तु इङ्गलैण्डके स्वार्थपर धक्का न पहुँचना चाहिए।

भारत-सरकार भारतीयोंके प्रति उत्तरदायी नहीं है

अंग्रेजोंके प्रति उत्तरदायी होनेसे भारत सरकारका स्वरूप गोरे कालेके भेद भावसे रंगा हुआ है। ऊपरसे चाहे उसकी मूर्ति कितनी ही भव्य क्यों न हो, परन्तु उसका दिल उन्हीं वासनाओंसे परिपूर्ण है जिनके कारण भारतीयोंकी दशा गुलामीसे भी बुरी है। यदि कोई अंग्रेज हिन्दुस्तानीको जानसे मार डाले तो उसकी तिल्ली फट जाती है और जिगर बढ़ जाता है। परन्तु यदि कोई हिन्दुस्तानी अंग्रेजको मार दे तो सारे हिन्दुस्तानके अंग्रेजोंका खून उबल उठता है और यह लोग एकके बदले दस पन्द्रह भारतीयोंको बलि चढ़ाये बिना नहीं रुकते। यही गोरे कालेका भेद सरकारकी आर्थिक नीतिमें भी काम करता है। ऐसे उपाय किये जाते हैं कि भारतकी खानों

जातीय पक्षपात

आमदनीके ठेकों में गोरे कालेका भेद भाव

जंगलों नहर नदीके पुलोंके ठेके अंग्रेजको ही मिल जांय। अफीम शराब बिजली ट्राम आदि अनेक व्यवसाय अंग्रेजोंके ही पास हैं। लड़ाईके दिनोंसे भारत-सरकार कोयलेके मामलेमें जो चालें चल रही है उसमे उसका स्वरूप अच्छी तरहसे जाना जा सकता है। मुद्रा चमड़ा ब्लाकेड आदि अनेकों मामले हैं जो भारत-सरकारके नियन्त्रण तथा हस्तक्षेपके दोषोंपर भलीभाँति प्रकाश डालते है।

(१) कोयला तथा भारत सरकारका नियन्त्रण

कोयलेके उद्योग धन्धेका महत्व

कोयला बहुत ही महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। देशकी औद्योगिक उन्नतिके साथ ही साथ कोयला खुदाने वाले खानके मालिकोकी आमदनी बढ़ती जायगी। यह आमदनी काफी प्रलोभन है। बंगाल बिहार के कोयलेकी खानोंपर बंगीय जमींदारोंका स्वत्व था। उन्हींको आजकल कोयलेकी खुदाईपर राजस्व (Royalty) मिलता है। शुरू शुरूमें भारतकी सोने हीरेकी खानोंके सदृश ही कोयलेकी खानोंपर भी यूरोपीय लोगोंने ही हाथ साफ किया। रानीगञ्जकी पहिले दर्जेकी कोयलेकी खामें लगभग उन्हींके स्वत्वमें आ गयीं। इसके बाद

भारतीयोंका साहस

झरियामें भी उन्होंने प्रवेश किया। देखादेखी बहुतसे कच्छी मारवाड़ी बंगाली तथा पञ्जाबियों- ने भी झरियाके कोयलेकी खानोंको खरीदा और उनको खुदाना शुरू किया। १९१७ तक हिन्दुस्तानी

कोयलेकी खानोंको खरीदते ही गये । बुखारा रामगढ़की नयी खानोंको भी उन्होंने प्राप्त करना चाहा । परन्तु भारत-सरकार तथा अंग्रेज कमिश्नर-की कृपा सदा अंग्रेजी कंपनियोंपर ही बनी रही । भारतीय भारत-सरकारके नियन्त्रण तथा हस्तक्षेपसे अपनी ही प्रकृत उपजसे लाभ उठानेमें असमर्थ रहे । १८१७ तक कोयलेका कारोबार भारतीयोंको अपनी ओर खींचता रहा । इसी कारोबारके सहारे सैकड़ों आदमी लुटिया डोरी लेकर गये और लखपति हो गये । अंग्रेजों तथा भारत-सरकारको यह बात स्वीकृत न हुई ।

जहाजोंकी कमी

सन् १८१७ में जहाजोंकी कमीके कारण कलकत्तेसे जहाजोंके द्वारा कोयला बम्बई न पहुँच सका । इससे व्यापारियोंने रेलोंके द्वारा कोयला बम्बईमें भेजना शुरू किया । बम्बईके उद्योग-धन्धे तथा कारखाने लगभग भारतीयोंके ही पास हैं । जहाजोंके द्वारा कोयलेका आना रुकते ही और रेलोंके द्वारा बम्बईमें कोयला भेजना शुरू होते ही भारत-सरकारने अपने नियन्त्रण तथा हस्तक्षेपका अच्छा मौका ढूंढ़ा । पहिले पहिल तो भारत-सरकारने 'कोलसमिति' नियतकी और उसके बाद कोयलेका नियन्त्रण कोलअध्यक्ष (Coal-Controller) के हाथमें दे दिया । यहाँसे ही भारत-सरकारका नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप भारतीयोंके लिए

भारत सरकार का हस्तक्षेप

हानिकर होता है और उनके गलेपर फाँसीका फन्दा फिंकता है।

कोलअध्यक्ष-की चतुराई

पहिले पहिल कोलअध्यक्षने यह चाल चली कि दूसरे तथा तीसरे दर्जेकी कोयलेकी खानोंका खुदना ही बन्द कर दिया। क्योंकि इन्हींपर भारतीयोंका स्वत्व था। कोलअध्यक्षकी इस चालसे भारतीयोंका कारोबार शिथिल हो गया और अंग्रेजोंने इससे मनमाना धन कमाया। धीरे धीरे कोलअध्यक्ष के नियन्त्रण तथा हस्तक्षेपका असर भारतके उद्योग धन्धोंपर पड़ना शुरू हुआ। पञ्जाबमें ईंटों तथा चूनेके भट्ठोंको भयंकर नुकसान पहुँचा। जूटके कारखानोंमें भी आजकल कोयलेकी कमीकी शिकायत है। दृष्टान्त स्वरूप १९२० की अक्टूबरमें जूटकी मिलोंके पास २७००० टन कोयला है। पिछले साल इसी महीनेमें उनके पास उससे पांच गुना कोयला था। संयुक्तप्रान्तकी सरकारने भी अब यह मान लिया है कि प्रान्तके उद्योग धन्धोंको कोयलेकी कमीके कारण भयंकर नुक्सान पहुँचा है। कोलअध्यक्ष तथा भारत सरकारके नियन्त्रणसे बम्बईके कारखानेवाले भी परेशान हैं। इंडियन माइनिङ्ग फीडरेशनने ठीक कहा है कि "कोल अध्यक्ष तथा भारत-सरकार युरोपीय लोगोंका पक्ष करती है। और हिन्दुस्तानी खानोंके मालिकोंको नुक्सान पहुँचाती है।

कोयलेपर सरकारी निमन्त्रण और उद्योग धन्धोंकी हानि

इसी भेदभावके कारण जातीय विद्वेष दिन पर दिन उग्ररूप धारण कर रहा है। खानमालिकों में यह बात विशेष तौरपर है।" *१६२१ की जनवरीमें बैठी रेलवे कमेटीमें महाशय घोषने भी यही बात प्रगटकी। उन्होंने अपने पक्षकी पुष्टिमें दृष्टान्त दिया कि "इडना खान जबतक भारतीयोंके पास थी तबतक वहाँ रेलकी लाइन न बनायी गयी। यही बात और खानोंके साथ हुई। लाचार होकर अपनी एक खानका आधा भाग मैंने एक अंगरेजके हाथ बेंच दिया। बेचते ही वहाँ रेलवेलाइन पहुँच गयी। यहाँ ही बस नहीं। कोलअध्यक्ष पहिले दर्जेके कोयलोंको खानोंके लिए रेलगाड़ीके डब्बे देता था। अँगरेजोंका तो घटिया दर्जेका भी कोयला पहिले दर्जेका कोयला बना दिया जाता था। और भारतीयोका पहिले दर्जेका कोयला भी घटिया दर्जेका कोयला समझा जाता था। आजकल मग्मा खानका कोयला पहिले दर्जेका कोयला समझा जाता है और जहाजोंके लिये भेजा जाता है। परन्तु जबतक वह खान हिन्दुस्तानीके पास थी तबतक उसका कोयला तीसरे दर्जेका कोयला बना दिया गया था और माल गाड़ीके डब्बे इस कोयलेके भेजनेके लिए न मिलते थे।"† कोल

रेलवे कमेटीमें महाशय घोष की सम्मति

* कामर्स, नवंबर, १६२० पृ० ६०५

† इंडियन रेलवे कमेटीकी कलकत्ते की बैठकमें महाशय घोष का उत्तर प्रत्युत्तर।

अध्यक्ष तथा भारत सरकारके नियन्त्रणसे हिन्दुस्तानी खानमालिकोंको बहुत ही अधिक नुक्सान पहुँचा। उनके मेहनती मजदूर टूटकर अँगरेजोंकी खानोंमें मजदूरी करने लगे और बहुतोंको माल गाड़ीके डब्बोंके न मिलनेसे अपनी खानें अँगरेजों के हाथ बेंचनी पड़ीं।

जनताकी संपत्तिको हस्तगत करना सुगम काम नहीं है। नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप खिलवाड़ नहीं हैं। परन्तु भारत-सरकार नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप ही करना चाहती है। इस उद्देश्यसे वह जो जो काम करती है उनपर परिस्थिति तथा न्याय का खोल चढ़ाती है। यही कारण है कि वह जो जो बातें कहती है उससे उलट ही करती है। दृष्टान्त स्वरूप लड़ाईके कारण बहुतसे हिन्दुस्तानी कारखानोंको बहुत ही अधिक काम करना पड़ा। इसलिए उनको कोयलेकी बहुत ही अधिक जरूरत थी। परन्तु भारत सरकार तो कोलअध्यक्षके द्वारा अपने नियन्त्रणकी चिन्तामें थी। साथ ही उसमें गोरे कालेका भेदभाव भी काम करता था। यही कारण है कि उसने दूसरे तथा तीसरे दर्जेकी कोयलेकी खानोंका खुदना बन्द कर दिया। और कोयलेका दुर्भिक्ष डाल दिया।

भारत सरकार के कहने तथा करनेमें परस्पर विरोध

पहिले दर्जेकी कोयलेकी खानें कम हैं। अतः इंग्लैण्डसे एक चतुर व्यक्ति बुलाया गया कि वह कोई तरीका निकाले कि पहिले दर्जेकी कोयलेकी

पहिले दर्जेकी खानोंकी रक्षा का प्रश्न

खानें सुरक्षित रहें। उचित तो यह था कि पहिले दर्जेकी कोयलेकी खानोंका खुदना रोका जाता। परन्तु इसमें अंगरेजोंका नुकसान था। यही कारण है कि कोलअध्यक्षने दूसरे तथा तीसरे दर्जेकी कोयलेकी खानोंका खोदना रोककर हिन्दुस्तानियोंका गलाघोंटकर अंगरेजोंको समृद्धकर दिया। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि यदि भारत सरकारको यही करना था तो इंग्लैण्डसे एक चतुर व्यक्तिको बुलाकर भारतका धन वृथा हीक्यों फूँका ? *

सरएलन आर्थर का चैलेन्ज

सरकारको मालगाड़ीके डब्बोंकी कमीकी शिकायत है। परन्तु जब सर एलन आर्थरने कहा कि भारत सरकार तथा रेलवेकंपनियोंको जितने डब्बे चाहियें हम बनाकर देनेके लिए तैयार हैं। इस पर भारत-सरकार सहमत न हुई। भारत सरकारका नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप भारतीयोंके लिए कहाँतक हानिकर है यह कोयलेकी कहानीसे अच्छी तरह स्पष्ट है। †

चमड़ेकी जरूरत

(२) चमड़ेपर सरकारी नियन्त्रण—कोयलेके सदृश ही चमड़ेका किस्सा है। लड़ाईके दिनोंमें सरकारको चमड़ेकी जरूरत थी। अतः सर-

* कामर्स, अक्टूबर २८।१९२० पृ० ८५४।

† इस सारे प्रकरणके लिये कामर्स की १९२० तथा १९२१ की प्रतियों को देखो।

कारने चमड़ेके कारोबारपर अपना नियन्त्रण स्थापित किया। लड़ाईके समयतक भारत-सरकार कम दाम देकर चमड़ेके व्यापारियों तथा व्यवसायियोंसे चमड़ा तथा चमड़ेका माल लेती रही। खास कानूनके द्वारा चमड़ेकी उत्पत्ति तथा व्यवसायको सरकारने उत्तेजित भी किया। परन्तु लड़ाई खतम होते ही सरकारका नियन्त्रण दूसरे रूपमें प्रगट हुआ। उसने चमड़े का बाहर जाना रोक दिया। इससे देशमें चमड़ा सस्ता हो गया। कुछ एक व्यापारियोंने सस्ते चमड़े को खरीद लिया कि आगे आनेवाली महंगीसे वह धन कमा सकेंगे। परन्तु हुआ क्या? सरकारके नियन्त्रण तथा हस्तक्षेपसे चमड़ेका व्यापार तथा व्यवसाय पूर्ववत् शिथिल रहा।

चमड़ेका नियन्त्रण

चमड़ेका बाहर जानेसे रोकना

लड़ाईके दिनोंमें बिचारे चमड़ेके व्यापारियों तथा व्यवसायियोंको सरकारी हस्तक्षेपसे कुछ भी धन कमानेको नहीं मिला। लड़ाईके खतम होने के बाद भी सरकारी हस्तक्षेपने उनको धन कमाने से रोका।

चमड़ेके व्यापारियों तथा व्यवसायियोंकी तबाही

(३) सरकारी नियन्त्रणके और दृष्टान्त— १६२० की मार्चमें भारत-सरकारने रिवर्स काउन्सिल बेंचना शुरू किया। इसके बेचते ही भारतके वह बाह्य व्यापारी जो देशसे कच्चा माल बाहर भेजते थे दिवालिये हो गये। चमड़ेके बाह्य

व्यापारी भला कब बच सकते थे । उन्होंने सरकारसे सहायता माँगी तो सरकारने मुँह मोड लिया* ।

(-) सरकारी नियन्त्रणके अन्य दोष—संवत् १९७६के कुम्भ (फाल्गुन) से १८७७के कुम्भतककी आर्थिक घटनाओंका अध्ययन इस बातको सूचित करता है कि सरकारी नियन्त्रणके टूटनेसे भारतको भयंकर नुकसान पहुँचेगा । १९७७ के सालके शुरूमें ही सरकारने रिवर्सकाउन्सिल बेचना शुरू किया था । इसपर भयंकर शोर मचा । महाशय बोमनजीने कहा कि "भारत सरकारकी नीति भारतके व्यवसाय व्यापारकी उन्नति तथा हित साधनके अनुकूल नहीं है । हमारे देशके हितपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता । महाशय चिन्तामणितकने यह लिख दिया कि "भारतकी पूँजीका अर्वाचीन प्रयोग बहुत ही अन्याययुक्त है। सरकारका रिवर्स काउन्सिलका बेचना कभी भी न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता है" ‡ महाशय शर्माने व्यवस्थापक सभामें कहा कि 'भारतीयोंको अपने व्यापार व्यवसायकी उन्नतिके लिए इस समय एक एक पाईकी जरूरत है। नकली तरीकोंसे

रिवर्स काउन्सिल बेचना

बोमनजी

चिन्तामणि

शर्मा

* देखो । अक्तूबरसे जनवरीतककी कामर्स पत्रकी प्रतियाँ । सन् १९२०-१९२१ ।

† दि लीडर मार्च ११ १९२०

‡ दि लीडर मार्च ११ १९२०

भारतकी पूंजीको ऐसे समयमें विदेश लेजाना पूर्ण तौरपर अन्याययुक्त है, * पंडित मदनमोहन मालवीयजीने शर्माके विचारोंका समर्थन किया। सर फजलभाई करीमभाईने तो यहाँतक कह दिया कि करन्सीकमेटीकी रिपोर्ट ही अन्याययुक्त है। क्योंकि सोनेका दाम पुनः अपने स्थानपर आ पहुँचेगा। अब सरकारको विनिमयकी दर पूर्ववत् ही रखनी चाहिए। †

मालवीयजी

फजलभाई करीमभाई

रिवर्स कौंसिल का असर

जिन बातोंका डर था वे १९७९के मध्यसे १९७७के कुम्भतक सिरपर आ पड़ीं। विदेशसे माल मंगानेवाले व्यापारी चौपट हो गये और भारत सरकारने किसी प्रकारकी भी सहायता उनको न पहुँचायी। आजकल उद्योगधन्धों तथा व्यापारीय कामोंमें जो मन्दापन तथा शिथिलता है वह भारत सरकारके हस्तक्षेप तथा नियन्त्रणका ही फल है।

इंपीरियल बैंक तथा सरकारी हस्तक्षेप

इंपोरियल बंककी भी इसीलिए सृष्टिकी गयी है। अब भारत-सरकार हरसाल देशवासियोंके प्रत्येक उद्योगधन्धे तथा व्यापारमें अपना नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप बढ़ाती जायगी। इंपोरियल बंकके सहारे ही भारत-सरकार संपूर्ण व्यापारीय औद्योगिक कामोंको स्वयं करेगी।

---

* दि स्टेट्समैन, मार्च ११. १९२०.

† दि स्टेटसमैन, मार्च ११. १९२०.

(३) राष्ट्रीय आयव्ययका नया रूप—लड़ाईसे पहलेतक भारत सरकारके संपूर्ण खर्चोंका भार भारतकी भूमिपर था। अब सब भार भारतकी सब प्रकारकी उपजपर पड़ेगा। जंगल, खान, चावल, गेहूँ तथा अन्य खाद्य और उपभोगयोग्य पदार्थों और प्राकृतिक संपत्तियोंपर भारत सरकारका नियन्त्रण बढ़ता जायगा और सरकार वहाँसे अधिक अधिक आमदनी प्राप्त करेगी। ठेकों तथा लैसन्सोंका प्रयोग भी बढ़ेगा।

सरकारके नियन्त्रणसे देशवासियोंकी गुलामी उग्ररूप धारण करेगी और उनका अपनी पुरानी स्वतन्त्रताको प्राप्त करना बहुत ही कठिन हो जायगा।

इस विषयपर अब हम अधिक न लिख करके सरकारकी वर्तमान दोषपूर्ण नीति क्या है और हितकर नीति क्या हो सकती है यह संक्षेपसे देखाना चाहते हैं। जिससे राष्ट्रीय आयव्ययशास्त्रके अध्ययनमें सुगमता रहे।

३—भारतके राष्ट्रीय आयव्ययपर विचार

राष्ट्रीय आयव्यय शास्त्रके अनुसार भारतके लिए सरकारकी दोषके पूर्ण नीति ये हैं।	राष्ट्रीय आयव्यय शास्त्रके अनुसार भारत-लिए सरकारकी हितकर नीति ये हैं।

	सरकारकी दोषपूर्ण नीति	सरकारकी हितकर नीति
भौमिक लगान	१-भारतीय सरकार भौमिक लगानको दिन पर दिन बढ़ा रही है। यह बुरा है।	१-भौमिक लगान स्थिर कर देना चाहिए और आवश्यकतानुसार घटा देना चाहिए।
व्यावसायिक कर	२-भारतीय व्यवसायोंके हितमें सामुद्रिक करका प्रयोग नहीं है। विक्र० १८७६ पर जो ३½ व्यावसायिक कर लगाया गया है और इसी प्रकारकी नीति काममें लायी जा रही है। इससे स्वदेशीय व्यवसायोंपर धक्का पहुँचा है।	२-भारतीय व्यवसायोंको सामने रखकर उनको बढ़ानेवाले सामुद्रिक करका प्रयोग करना चाहिए। सामुद्रिक कर इतना अधिक होना चाहिए कि विदेशीय माल भारतमें न बिक सके। वि० १८७६ की व्यावसायिक कर नीतिको एकदम छोड़ देना चाहिए।
सापेक्षिक करकी नीति	३-सापेक्षिक करकी नीतिकी ओर भारत-सरकार पग धर रही है। इससे भारतीयोंपर कर लग सकता है और इस करसे विदेशीय व्य-	३-भारतमें सापेक्षिक करकी नीतिको प्रचलित करना निरर्थक है। भारतको अपने व्यवसायोंको सामने रखकर स्वतन्त्र तथा बाधक दोनों ही

वसायपतियोंको लाभ पहुँच सकता है। यह नीति इंग्लिस्तानके लिए हितकर है परन्तु भारतको इससे नुकसानके सिवाय कुछ भी लाभ नहीं।

प्रकारकी व्यापारनीतिको काममें लाना चाहिए। जहाँ स्वतन्त्र व्यापारसे लाभ पहुँचे वहाँ स्वतन्त्र व्यापारकी नीति काममें लायी जाय और जहाँ बाधित व्यापारकी नीतिसे लाभ हो वहाँ बाधित व्यापारकी नीतिको काममें लाना चाहिए।

४–आजकल राज्यको सेनापर बहुत धन व्यय करना पड़ता है क्योंकि वह स्थिर सेना रखता है। प्रजाको हथियार नहीं दिये गये हैं।

स्थिरसेना विधि

४–स्थिर सेना विधिको बहुत कुछ हटा देना चाहिए। कुछ थोड़ी सी ही स्थिर सेना रखनो चाहिए। बाधित सैनिक विधिका प्रचार करना चाहिए। सबको हथियार मिलना चाहिए।

५–यूरोपियनोंको तनख्वाहें अधिक हैं और उत्तरदायित्वके स्थानपर बहुत कम भारतीय नियुक्त किये जाते हैं।

अधिक वेतन

५–यूरोपियनोंकी तनख्वाहें कम कर देनी चाहिए और उत्तरदायित्वके स्थानपर भारतीयोंको ही नियुक्त करना चाहिए।

मादक द्रव्योंका एकाधिकार	६—मादक द्रव्योंका एकाधिकार राज्यकी आयके लिए है। इस एकाधिकारमें प्रजाके हितका ख्याल नहीं है।	६—मादक द्रव्योंके एकाधिकारसे आय प्राप्त करनेका यत्न न करना चाहिए। इस एकाधिकारमें प्रजाके हितको ही सामने रखना चाहिए।
रेल तथा नहर	७—नहरोंकी अपेक्षा रेलोंपर अधिक धन व्यय किया जा रहा है। नहरें ऐसी बनायी जा रही हैं जिनसे व्यापार व्यवसायको कुछ भी सहायता नहीं पहुँच सकती। रेलोंको गारंटी विधि पर बनाया गया है।	७—रेलोंकी अपेक्षा नहरों पर अधिक धन व्यय करना चाहिए। नहरें ऐसी बनायी जानी चाहिए जिनसे व्यापार व्यवसायको सहायता पहुँचे। रेलोंके बनानेमें गारंटी विधिको काममें लाना ठीक नहीं है। क्योंकि इससे फजूल खर्ची बढ़ती है और भारतका धन विदेशोंमें पहुँचता है।
आर्थिक स्वराज्य	८—भारत सरकार जनताके प्रति उत्तरदायी नहीं है। आयव्ययके पास करने या न करनेमें	८—भारत सरकारको जनताके प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। आयव्ययका पास करना

भारतीयोंका कुछ भी अधिकार नहीं है।	या न करना एकमात्र जनताके ही हाथमें होना चाहिए।	
९–जनताके प्रति अनुत्तरदायी होते हुए भारत सरकारका भारतीय सम्पत्तिपर स्वत्व है। यह बात ठीक नहीं है।	९–जनताके प्रति उत्तरदायी होते हुए ही भारत सरकारका भारतीय सम्पत्तिपर स्वत्व होना चाहिए। यही बात न्याययुक्त है।	जातीय सम्पत्ति पर स्वत्व
१०–जातीय ऋण दिनपर दिन बढ़ रहा है।	१०–जातीय ऋण दिनपर दिन घटाना चाहिए।	जातीय ऋण
११–भारत जहाजी शक्ति नहीं है।	११–भारतमें उत्तरदायी राज्य होना चाहिए और भारतको जहाजी शक्ति बन जाना चाहिए। बिना उत्तरदायी राज्यके भारतका जहाजी शक्ति बनना जातीय ऋणको और भी अधिक बढ़ाना होगा।	जहाजी शक्ति
१२–भारत सरकार अब दिनपर दिन अपना नियन्त्रण बढ़ाएगी और व्यापार व्यवसायके काम	१२–भारत सरकारका व्यापार व्यवसाय करना ठीक नहीं है। इस गुलामीकी हालतमें यह	सरकारी नियन्त्रणका बढ़ना

	करेगी और उससे आमदनी बढ़ाएगी।	उचित है कि भारत सरकारका नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप जहाँतक कम हो सके कम हो।
धनकी सहायता	१३–भारतीयव्यवसायोंकी उन्नतिमें राज्य उदासीन है। वह धनकी उचित सहायता नहीं पहुँचाता।	१३–भारतीय व्यवसायोंकी उन्नतिमें राज्यको विशेष ध्यान रखना चाहिए। व्यवसायोंको धनकी उचित सहायता पहुँचानी चाहिए।
मुद्रा निर्माणमें स्वतन्त्रता	१४–भारतमें जनताको सिक्कोंके बनानेमें स्वतन्त्रता नहीं है। टकसालें लोगोंके लिए खुली नहीं है। रुपयेमें युद्धसे पूर्व चाँदी कम थी। इसकी आमदनी स्वर्णकोष निधिमें थी जो इंग्लिस्तानमें रखा हुआ है।	१४–भारतमें जनताको सिक्कोंके बनानेमें स्वतन्त्रता होनी चाहिए। टकसालें लोगोंके लिए खुल जानी चाहिए। रुपयेको कृत्रिम सिक्का करके सोनेका वास्तविक सिक्का चलाना चाहिए। स्वर्णकोषनिधिको इंग्लिस्तानमें न रखना चाहिए।
राष्ट्रीय बंकविधि	१५–भारत-सरकार राज्यकोष विधिकी और	१५–भारत-सरकारको राष्ट्रीय बंक खोलना

दिनपर दिन पग धर रही है *।	चाहिए और उसीके द्वारा नोट निकालना चाहिए और उसीमें स्वर्णकोष निधिको रखना चाहिए †।

* बहुतोंका विचार है कि रिफार्म स्कीमके पास हो जानेके कारण सरकारकी आर्थिक नीति तथा राष्ट्रीय आय व्यय नीतिमें परिवर्तन हो जायगा। हो सकता है ऐसा हो। हम इस समय यही कहते हैं। द्वितीय संस्करणमें उत्पन्न परिवर्तनका उल्लेख किया जायगा। इससे अधिक कुछ भी लिखना कठिन प्रतीत होता है।

† V G Kale Indian Industrial Economic Problem, Indian Economics R C Dutt India under Early British Rule India in the Victorian Age, Famine in India etc

---

द्वितीय भाग

राष्ट्रीय आय

उपक्रम

••••••••

राष्ट्रके कोषमें तीन प्रकारसे धन आता है। (१) अप्रत्यक्ष आय (२) कल्पित आय (३) प्रत्यक्ष आय। अप्रत्यक्ष आयसे तात्पर्य उस आयसे है जो राष्ट्रीय कार्योंके करनेके बदले राज्यको नागरिकोंके आयसे कुछ भाग मिलता है। कल्पित आयमें यह बात नहीं है। जातीय ऋण तथा नोटोंके द्वारा राज्य जो धन ग्रहण करता है वह कल्पित आयके नामसे पुकारा जाता है। आजकल राज्य व्यापार तथा व्यवसायके काम को भी करता है और अपनी जमीनोंको असामियोंसे जुतवाता है और उनसे लगान लेता है। इस प्रकार राष्ट्रीय संपत्तिसे राज्यको जो आय होती है वह प्रत्यक्ष आयके नामसे पुकारी जाती है।

नागरिकोंके आयका कुछ भाग राज्य फीस जुर्माना कल्पित-कर तथा-राज्य करके द्वारा प्राप्त करता है। प्रजाके हितमें राज्य जो व्यावसायिक या व्यापारीय काम करता है उसके बदलेमें फीस लेता है। जुर्मानेके द्वारा राज्यको धन प्राप्त होता है यह सभी जानते हैं। अभी लिखा

जा चुका है कि प्रजाके हितमें जो व्यावसायिक या व्यापारीय काम राज्य करता है उसके बदलेमें फीस लेता है। बहुधा राज्य प्रजाके हितमें अन्य बहुतसे काम करते है जो व्यापारीय या व्यावसायिक नहीं होते। ऐसे कामोंके बदले राज्य जो धन ग्रहण करते है वह **एसेसमन्ट** (Assessments) या कल्पित करके नामसे पुकारा जाता है। शुरू शुरूमें बगालका **रोडेसस** इसी प्रकारका कल्पित कर था। परन्तु राज्यके व्यवहारसे अब वह भी शुद्ध राज्य कर बन गया है।

अप्रत्यक्ष आयका मुख्य स्रोत **राज्य कर** है। राज्य करका विषय बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके नियम तथा सिद्धान्त बहुत ही कठिन है।

उपर्युल्लिखित विषयोंपर निम्नलिखित तीन खण्डोंमें द्वारा क्रमशः प्रकाश डाला जायगा।

प्रथम खण्ड—अप्रत्यक्ष आय या राज्यकर।

द्वितीय खण्ड—कल्पित आय या जातीय ऋण।

तृतीय खण्ड—प्रत्यक्ष आय या लगान तथा लाभ।

पहला खंड

अप्रत्यक्ष आय तथा राज्यकर

पहला परिच्छेद ।

राज्य-करपर साधारण विचार ।

राज्यकी आय प्राप्तिका मुख्य साधन राज्य-कर है। यह तब तक रहेगा जब तक उत्पत्तिके साधनों-पर व्यक्तियोंका स्वत्व रहेगा। यही कारण है कि जातीय संपत्तिकी प्राप्ति तथा व्ययपर विचार करते हुए करको छोड़ा नहीं जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि इसको इस हद्दतक मुख्यता नहीं दी जा सकती कि इसका सम्बन्ध जातीय आय-व्ययके अन्य विभागोंके साथ टूट जाय। यदि कोई लेखक ऐसा करे भी तो वह कभी भी राष्ट्रीय आयव्यय शास्त्रको पूर्णता नहीं दे सकता। इस शास्त्रमें राज्यकरका भी एक मुख्य स्थान है परन्तु राज्य-कर यही सब कुछ नहीं है।

१—राज्य-करका इतिहास ।

राज्यकर शब्द का प्रयोग

राज्यकर शब्द अति प्राचीन है। हजारों बरस-से इसी शब्दका लोग व्यवहार कर रहे हैं। परन्तु

इसमें सन्देह भी नहीं है कि भिन्न भिन्न समयों में लोग इसके अर्थ भिन्न भिन्न लेते रहे हैं। इस समय लोग इस शब्दसे क्या मतलब लेते है इस को दिखानेके लिये राज्य-करका इतिहास दे देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

दान तथा राज्य-कर

पहिला क्रम – शुरू शुरूमें यूरोपीय देशोंमें राज्य-करका स्वरूप दानके धनके सदृश था। लैटिन भाषामें राज्य-करके लिए डोनम (Donum) शब्द का प्रयोग है जो संस्कृतके दान शब्दका रूपान्तर है। इसी प्रकार आंग्ल भाषामें राज्य-करके लिए जो बेनीवोलेन्स शब्द आता है उसका भी 'दान' ही अर्थ है।

सहायता मांगना तथा राज्यकर

दूसरा क्रम—दूसरे क्रममें राज्यकरका भाव 'दान'से "सहायता माँगने"के अर्थमें बदल गया। इसी प्रकार लैटिन प्रिकेरियम तथा जर्मन बीड शब्द भी इसी अर्थको प्रगट करते हैं। जर्मनीमें तो अभीतक भौमिक करके लिए लैण्डबीड (Land Bede) शब्दका प्रयोग होता रहा है।

सहायता देना तथा राज्यकर

तीसरा क्रम—तीसरे क्रममें राज्य-करका भाव 'सहायता मांगने, अर्थसे "सहायता देने अर्थमें" बदल गया। प्रत्येक व्यक्ति कर देते समय यह समझता था कि वह एक प्रकारसे राज्यको सहायता दे रहा है। लैटिन एड्जुटोरियम (adjutorium) आंग्ल एड् (aid) तथा फ्रान्सीसी ऐड् (aide) शब्द इसी अर्थको प्रगट करते हैं। आंग्ल

भाषाके सबसिडी (subsidy) तथा कान्ट्रिब्यूशन (contribution) जर्मन भाषाके स्ट्यूर (steur) और स्केन्डिनेवियन भाषाके जल्प (jelp) शब्द इसी अर्थके प्रकाशक हैं। फ्रान्समें तो अबतक राज्य-करके लिए कान्ट्रिब्यूशन शब्दका प्रयोग किया जाता है।

वैयक्तिक स्वार्थ त्यागके रूपमें राज्य-करका प्रगट होना।

चौथा क्रम—चौथे क्रममें राज्य-करके अन्दर "वैयक्तिक स्वार्थत्याग" का भाव प्रविष्ट होता है। "राज्यके लिए राज्य-करके रूपमें व्यक्ति स्वार्थ-त्याग करते हैं," जर्मन अबगेबा इटैलियन डेजियो तथा फरांसीसी गबीला शब्द इसी भाव को प्रगट करते हैं।

राज्य-करका कर्तव्यपालनके रूपमें प्रगट होना।

पांचवां क्रम—पांचवें क्रममें राज्य-करके आयपर 'कर्तव्यपालन' का भाव आया। राज्य-कर देना हमारा कर्तव्य है यह सब लोग समझने लगे। आंग्ल भाषामें राज्य-करके लिए ड्यूटी शब्द भी आता है। आय-कर तथा जायदादप्राप्ति करके लिए अबतक इसी शब्दका व्यवहार होता है।

राज्य-करमें बाधकताका भाव

छठाँ क्रम—छठे क्रममें राज्य करमें बाधकताका भाव प्रविष्ट हुआ। प्रत्येक व्यक्ति राज्यकर देनेमें बाधित है। आजकल यही समझा जाता है।

राज्य-करमें रेटका प्रश्न

सातवां क्रम—आजकल राज्य-करके अन्दर 'रेटका प्रश्न' उपस्थित हो गया है। राज्य

प्रत्येक व्यक्तिके लिए कर देनेकी मात्रा या रेट नियत करता है।

उपरिलिखित संपूर्ण क्रमोंको ध्यानमें रखते हुए राज्य करका आधुनिक स्वरूप इस प्रकार दिखाया जा सकता है।*

२—राज्य-करका स्वरूप।

र [illegible] इनमें [illegible] स्वतन्त्र [illegible]

[illegible] देना [illegible]

(१) राज्य-करोंके देनेमें व्यक्तियोंका स्वातन्त्र्य नहीं है। उनको बाधित होकर राज्य-कर देना ही पड़ता है, चाहे वह राज्य-कर देना चाहें या न देना चाहें। यही कारण है कि बाधित होना राज्य-करका मुख्य स्वरूप है। मुख्य शक्ति ही राज्य कर ग्रहण करती है। उसको दान प्रार्थना विनिमय तथा लेन देनके सदृश समझना गलती करना होगा। इसको बाधकताने रोमन शासनमें पूर्ण रूप प्राप्त किया था। लैक्टेन्टियस (३५७ विक्रमीय) का कथन है कि "जिस समय कर लगानेके लिए रोमन शासक प्रान्तीय लोगोंको नगरमें एकत्रित करते थे उस समयका दृश्य विचित्र होता था। लोगोंसे उनकी संपत्तिके विषयमें पूछा जाता था और उनको कोड़ोंसे मारा जाता था। इस उद्देश्यके लिए उनपर प्रत्येक प्रकारके अत्या-

[illegible] लगा [illegible] नेमें [illegible] मकोंके [illegible] तथा [illegible]

---

* हेनरी कार्टर आदमरचित "दि साइन्स आफ फाइनान्स" (१८९८) पृष्ठ २८६—२९३।

१ सैलगमैन, 'ऐस्सेज इन टैक्सेशन', पृ० ७-५

चार किये जाते थे। लड़केसे पिताके विरुद्ध और स्त्रीसे पतिके विरुद्ध बातें पूछी जाती थीं।" सैक्सन कालमें इंग्लैण्डके अन्दर संपूर्ण राज्य-करोंका सम्बन्ध भूमिसे ही था। दुर्ग पुल तथा सेना सम्बन्धी काम जमींदारोंको ही करने पड़ते थे। इनका बाधक स्वरूप इसीसे जाना जा सकता है कि आंग्लप्रजाको इन बाधक करोंसे अपने आपको बचानेके लिए प्रबल यत्न करना पड़ा। इस यत्नका ही यह परिणाम हुआ कि उनको संपूर्ण जातियोंसे पहले आर्थिक स्वराज्य मिल गया। भारतवर्षमें अभीतक जनताको आर्थिक स्वराज्य प्राप्त नहीं है। राज्य भौमिक लगानके लेनेमें प्रजाको बाधित करता है। ऐसी ही घटनाओंके कारण विवश होकर महात्मा गांधीको खेड़ा जिलेमें निष्क्रिय प्रतिरोध करना पड़ा था।

आंग्ल प्रजाका बाधक करोंसे अपनेको बचानेका यत्न करना

महात्मा गांधी का खेड़ावाला सत्याग्रह

(२) राज्य-करका बाधित स्वरूप उस समय अप्रत्यक्ष हो जाता है जब उससे अपने आपको बचानेका जनताको अवसर मिल जाय। आयको न बताना चोरी चोरी नगरमें सामानको ले जाना आदि सैकड़ों ढंग हैं जिनसे बहुतसे लोग राज्य-करोंसे अपने आपको बचा लेते हैं। इस प्रकारका बचाना ही इस बातको प्रगट करता है कि राज्य-कर सदाही बाधित होते हैं।

राज्य-करसे बचनेके लिए लोगोंका यत्न करना

(३) राज्य-कर बहुत रूपोंमें प्रजापर प्रगट होते हैं। फ्यूडल कालमें यूरपके अन्दर राज-

भिन्न रूपोंमें राज्यकरका प्रगट होना।

पुत्रके नाइट बननेके समयमें और राजपुत्रीके विवाह कालमें सहायताके तौरपर प्रजा राजा को धन देती थी। सभ्य देशोंमें करोंका यह स्वरूप अब नहीं रहा है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि भारतमें तहसीलदार तथा थानेदार अपनी यात्राओंका खर्चभार दरिद्र भारतीय प्रजापर ही डालते हैं। बेगारमें बैलगाड़ी तथा मनुष्योंका पकड़ना तो यहां साधारणसी बात है।

(४) राज्य प्रजासे अन्य विधियोंसे भी बहुत-सा धन खींचते हैं जिसको राज्य कर ही कहना चाहिए। राज्यद्वारा भिन्न भिन्न पदार्थोंका आर्थिक दृष्टिसे विक्रय और उनकी स्पर्धाजन्य कीमतसे अधिक कीमत लेना एक प्रकारसे प्रजासे राज्यकर ही लेना है भारतवर्षमें आंग्ल राज्यको नमकके एका-धिकारसे प्राप्त आय इसीका ज्वलन्त उदाहरण है।

(५) जातीय ऋणोंके द्वाराभी राज्य बहुत धन प्राप्त करता है। इसको भी एक प्रकारका राज्य-कर समझना चाहिए। अनेकों बार जातीय ऋणोंके लेनेमें भी राज्य-करका बाधित स्वरुप ज्योंका त्यों बना रहता है। यही नहीं राज्य जातीय ऋणों तथा उनके व्याजोंको करोंके द्वारा चुकाता है। इस दशामें जातीय ऋणोंको बाधित भावी राज्य-कर समझना चाहिए।

(६) राज्य-कर भिन्न भिन्न पदार्थोंपर ही

लगाये जाते हैं अतः उनका सम्बन्ध विशेषतः पदार्थोंसे ही है। परन्तु प्रोफेसर बैस्टेबल ऐसा न मानकर उसका सम्बन्ध पुरुषोंसे ही प्रगट करते हैं। उनका कथन है कि संपत्ति तथा पदार्थोंका 'स्वत्व' एक विशेष गुण है। स्वत्वका सम्बन्ध मनुष्योंसे है। राज्य-करद्वारा संपत्तिपर स्वत्वका परिवर्तन होता है। वैयक्तिक सपत्तिका कुछ भाग राज्य करद्वारा * राजकीय संपत्तिमें परिवर्त्तित हो जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक राजकीय करद्वारा वैयक्तिक संपत्ति कुछ न कुछ कम हो जाती है। बहुत बार राज्य-कर कुछ एक व्यक्तियोंकी संपत्तिको बढ़ा देता है। संरक्षक बाधित सामुद्रिक तट करसे प्रायः यही बात होती है †।

करोंका सम्बन्ध

३—राज्य करका लक्षण।

प्रोफेसर बैस्टेबलकी सम्मतिमें राष्ट्रीय कार्यों तथा शक्तियोंके लिए व्यक्तियोंसे बाधित तौरपर लिया हुआ धन राज्य कर कहलाता है ‡।

---

* महाशय नलिग्मैनके एसिसेज आफ टक्सेशन नामक पुस्तकका भाग २ परिच्छेद ३ देखो।

† महाशय निकलसन रचित प्रिन्सिपिल्स आफ पोलिटिकल इकोनमी, खण्ड ३ पुस्तक ५ परिच्छेद ६।

‡ महाशय बैस्टेबलका पब्लिक फाइनान्स (१८९२) पृष्ठ २६१ २६५।

इस लक्षणका प्रत्येक शब्द गम्भीर अर्थोंसे परिपूर्ण तथा महत्वपूर्ण है। दृष्टान्त तौरपर —

नागरिकोंको राज्यकर देनाही पड़ेगा

१. सबसे पहले "बाधित तौरपर लिया हुआ धन" यह शब्द उपरिलिखित राज्य-करके लक्षणमें ध्यान देनेके योग्य है। बाधित तौरपर इस शब्दसे यह मालूम पड़ता है कि राज्य-करके देनेमें नागरिक स्वतन्त्र नहीं है। वह चाहें या न चाहें उनको राज्य-कर देना ही पड़ेगा।

राज्य-करसे नागरिकोंकी प्रत्यक्ष हानि

२ 'लिया हुआ धन' इस शब्दमें यह भाव छिपा हुआ है कि राज्य-करके कारण नागरिकोंको धन सम्बन्धी कुछ न कुछ प्रत्यक्ष हानि अवश्य होती है। प्रत्यक्ष हानिमें प्रत्यक्ष शब्द इसीलिए कहा कि बहुत बार राज्य-करके कारण नागरिकोंको अप्रत्यक्ष तौरपर लाभ भी होजाता है।

प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक दोनों ही धनोंपर राज्य कर लगता है

३ 'लिया हुआ धन' इस शब्दमें धनसे तात्पर्य प्राकृतिक तथा अप्राकृत दोनों ही धनोंसे है। यही कारण है कि बाधित सैनिकसेवा, राज्यका बाधित तौरपर कार्य लेना तथा बेगारीमें पकड़ना आयव्ययशास्त्रमें राज्यकर ही समझा जाता है।

राज्य-कर देना व्यक्तियोंका कर्तव्य है

४ 'व्यक्तियोंसे बाधित तौरपर लिया हुआ धन' इसमें 'व्यक्तियोंसे' यह शब्द ध्यान देनेके योग्य है। 'व्यक्तियोंसे' इस शब्दसे ही यह मालूम पड़ता है कि राज्य-करका देना व्यक्तियोंका

कर्त्तव्य है। यहाँ यह ध्यानमें रखना चाहिए कि सम्पूर्ण कर अन्ततः व्यक्तियोंसे ही लिये जाते हैं। चाहे वह वास्तविक कर हों चाहे अप्रत्यक्ष कर हों।

५. 'राष्ट्रीय कार्योंके लिए' इससे यह प्रत्यक्ष है कि राज्य अपने लिए तथा राष्ट्रको नुकसान पहुँचानेके लिए राज्य कर नहीं ले सकता। यही कारण है कि पराधीन देशोंमें व्यवसायव्यापारनाशक राज्य कर लगते हुए भी युरोपीय देश उसको राष्ट्रीय हितकारक ही प्रगट करते हैं। राज्य करके लक्षणमें यह शब्द बहुतही महत्वपूर्ण हैं। इनको भुलाना न चाहिए। इनकी विस्तृत व्याख्या आगे चलकर पुनः की जायगी।

रा य अपने लिए न ी र का नुकसान पहुँचानेके लिए र ा कर न न ले

६ 'राष्ट्रीय शक्तियोंके लिए' यह शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसीसे यह प्रगट होता है कि मुख्य तथा स्थानीय राज्यके द्वारा लिया हुआ धन राज्य कर है। ग्रामोंसे स्थानिक व्ययके लिए जो धन राज्य लेता है वह भी राज्य कर है।

मख्य त नीय र ज्यक द्वारा लियाहुआ धन र य-कर है

७ राज्य-करका स्रोत 'स्वत्व' है। यदि संपूर्णपदार्थों तथा व्यक्तियोंपर राज्यका ही स्वत्व कहावे तो राज्य-करकी कोई जरूरतही न रहे। प्रायः ऐसा भी होता है कि जिन स्थिर पदार्थोंपर राज्य लगातार राज्यकर लगा रहा हो वे पदार्थ ही राजकीय स्वत्वमें आ जाते हैं। भारतवर्षमें भूमि-

राज्य करक स्रोत स्व व है

पर प्रजाका स्वत्व था। राष्ट्रीय कार्यों तथा शक्तियोंके लिए राज्य जिमींदारोंसे राज्य-करके तौरपर भौमिक लगान लेता था। आंग्ल राज्यने इस भौमिक लगानको राज्य-करका रूप न देकरके अपनी ही आयका रूप दे दिया है और भूमिपर अपनाही स्वत्व प्रगट करना शुरू किया है। यह कहाँतक न्याययुक्त है? भारतीय भौमिक लगानके प्रकरणमें इसका निर्णय किया जा चुका है।

आंग्ल राज्यका भारतीय भूमि पर अपना स्वत्व प्रगट करना

अभी लिखा जा चुका है कि राष्ट्रीय कार्य्यों तथा शक्तियोंके लिए बाधित तौरपर लिया हुआ धन राज्य-कर कहलाता है। इसमें बाधित तौरपर यह शब्द ध्यान देने योग्य है। क्योंकि आजकल राज्य-करमें बाधकताको एक आवश्यक गुण समझा जाता है। प्राचीनकालमें भी राज्य-कर बाधित थे परन्तु उनके बाधकपनेका वह आधार न था, जो कि आजकल है। आजकल इसका आधार वैयक्तिक समानता तथा न्यायपर रक्खा जाता है। यदि कोई व्यक्ति कर देनेमें अपना कर्त्तव्य पालन न करे तो राज्य उससे जबरदस्ती कर ले सकता है। यह इसीलिए कि सबपर राज्यकर समान रूपसे पड़े और किसी एकपर कर-भारके कारण अन्याय न होसके।

आजकल करकी बाधकताका आधार वैयक्तिक समानता तथा न्याय है

आजकल राज्य-करके लक्षणपर बड़ा भारी मतभेद है। जितने लेखक हैं उतने ही राज्य-करके लक्षण हैं। यह होते हुए भी संपूर्ण विचारकोंको दो

श्रेणीमें विभक्त किया जा सकता है। एक उस श्रेणीके लोग हैं जो राज्यनियमोंके अनुसार राज्य-करका लक्षण करते हैं और दूसरे उस श्रेणीके लोग हैं जो भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंके अनुसार राज्य-करका लक्षण करते हैं। अब पृथक् पृथक् श्रेणीके विचारकोंके विचारोंकी आलोचना की जायगी।

[illegible] लक्षणपर विचार [illegible]

राज्यनियम-ज्ञाताओंके अनुसार राज्य-करका लक्षण।

राज्य-करके लक्षण करनेमें सबसे बडी कठिनाई यह है कि कोई भी लक्षण संपूर्ण सामाजिक परिस्थितियोंके अनुकूल नहीं बन सकता। कोई किसी अवस्थाके लिए ठीक होता है और कोई किसी अवस्थाके लिए। राज्यनियमोंके अनुसार राज्य करका जो लक्षण किया जाता है, सबसे पहिले हम उसीकी आलोचना करेंगे। अमेरिकन राज्यनियमोंके अनुसार राज्य करमें निम्नलिखित तीन गुणोंका होना अत्यन्त आवश्यक है।

[illegible] लक्षण [illegible] अनुकूल नहीं [illegible]

(१) राष्ट्रीय कार्योंके लिए ही राज्य-करके तौरपर धन लिया जाना चाहिए। आजकल संपूर्ण सभ्य देशोंमें प्रतिनिधितन्त्र राज्य है। जनताको आर्थिक स्वराज्य मिला हुआ है। बजटके विषयपर लिखते हुए इस विषयपर प्रकाश डाला जा चुका है। यही कारण है कि स्वकीय कार्योंके लिए जन-

[illegible] कर लिया जाना चाहिए

तासे धन लेना और जनता को आर्थिक स्वराज्य न देना आजकल अत्याचारका एक रूप समझा जाता है। यही नहीं राज्यका आवश्यक व्ययसे अधिक धन लेना एक प्रकारसे राज्य-नियमोंकी ओटमें डाका मारना है। महाशय आदमने ठीक कहा है कि राज्य-कर तथा अधीनतासूचक करमें यही भेद है कि जहाँ प्रथम जनताकी स्वीकृतिके अनुसार आवश्यक व्ययोंको सन्मुख रखकर लिया जाता है वहाँ द्वितीय जनताकी बिना स्वीकृतिके आवश्यक व्ययोंसे किसी सीमातक अधिक लिया जाता है। अधीन राज्योंमें प्रायः यही घटना काम करती है। जो राज्य अपनी प्रजाके साथ अपनी करीय शक्ति का दुरुपयोग करते हैं वे एक प्रकारसे अपनी प्रजा के साथ आधीन प्रजाके सदृश व्यवहार करते हैं। वार्षिक व्ययसे अधिक धन लेना डाका मारना तथा प्रजाको राज्यनियमोंके सहारे लूटना है।* शोकसे कहना पड़ता है कि भारतमें यही घटना कई वर्षोंसे काम कर रही है। श्रीमान गोखले १६०२ की २६ मार्चके दिन यह शब्द भारतीय व्यवस्थापक सभामें कहे थे कि "लगातार टैक्सके बढ़ानेका मुख्य परिणाम यह हुआ है कि जितने धन-की सरकारको आवश्यकता है उससे कहीं अधिक

(हाशिया: महाशय आदमके विचार; श्रीमान् गोखले)

* महाशय हेनरी कार्टर आदमरचित दि साईन्स आव फाईनान्स (१८६८) पृ. २६३—२६४

टैक्स वसूल किया जा रहा है। इसी तरह जबर-दस्ती बढ़ाये हुए करोंके द्वारा सरकारने बहुत बड़ी रकमकी बचत कर ली है।" * भारतीय सरकारको इस मामलेमें बड़ी सावधानी करनी चाहिए क्योंकि हमारे बजट तथा व्ययसे अधिक आयको देखकर अमेरिका आदि सभ्य देशोंके विचारक भारतीय सरकारको किसी अच्छी दृष्टिसे नहीं देख सकते। जो बातें इस नवीन युगमें अत्याचार तथा स्वेच्छाचारका परिणाम समझी जाती हैं, अच्छा है कि उन बातोंके करनेसे भारतीय सरकार अपने आपको बचावे। प्रजा तथा राज्यका हित इसीमें है।

राज्य कर लेने का वर्तमान ढंग बुरा है

राज्यनियम बनाना और बात है और उसको काममें लाना और बात है। प्रश्न तो यह है कि यदि कोई राज्य हर साल प्रजासे अधिक अधिक धन करके तौरपर मांगे तो इसका क्या उपाय किया जाय? राज्य राष्ट्रीय कामोंके नामपर प्रजा से धन मांगते हैं जब कि कौनसे काम राष्ट्रीय है और कौनसे काम राष्ट्रीय नहीं हैं? इसका निर्णय न्यायाधीशोंके हाथमें न रखकर राज्योंने अपनेही हाथमें रख लिया है। भारतमें तो राज्य पूर्ण तौर-पर स्वतन्त्र है। दूसरी जातियोंके खर्चोंको भी वह भारतीयोंके सिरपर मढ़ सकता है। भार-

* श्रीमान् गोखलेके व्याख्यान। हिन्दी सस्करण (१९१७) पृ० ११

तीय जातीय ऋणके इतिहासकी प्रत्येक पंक्ति इसी सचाईको दिखाती है। जो कुछ हो, इस बुराईका राजनीतिके साथ सम्बन्ध है अतः यहां हम उसपर कुछ भी नहीं लिखकर अपने राजनीति शास्त्रमें ही इसपर प्रकाश डालेंगे। *

राज्य-करमें समानता तथा न्याय

(२) राज्य कर समान तथा न्याययुक्त होना चाहिये। राज्य कर ऐसा होना चाहिए जिससे समानता तथा न्यायका भङ्ग न हो। वास्तविक बात तो यह है कि राज्यके प्रत्येक काम में इन दोनों बातोंका होना अत्यन्त आवश्यक है। राज्यके सन्मुख प्रत्येक नागरिक समान है अतः उसको अपने प्रत्येक काममें निष्पक्ष तथा न्याययुक्त होना चाहिए। जो राज्य असमानताका व्यवहार करते हैं और असमान राज्य-कर लगाते हैं वह जातिको धोखा देते हैं। उनसे जो पवित्र काम करनेकी आशा की जाती है, उस आशापर वह पानी फेरते हैं। राज्य-करका समान होना एक आवश्यक बात है। इसके साथ ही साथ हम यह लिख देना भी आवश्यक समझते हैं कि "कौनसा कर समान है, कौन सा नहीं"? इसका निर्णय करना न्यायाधीशोंका काम नहीं है। प्रतिनिधि-सभा ही इसका निर्णयकर सकती है। यही कारण

समानता असमानताका निर्णय प्रतिनिधि-सभा करे

* महाशय हेनरी कार्टर आडमरचित दि साइन्स आव फाइनान्स (१८९८) पृ० २१४

है कि प्रतिनिधियोंका बुद्धिमान तथा विचारवान होना नितान्त आवश्यक है।

(३) राज्य कर तथा राजकीय धनकी मांगका राज्य नियमानुकूल होना आवश्यक है—इसका राज्य-करके सिद्धान्तोंके साथ विशेष सम्बन्ध न होते हुए भी कार्य रूपमें आना अत्यन्त आवश्यक है। यह क्यों? यह इसीलिए कि राज्य नियम भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न मनुष्य बनाते रहते है। होसकता है और अधिकतर यह हो भी जाता है कि बजट् बनाते समय किसी एक विशेष राज्यनियमका ध्यान नहीं रहता है। ऐसी दशामें नियामक सभाके अन्दर इसका राज्यनियमानुकूल प्रत्येक वर्ष ठहराया जाना अत्यन्त जरूरी है। यही नहीं। अमेरिकामें तो मुख्य न्यायालयको यह अधिकार है कि वह किसी राज्यद्वारा गृहीत धनको राज्य करका नाम न दे, यदि उसको यह मालूम पड़े कि अमुक धनका ग्रहण करना राज्यनियमोंके अनुकूल नहीं है। यह होनाही चाहिए। क्योंकि इसी एक नियमके द्वारा जनता राज्यके कर सम्बन्धी स्वेच्छाचारसे अपने आपको बचा सकती है और व्यापारी व्यवसायी निर्भय होते हुए अपने काम धन्धेको बढ़ा सकते हैं। जिन देशोंमें १९१९ विक्रमीय के ३३ भारतीय व्यावसायिक करके सदृश काम धन्धेके नाशक राजकीय कर आपड़ते हो और जनताको

नियामक सभा में प्रतिवर्ष उसे राज्य नियमानुकूल ठहराना चाहिए

अमेरिकन मुख्य न्यायालयका अधिकार

उन करोंकी स्वेच्छा-चारितासे अपने आपको बचानेका अवसर न हो वहाँ आर्थिक उन्नति, पदार्थोंकी उत्पत्तिमें रुचि तथा उत्साही जीवनका न होना स्वाभाविक ही है। *

संपत्तिशास्त्रज्ञोंके अनुसार राज्य करका लक्षण

राज्यको सहायता पहुँचाना नागरिकोंका कर्त्तव्य है

सपत्तिशास्त्रज्ञ राज्य-करपर किसी अन्यही विधिसे विचार करते हैं। वह भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंका सहारा लेकर इस बातको सिद्ध करते हैं कि राज्यको सहायता पहुँचाना नागरिकोंका कर्त्तव्य है। इनके सिद्धान्ताके अध्ययनसे यह पता लगता है कि आजकल भिन्न भिन्न देशोंमें जनताका राज्यके साथ क्या आर्थिक सम्बन्ध है और वह अब किस ओर झुक रहा है। करके संपूर्ण लक्षणोंपर बिचार करना पुस्तकको बहुत बड़ा बना देना होगा अतः करके मुख्य मुख्य तीन लक्षणोंको दे देना हो उचित प्रतीत होता है। भिन्नभिन्न विचारक करको निम्नलिखित तीन प्रकारसे प्रगट करते हैं।

करके मुख्य तीन लक्षण

<u>(क) राज्यकरका मूल्य सिद्धान्त।</u> राज्य-कर, राजकीय सेवाका मूल्य है

<u>(ख) राज्य करका लाभ सिद्धान्त।</u> राज्य-

---

* महाशय आदमका फाइनान्स (१८९८) पृ० २९३—२९७

कर राज्यको उसी अनुपातसे मिलते हैं जिस अनुपातमें प्रजाको राज्यसे लाभ पहुँचता है।

(ग) राज्य करका साहाय्य सिद्धान्त। जन-समाज सम्मिलित होकर (अपने एक उद्देश्यके तौर पर) राज्यको सहायता पहुँचाता है।

अब प्रत्येक लक्षणपर पृथक पृथक विचार करनेका यत्न किया जायगा।

(क) राज्य-करका मूल्य सिद्धान्त।

राज्यको-कर उतना ही मिलना चाहिए जितना कि उसने काम किया है

राज्य करके मूल्य सिद्धान्त-वादी राज्य करको राजकीय सेवा का मूल्य समझते हैं। राज्यको राज्य करके तौरपर उतनाही धन मिलना चाहिए जितना कि राज्यने कार्य किया है। इस सिद्धान्तके दूषण तबतक सामने नहीं आते हैं जबतक करदाता सारे राष्ट्रके लाभोंको सन्मुख रखकरके ही राज्य कर देते हैं। जहां उन्होंने अपने लाभोंको पृथक तोरपर देखाना शुरु किया कि इस सिद्धान्तकी त्रुटियां सामने आ पडती है। राज्य तथा प्रजाका सम्बन्ध बनियोंका सम्बन्ध नहीं है। राज्य समाजका ही एक अङ्ग है और उसीके हितमें सम्पूर्ण काम करता है।

तीन दोष

इस सिद्धान्तके निम्नलिखित तीन दोष हैं जिनको कभी भुलाया नहीं जा सकता।

राज्य राष्ट्रका अङ्ग नहीं रहता

(१) राज्य-करके मूल्यसिद्धान्तके अनुसार राज्य राष्ट्रका अंग नहीं रहता। उसकी वही स्थिति

होती है जो एक विदेशीकी। राज्य तथा राष्ट्रका पारस्परिक सम्बन्ध क्रेता विक्रेताका सम्बन्ध नहीं है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध वही है जो शरीरका एक अगके साथ होना है।

(२) इसी सिद्धान्तका अप्रत्यक्ष परिणाम यह भी है कि नागरिक जब चाहें राज्यकी सेवा इन्कार कर दें और इस प्रकार स्वयं भी राज्य कर देनेसे मुक्त हो जायें। यह किसको मंजूर हो सकता है?

(३) इसी सिद्धान्तका यह भी मतलब है कि नागरिकोंको राज्यको उसी अनुपातमें राज्य-कर देना चाहिए जिस अनुपातमें राज्यद्वारा उनको लाभ मिलता हो। परन्तु इसको कैसे माना जा सकता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने लाभोंको देखकरके राजाको कर देनेका यत्न करे तो इससे राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रकी पवित्र मूर्त्तिका भग्न हो जाना स्वाभाविक ही है।

(ख) राज्य-करका लाभसिद्धान्त।

लाभसिद्धान्त वादियोंका कथन है कि राज्यको कर उसी अनुपातमें मिलते हैं जिस अनुपातमें प्रजाको राज्यसे लाभ पहुँचता है। आजकल लाभ सिद्धान्तको बीमा सिद्धान्तके नामसे भी पुकारा जाता है। मूल्य सिद्धान्तके सदृश ही लाभ सिद्धान्तका आधार व्यष्टिवादपर है। दोनों ही सिद्धान्त

समान हैं। फरक् केवल यही है कि पहला जहाँ राज्य करको राजकीय व्ययकी दृष्टिसे देखता है। वहाँ दूसरा उसीको नागरिक लाभकी दृष्टिसे देखता है। वास्तविक बात यह है कि राज्य कर इसलिए नहीं दिया जाता कि राज्यको सामाजकी रक्षाके लिए जो खर्च करना पडता है वह मिल जाय और न इसीलिए कि कार्य करनेमें राज्यसे लाभ मिलता है।

पराधीन राष्ट्र मे यह सिद्धान्त काममे लाय जाते

जिन देशोंमें राज्यका सम्पत्ति तथा जीवनकी रक्षा करनेके सिवाय और कोई भी काम नही है वहाँ राज्य करका लाभ सिद्धान्त किसी हदतक ठीक हो सकता है। भारतीय राज्य भारतीय जनताका अग नही है, अत यहाँ राज्य करका लाभ सिद्धान्त तथा मूल्यसिद्धान्त दोनो ही काममें लाये जा सकते हैं। परन्तु यूरोपीय देशोके राज्य बहुत उन्नत हैं। वह नागरिकोकी उन्नतिमें अपनी उन्नति और नागरिकोंकी समृद्धिमे अपनी समृद्धि समझते है। उनके व्यय भी सरक्षण सम्बन्धी कार्योमें उतने अधिक नहीं है जितने कि राष्ट्रीय कार्योमे। भारतमें राज्यका व्यय सरक्षण सम्बन्धी कार्योंमे बहुत ही अधिक है और यह राज्यकी निकृष्टताका चिन्ह है। आजसे बहुत समय पूर्व यूरोपकी दशा भी ऐसी ही थी। उस समय जनताको लाभ सिद्धान्त भारतीयोंके सदृश ही प्रिय था। मान्टस्क्यूने भी शुरू शुरू

१०

राज्य-करके बीमा या लाभ सिद्धान्तका खण्डन

में इसी सिद्धान्तको पुष्ट किया था। उसका कथन है कि "जन समाज अपनी सम्पत्ति तथा जीवनके संरक्षणके लिए राज्यको करके तौरपर कुछ धन दे देता है।" इसीको आधार बनाकर अन्य बहुतसे लेखकोंने भी राज्य-करकी पुष्टि की है महाशय थेयर्स ने तो राज्य-करको बीमा कराई-के धनसे ही उपमा दे दी है। वास्तविक बात तो यह है कि सब गलतियाँ राष्ट्रके स्वरूपको ठीक ढंगपर न समझनेके कारण ही उत्पन्न हुई हैं। इस गल्तीके साथ साथ सम्पत्ति सम्बन्धी विचारमें उलझन पड़ जाती है। क्योंकि राज्य-करको यदि बीमा कराईका धन माना जाय तो सम्पत्तिकी उत्पत्तिमें एक मात्र व्यक्तिको ही कारण मानना आवश्यक है। परन्तु आजकल सम्पत्तिकी उत्पत्तिमें राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितिका जो भाग है उसको कौन भुला सकता है। इस दशामें राज्य-करका बीमासिद्धान्त कैसे सत्य हो सकता है? क्योंकि उसका आधार सम्पत्तिको वैयक्तिक श्रमका परिणाम माननेपर है। जो माना नहीं जा सकता।

(ग) राज्य-करका साहाय्य सिद्धान्त

राज्यकी सहायताके लिए कर दिया जाता है

साहाय्य-सिद्धान्त-वादियोंका मत है कि राष्ट्रकी सहायताके लिए नागरिक लोग राज्य-कर देते हैं।

'राष्ट्रकी सहायताके लिए' इसके अन्दर बहुतसे विचार सम्मिलित हैं। दृष्टान्त तौरपर—

राज्यको सामूहिक स्वार्थ पूरा करनेका काम करना चाहिए

(१) सहायता उसको दी जाती है जिससे कोई अर्थ सिद्ध होता हो। इस प्रकार सहायताके साथ साथ जन-समाजका सामूहिक स्वार्थ जुड़ा हुआ है इसीको स्पष्ट तौरपर यों भी कहा जा सकता है कि राज्यको वे काम करने चाहिए जिनसे सामूहिक स्वार्थ पूरा हो। वैयक्तिक दृष्टिसे उसका काम करना निरर्थक तथा राज्य-करके मौलिक विचारसे विरुद्ध है। सारांश यह है कि साहाय्यसिद्धान्तके आधारमें सामूहिक-वाद तथा राष्ट्रका ऐन्द्रिकवाद है न कि व्यष्टिवाद।

समानता तथा न्यायके नियमों का ख्याल करके ही कर लगाना चाहिए

(२) साहाय्यसिद्धान्तसे यह भी भाव निकलता है कि राज्यको न्याय तथा समानता आदि नियमोंका ख्याल करके ही कर लेना चाहिए। क्योंकि राज्य सामाजिक स्वार्थको संगठित रूपसे पूरा करनेके लिए बाधित है। अतः उसको ऐसा काम न करना चाहिए जिससे व्यक्तियोंमें असमानता उत्पन्न हो और व्यक्तियोंपर अन्याय हो। सारांश यह है कि व्यक्तियोंसे उनकी सापेक्षिक शक्तियोंके अनुसार राज्य-कर लिया जाना चाहिए*।

* आडम रचित "फाइनान्स" (१८६८) पृष्ठ २६७-३०२

४ राज्यकर-शक्तिका वर्गीकरण

इस प्रकरणके लिखनेका मुख्य तात्पर्य यह है कि किसी तरीकेसे राज्य-करके स्वरूपको बिल्कुल स्पष्ट किया जा सके। प्रत्येक राज्यके पास करीय शक्ति (taxing power) है जिसके अनुसार वह प्रजासे जबर्दस्ती धन ले सकता है। प्रश्न उपस्थित होता है कि राज्यको करीय शक्ति किसने दी? नियामक शासक तथा निर्णायक विभागमें कौन सा विभाग है जो राज्यको करीय शक्ति देता है। कौनसा विभाग इस शक्तिको काममें लाता है। प्रतिनिधितन्त्र तथा आर्थिक स्वराज्यवाले उत्तरदायी राज्योंमें करीय शक्तिका मुख्य स्रोत नियामक सभा है। राज्य-करोंको नियमपूर्वक ठहराना आवश्यक है, और यह काम नियामक सभाका है। इस प्रकार करीय शक्ति भी आजकल नियामक सभाओंके पास है। वही इस शक्तिको शासकोंको प्रतिवर्ष देती है। इंग्लिस्तानका राजनैतिक इतिहास इसी बातका साक्षी है कि किस प्रकार जनताने राजकीय शक्तिका मर्दन किया और करीय शक्तिको अपने हाथमें ले लिया। भारतवर्षमें करीय शक्ति भारतीय जनताके पास नहीं है। सरकारी शासक भारीसे भारी कर जनता पर लगा सकते हैं, परन्तु भारतीयोंको वह कर सहना ही पड़ेगा। चाहे देश सभ्य हो और चाहे असभ्य, करीय शक्तिका जनताके पास

करीय शक्ति नियामक सभाके पास है

भारतमें ऐसा नहीं है

होना ही आवश्यक है। इसीको दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि आर्थिक स्वराज्यका प्राप्त करना जनताका जन्मसिद्ध कर्तव्य है। बिना आर्थिक स्वराज्यके किसी प्रकार-की भी आर्थिक उन्नति संभव नहीं है। राजाको कर लगानेमें स्वतन्त्रता देना एक प्रकारसे असभ्य-ताका चिन्ह है। करीय शक्तिको शासक तथा नियामक शक्तिसे उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता है। यही कारण है कि करीय शक्ति किसी भी समय-में नियम तथा शासनकी उपेक्षा नहीं कर सकती है। करीय शक्तिके विषयमें दो प्रश्न उठते हैं जिनका दे देना आवश्यक प्रतीत होता है।

करीय शक्तिके विषयमें दो प्रश्न

(क) करीय शक्तिका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है?

(ख) करीय शक्तिके प्रयोगकी कौन कौन सी परिमितियाँ हैं?

(क) करीय शक्तिका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है?

करीय शक्तिकी प्राप्ति और उस-का बँटवारा

करीय शक्तिका मुख्य स्रोत जन समाज या नियामक सभा है, इसपर प्रकाश डाला जा चुका है। करीय शक्तिका प्रयोग किस प्रकार होना चाहिए अब इसीपर कुछ प्रकाश डाला जायगा। आज

कल शासकसभाएँ जनतासे करीय शक्तिको प्राप्त करके प्रान्तीय राष्ट्रीय तथा नागरिक शासक सभाओंमें करीय शक्तिको बाँट देती हैं। साथ ही उनको इस बातसे भी सूचित करती हैं कि वह इस शक्तिको राजकीय कार्य्योंके लिए धन प्राप्त करनेके अतिरिक्त अन्य किसी भी कार्यके लिए काममें नहीं ला सकती हैं। यह क्यों? यह इस लिए कि करीय शक्ति वह एक महाशक्ति है जिसके द्वारा जनताको भयंकर नुकसान पहुँच सकता है। इसी विचारसे जज कूलेने यह बात कही थी कि राजकीय आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए राज्यको करीय शक्ति जनताने दी है। यदि इस शक्तिको वह किसी अन्य मतलबके लिए काममें लाता है तो उस शक्तिका दुरुपयोग करता है और जनताके अधिकारोंको कुचलता है *। यहां एक और बात न भूलनी चाहिए कि राज्य जनताद्वारा प्राप्त करीय शक्तियोंके अनुसार ही करीय शक्तिको काममें ला सकता है। राज्य-बाधक सामुद्रिक कर' अन्य शक्तियोंके अनुसार लगा सकता है और इस प्रकार राज्य नियमोंके अनुसार भी चल सकता है। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं

इसके अनुचित उपयोगमें जनताको भयकर नुकसान पहुंचना है

---

* Principles that should govern in the Framing of the laws. An address by Judge Thomas M Cooley before the American Social Science Association. April 22-1878

कि यदि राज्यको करीय शक्ति रूपी एक ही शक्ति मिली हो और वह इस दशामें बाधक सामुद्रिक करका प्रयोग करे तो वह जनताके प्रति अपराधी ठहर सकता है।

जनताकि लाभ और करीयशक्ति का प्रय

करीय शक्तिका प्रयोग करते समय राज्यको दा बातोंका ध्यान रखना चाहिए। एक तो यह कि जहाँतक हो सके वह करीय शक्तिका प्रयोग इस प्रकार करे जिससे जनताको कमसे कम नुकसान पहुँचे और अधिकसे अधिक लाभ पहुँचे। दूसरे यह कि करीय शक्ति तथा करीय शक्तिके प्रयोगमें क्या भेद है। क्योंकि शक्तिका प्रयोग बीसों मतलबसे किया जा सकता है। पुलिस विभागवाले नागरिक प्रबन्ध करनेवाले तथा व्यापारका नियन्त्रण करनेवाले खास खास बुराइयोंको रोकनेके लिए इसका प्रयोग कर सकते है परन्तु उस समय उस करका करीय शक्तिसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं हो सकता क्योंकि उस करका स्वरूप एक दण्डका स्वरुप है न कि राज्य करका। सराश यह है कि करीय शक्ति वह शक्ति है जिसके द्वारा राष्ट्रीय कार्योंके लिए राज्य करद्वारा धन प्राप्त कर सके। और इसी प्रकार करीय शक्तिका प्रयोग वह प्रयोग है जिसके द्वारा भिन्न भिन्न कार्योंके करनेमें राज्य सहायता प्राप्त कर सके।

करीय शक्ति और उसके प्र[illegible] योगमें [illegible] ख्याल कर

(ख) करीय शक्तिके प्रयोगकी कौन कौनसी परिमितियाँ हैं ?

करीय शक्तिके प्रयोगकी पाँच परिमितियाँ

इस प्रश्नका उत्तर देते समय करीय शक्ति तथा करीय शक्तिके प्रयोगमें क्या भेद है इसको सदा ही सन्मुख रखना चाहिए। सम्पत्ति शास्त्रज्ञोंके विचारमें करीय शक्तिके प्रयोगकी निम्नलिखित ५ परिमितियाँ हैं ?

करीय शक्ति का कोई परिमित नहीं है

(१) करीय शक्तिका स्रोत नियामक सभा है। उसीमें राष्ट्रको प्रभुत्व शक्ति है अतः प्रभुत्व शक्तिके सदृश ही करीय शक्तिको स्वतः कोई भी परिमिति नहीं है। युद्ध तथा शान्तिके समयमें राज्यकी स्थिरताके लिए यह अत्यन्त आवश्यक भी है। इस दशामें करीय शक्तिके प्रयोगमें ही परिमितियाँ लगायी जा सकती हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि करीय शक्तिका प्रयोग कौन करता है? प्रान्तीय राज्य राष्ट्रीय राज्य तथा नागरिक राज्योंमेंसे किसके पास कितनी करीय शक्ति है? और वह उसको किस प्रकार काममें लाते हैं? इसपर विशेष ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि यह राज्य नहीं है। यह तो मुख्य राज्यकी एक शाखा है अतः इनको करीय शक्तिके प्रयोगमें बाधित करना ही चाहिए। किसको कितना बाधित किया जाय इसका भिन्न भिन्न सामाजिक परिस्थितियोंसे

परिस्थितियोंके अनुसार करका प्रयोग करना चाहिए

सम्बन्ध है अतः इसको यहाँ छोड़ देना ही उचित है।

राष्ट्रीय कार्यों के लिए ही करीय शक्तिका प्रयोग होना चाहिए

(२) करीय शक्तिके द्वारा राष्ट्रीय कार्योंके लिए ही धन प्राप्त करना चाहिए। कौनसा कार्य राष्ट्रीय है और कौनसा नहीं, यद्यपि इसका निर्णय एक मात्र नियामक सभाके हाथमें है तोभी विशेष विशेष स्थानोंपर न्यायालय अपना मत प्रगट कर सकते हैं। क्योंकि बहुत बार नियामक सभाओंको ख्याल नहीं रहता और वह गल्ती कर जाती है। ऐसी दशामें राजकीय यंत्रको उत्तमतापूर्वक चलनेके लिए न्यायालयका हाथ बटाना आवश्यक है। सारांश यह है कि साधारण जनोंके सम्मिलित या संगठित स्वार्थको सन्मुख रखकर ही करीय शक्तिका प्रयोग होना चाहिए। यदि किसी स्थानपर नियामक सभा अपना नियम भंग करती हो तो न्यायालय विभागका कर्त्तव्य है कि उसको वहाँ सहायता पहुँचावे।

न्यायालयका राष्ट्रीय कार्योंमें सहायक बनना

उपराज्योंको करीय शक्तिके प्रयोगका अधिकार

(३) करीय शक्तिके प्रयोगमें उपराज्योंकी शक्ति परिमित होनी चाहिए, इसपर लिखा जा चुका है। उपराज्योंके राष्ट्रीय निर्णय तथा राष्ट्रीय कार्य भी परिमित होने चाहिए और उनको उन कार्योंके लिए परिमित धन लेनेकी ही आज्ञा होनी चाहिए। यह इसी लिए कि सभी राष्ट्रीय कार्योंको आवश्यकतानुसार धन मिल सके।

नागरिकोंकी स्वतन्त्रता नष्ट न ॰

(४) इस हदतक करीय शक्तिका प्रयोग कभी नहीं किया जा सकता जिससे नागरिको की स्वतन्त्रता तथा अधिकार पददलित हो जाँय। राष्ट्रात्मक शासन पद्धतिवाले देशोंके लिए यह नियम अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि बहुधा एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रके नागरिकपर ऐसा कर लगा देता है जिससे उसकी स्वतन्त्रता नष्ट होजाती है। अत यह आवश्यक हे कि मुख्य राज्य राष्ट्रीय राज्योंको करीय शक्ति उसी हदतक द जिस हद तक वह दूसरे राष्ट्रके नागरिकोपर अत्याचार न कर सके।

पुराने प्रणपत्र या सव्यवहार पत्रोंकी शर्तें न तोड़ना आवश्यक

(५) पुराने प्रणपत्रो या सव्यवहारपत्रोकी शर्तोको कुचलने वाले राज्य कर अनुचित है। करीय शक्तिका प्रयोग वहाँतक ही ठीक है जहाँ तक वह उन शर्तोको न तोड *।

५-राज्य-कर देनेका कर्त्तव्य।

विदेशी राज्य को कर देना नागरिकों का कर्तव्य नहीं है

नागरिकोंका कर्त्तव्य है कि वह अपने राज्यको कर दें। 'अपने राज्यको' यह शब्द इसलिए कहा कि विदेशीय राज्यको करदेना नागरिकोंका कर्त्तव्य नहीं है। जो राज्य आजकल दूसरी जातिपर कर लगाकर अपनी जातिका खर्चा चलाते है वे अच्छे नहीं समझे आते। क्योंकि ऐसा करना महापाप

* महाशय हैनरी कार्टर आदम रचित दि साइन्स आफ फाइनान्स (१८९९) पृ० ३ ३ ३१०

है। इसी प्रकार किसी जातिकी करीय शक्ति तथा प्रभुत्व शक्तिको अपने हाथमें ले लेनेका किसी भी जातिको यत्न न करना चाहिए। जो राज्य कर दें, उन्हींके प्रतिनिधियोंके द्वारा राज्य करका नियन्त्रण होना चाहिए। आर्थिक स्वराज्यका भोग करना नागरिकोंका जन्मसिद्ध अधिकार है। इस अधिकारको छीननेका नाम ही अत्याचार है। क्योंकि किसी जातिके लिए इससे बढकर दासता और क्या हो सकती है कि उसको अपनी आयके खर्च करनेका भी अधिकार न प्राप्त हो।

रा य कर देने वालोंक प्रतिनिधियोंको हे राज्य करका प्रबध करन चाहिए

आायक स्वर ज्य छीनन अयाच र है

नागरिकोंका कर दान सम्बन्धी अधिकार उस समय कई एक झमेलोंको उत्पन्न करता है जब एक नागरिक अपने देशको छोडकर किसी दूसरे देशमें रहता हो। क्योंकि एक ओर जहाँ वह बिलकुल ही करसे मुक्त हो सकता है वहा दसरी ओर उसपर द्विगुण कर भी लग सकता है। इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए इसे दो भागोंमें विभक्त करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

पर श निव म तथा ा्य कर का मम न

द्विगुण करके मभावन

(क) नागरिकके विदेशमें रहनेके कारण कठिनता।

(ख) नागरिकके विदेशमें व्यापारीय तथा व्यावसायिक कार्योंके होनेके कारण कठिनता।

अब इनमेंसे एक एकपर पृथक् पृथक् तौरपर विचार किया जाता है।

(क) नागरिकके विदेशमें रहनेके कारण कठिनता—

यह कठिनता तीन प्रकारसे उत्पन्न होती है।

नागरिकका स्वराष्ट्रमें निवास तथा राज्य कर

(१) एक नागरिक अपने ही राष्ट्रमें रहते हुए व्यापार तथा व्यवसाय करता है और वहाँसे ही सम्पूर्ण आय प्राप्त करता है। इस दशामें विचारके अन्दर कुछ भी झमेला नहीं पड़ता। क्योंकि उसको अपने राष्ट्रको सम्पूर्ण पौरुषेय कर (परसनल टैक्स) तथा सम्पत्तिकर देना चाहिए। यदि वह अपने आपको झूठ बोलकर इन करोंसे बचा लेता है तो इसमें किसी भी कर प्रणालीका दोष नहीं कहा जा सकता।

परराष्ट्रमें निवास तथा राज्य कर

(२) कोई नागरिक यदि परराष्ट्रमें रहता हो तो उसपर सम्पत्ति कर वहाँ ही लगेगा जहाँ कि उसकी सम्पत्ति है। और उसपर पौरुषेय कर वहाँ ही लगेगा जहाँ वह स्वयं रहता है। यह सार्वभौम नियम नहीं है, इसके अपवाद भी हैं। यह होते हुए भी प्रायः यही नियम है कि जिस राष्ट्रमें उसकी भौमिक सम्पत्ति हो उसका कर उसी राष्ट्रको देना पड़ता है। इसी प्रकार जिस राष्ट्रमें किसी कम्पनी या व्यवसायके अन्दर उसका धन लगा हो उस धनपर राज्य-कर उसी राष्ट्रको देना पड़ता है।

(३) यदि कोई परराष्ट्रीय किसी राष्ट्रके राजकीय कार्योंसे लाभ उठावे तो उसे उसीको कर देना चाहिए जिससे कि उसको लाभ मिलता हो। दृष्टान्त तौरपर यदि किसी आँग्लका भारतमें मुकद्दमा हो तो उसको न्यायालयकी फीस तथा स्टाम्प आदिका कर भारतीय राज्यको ही देना चाहिए। इसी प्रकार यदि किसी आँग्लको किसी आँग्लकी भारतीय सम्पत्तिपर (मृत्युके कारण) स्वत्व मिले तो उसपर जायदादप्राप्ति कर न लगाना चाहिए। क्योंकि भारतमें ऐसा नहीं है।

जिस राज्यमें जो व्यक्ति लाभ उठाता है उसे उसी राष्ट्र का राज्य कर देना चाहिए।

(ख) नागरिकके विदेशमें व्यापारीय तथा व्यावसायिक कार्योंके होनेके कारण कठिनता—

आजकल व्यक्तियोंके व्यापारीय तथा व्यावसायिक सम्बन्ध दूर दूरतक फैले हुए हैं। व्यवसायों तथा बाजारोंके अन्तर्जातीय होनेके कारण ही यह घटना उत्पन्न हुई है। अमरीका राष्ट्रात्मक प्रतिनिधितन्त्र राज्य है। अतः एक ही कम्पनीकी रेल कई एक रियासतोंमे पार होती है। यदि अमरीकाका आर्थिक प्रबन्ध ठीक न हो और सम्पूर्ण रियासतोंके लिए कुछ एक विषयोंमें कर सम्बन्धी नियम एक सदृश न हों तो परिणाम इसका यह होगा कि कहीं तो ऐसी कम्पनियोंके कामोंपर बिलकुल ही कर न होगा और कहीं दूना कर लग जायगा।

[illegible] अन्तर्जातीय तथा अन्तर [illegible]

वीमाकम्पनी, बक तथा अन्य ऐसी समितियों के मामलेमें उपरिलिखित ही झमेले आकर पडते हैं। इस विषयपर हम 'समिति तथा कम्पनी कर' के प्रकरणमें ही प्रकाश डालेंगे। अत इसको हम यहाँ छोड देना उचित समझते हैं *।

६-राज्य-कर-मुक्त हानेका सिद्धान्त

गाज्य कर सब पर समान रूपस लगना च हिए

राज्य-करसे मुक्त हानेके कारण

आजकल राज्य करसे वैयक्तिक प्रतिष्ठाके करण कोई भी मुक्त नहीं किया जाता। राज्य करका सबपर समान तौरपर लगना अत्यन्त आवश्यक है। केवल निम्नलिखित तीन ही अवस्थाएँ है जिनमें कोई नागरिक राज्य करसे मुक्त किया जा सकता है।

राष्ट्रका अपने ऊपर राय कर न लगाना

रानकीय सेवकों पर राज्य कर

(१) राष्ट्र अपने ऊपर आय कर नहीं लगाता है। सम्पूर्ण राष्ट्रीय व्यवसाय तथा सम्पत्ति राज्य करसे मुक्त है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि राजकीय सेवकोंकी तनखाहोंपर भी आय कर न लगना चाहिए क्योंकि राजकीय सेवक अपने घरलू खर्चोंके लिए तनखाहें लेते है। उनकी तनखाहका राष्ट्रीय कार्यके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है अत उसपर राज्य-कर लगना आवश्यक ही है।

---

* आडमरचित फाइनास १८६८ पृ ३१२-३१६

जब कोई राष्ट्रीय व्यवसाय वैयक्तिक व्यवसाय-का मुकाबला करने लगता है उस समय कठिनता उपस्थित हो जाती है। क्योंकि राष्ट्रीय व्यवसाय राज्य करसे मुक्त होता है जब कि वैयक्तिक व्यवसायके साथ यह बात नहीं होती। ठीक परन्तु यहां पर यह न भूलना चाहिए कि आज-कल सभ्य देशोंमें प्रतिनिधित-त्र राज्य है। ऐसे राज्य अपने हितको पीछे देखत हैं और नागरिकों के हितको पहले देखते हे अत ऐसे देशोंके वेयक्तिक व्यवसायोका राष्ट्रीय व्यवसायोसे डरना फजूल हे। इसमें सन्देह भा नहीं हे कि भारतोयों को इस मामलेमे बहुत ही तकलीफ है। भारतीय राज्य आँग्ल जनताका उत्तरदायी है अत उसको भारतीय जनताके हितका बहुत कम ख्याल है। परिणाम इसका यह है कि दूसरी जातियोंके हितके लिए हमें दिनपर दिन व्यावसायिक कामोंको छोडकर कृषिमें जाना पड रहा है। हमारी दरिद्रताका भी एक मात्र यही कारण है।

राष्ट्राय व्यवसायोंका व्यक्तिक व्यवसायोंमे स्पर्धा

उत्तरदायी रा य प्रना हित को मामन र ख

भारताय ना थ म ।

अ ल र य तथा रता योंकी दरिद्रता

(२) शिक्षा धर्म तथा राष्ट्रीय कार्योंमें लगी भूमि तथा मकान आदिपर राज्य कर न लगना चाहिए। क्योंकि यह कार्य भी एक प्रकार से राष्ट्रीय कार्य ही है। सारांश यह है कि जिन जिन राष्ट्रीय कार्योंके करनेमें जनता राज्यको सहायता पहुँचाए उन उन कार्योंपर राज्य-कर न लगना चाहिए।

शिक्षा धम तथा राष्ट्रीय कार्योंमें लगी भूमि तथा मकानपर राज्य कर न लगना चाहिए

उपादक श
क्ति नथा र
य कर
भारतमें म लगु
जारीका भ नक

(३) राज्य को कर इस प्रकार लगाना चाहिए जिससे जनताकी भी उत्पादक शक्ति नष्ट न हो। भारतमें भूमिपर राज्यने इस हदतक लगान बढा दिया है कि भूमिकी उत्पादक शक्ति दिन पर दिन नष्ट होती जाती है और किसान दरिद्र होते जा रहे हं। १८३८ का ३½ प्रति शतक व्याव सायिक कर भी इसी प्रकारका है। इससे जनता की व्यावसायिक शक्ति नष्ट हो रही है और भारत वासी विदेशी कारखानोंसे मुकावला करनेमें अशक्त हो गये ह ।

* हनरी कार्टर आडम रचित दि माइन्स आफ फाइनाम (१-९८) १३१६ ३०। वी०न० कारेरचित इण्डियन इकानमी परिच्छेद । आर सी दत्त लिखित फमिम इन इण्डिया और इण्डिया अण्डर अर्ली ब्रिटिश रूल

द्वितीय परिच्छेद ।

राज्य-करके नियम

(The cannon of taxation)

१-समानता

सपत्ति शास्त्रम आदमस्मिथके राज्य कर सम्बन्धी चार नियम अति प्रसिद्ध है *। उनको पूर्ण तौरपर समझ लेनेपर शासकोंका राज्य कर सम्बन्धी सुधारोंके करनेमें बड़ी भारी सहायता पहुँच सकती है। उसके समानता सम्बन्धी नियममें बहुतस कर सम्बन्धी सिद्धान्तोंका बीज है। उन सिद्धान्ताको प्रकट करनेसे पूर्व उसका करना

आदमस्मिथके राज्य कर स वन्धी चार नियम

* राज्य कर नियमोंका पता लगाना अति आवश्यक है। ... यक न ... षयाक ... क क सगोठनमें बडी भारी सहायता पहुँच सकती है। सुल्ली ... का ... तथा ... प्रयत्न तौरपर रा... करने नियमोंका न देते हुए भी विचार करते समय उन नियमोंको अप्रत्यक्षरूपसे प्रगट किया। महाशय वाबन (Vaulo) ने ... (J...) तथा वरी (Verri) ने शुरु शुरुमें राज्य-करके नियमोंको प्रकट ... किया था। अनन्तर महाशय आदम स्मिथने राज्य करके नियमोंको पूर्णता दी। बहुतसे सपत्ति शास्त्रज्ञोंके विचारमें आदमस्मिथ ने राज्य करके नियमोंको मोरियो ... व्यूमा ... से और बहुत क विचारम ... ग्रन्थोंसे लिया है।

इंग्लिश इन्डस्ट्री एण्ड कामर्स ४३८। सी एफ बैस्टबल पब्लिक फाइनान्स " (१९१७) पृष्ठ ४११—४१२

आदमस्मिथका समानता स ग्बंधी राज्य कर के नियम

समानता सम्बन्धी नियम दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। आदमस्मिथका कथन है कि:—

"प्रत्येक राष्ट्रके जनसमाजको अपने राज्यकी सहायताके लिए अपनी अपनी सापेक्षिक योग्यताके अनुपातसे यथासंभव यथाशक्ति अवश्यमेव राज्य-कर देना चाहिए। अर्थात् उस आमदनीके अनुपातसे उनको राज्य कर देना चाहिए जो कि राष्ट्रीय संरक्षणके प्राप्त होनेसे उनको पृथक पृथक तौरपर प्राप्त होती है। राज्यको अपनी प्रजापर उसी प्रकार खर्चा करना पड़ता है जिस प्रकार कि एक तालुकेदारको अपने असामियोंपर। इस विचारक्रममें गड़बड़ पड़ते ही राज्य-कर की समानता या असमानता नष्ट हो जाती है। लगान भृत्ति तथा लाभमेंसे किसी एकपर लगा हुआ राज्य-कर अवश्य ही असमान होगा यदि वह अन्योंपर न पड़ेगा"। *

अप्रत्यक्ष करका असमान होना

इस उपरि लिखित सूत्रसे राज्य-करके बहुत से सिद्धान्त निकलते हैं जो इस प्रकार दिखाये जा सकते हैं।

(क)

समनता तथा राजकीय प्रभुत्व।

आदम स्मिथके उपरिलिखित समानता सूत्रमें 'प्रत्येक राष्ट्रके जन समाजको अवश्यमेव राज्य-कर

* आदमस्थिमका वैल्थ आव नेशन फिफ्त्सन रूम प्रिन्सिपल्स आव् पलिटिकल २ का नवी भाग २।

देना चाहिए' यह शब्द ध्यान योग्य है। क्योंकि इस से दो बातें प्रगट होती हैं। एक तो यह कि राज्य कर देना प्रजाका कर्त्तव्य है और यदि प्रजा अपना कर्त्तव्य पालन न करे तो दूसरे यह कि राज्य प्रजाको अपने कर्त्तव्य पालनके लिए बाधित कर सकता है और उससे बाधित तौरपर कर ले सकता है। राज्य अपने इस अधिकारका दुरुपयोग भी कर चुके हैं। उन्होंने केवल अपनी शक्ति को दिखानेके लिये ही कर लगाये जब कि उस करके प्राप्त करने का खर्च भी उस करसे न प्राप्त होता था। इग्लैण्ड ने अमेरिकन बसियोंपर इस प्रकारका अधिकार प्रगट किया था। परिणाम इसका यह हुआ कि १८१२से १८२७वि० तक दोनों देशोंमें भयकर लड़ाई हुई और अमेरिका स्वतन्त्र हो गया। आजकल सभी सभ्य देशोंकी प्रजाओंने राज्य कर लगाने का अधिकार राज्यसे छीनकर अपने हाथमें कर लिया है। उपरिलिखित शब्दोंपर ध्यान देनेसे पता लगेगा कि उसमें इस बातका कहींपर इशारा नहीं है कि राज्य करकी मात्रा कौन निश्चित करे। इसमें सन्देह भी नहीं है कि 'यथा सभव यथा शक्ति अवश्यमेव कर देना चाहिये' इसमें यथा शक्ति तथा यथा सभव शब्द' यह सूचित करते हैं कि करकी मात्राको नियत करना प्रजाके ही हाथमें होना चाहिए। वह जितनी करकी मात्रा देनेमें अपनी शक्ति समझे उतना ही कर

र ज्य कर दना का कर य है।

र य कर देनेमें प्र बाधित है

यथा स० व० यथाशक्ति अव श्यमेव कर देना चाहिए

दे। अर्थात् जनताको आर्थिक स्वराज्य प्राप्त होना चाहिए। यूरपमें इंग्लैण्ड फ्रान्स जर्मनी स्विटजरलैण्ड आदि सभी देशोंको आर्थिक स्वराज्य प्राप्त है। ऐसी दशामें भारतको भी आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिए।

आर्थिक स्वराज्य तथा राज्य कर

आर्थिक स्वराज्य मिलते ही संपूर्ण राज्य-कर न्याययुक्त हो जाते हैं यह कहना कठिन है। इंग्लैण्डको आर्थिक स्वराज्य मिले बहुत समय हो गया तौ भो अभीतक वहां राज्य-कर पूर्ण न्यायपर आश्रित नहीं है। यह क्यों? यह इसी लिए कि इग्लैण्डकी प्रतिनिधि सभामें भिन्न भिन्न स्थानोंके विचारसे प्रतिनिधि आते हैं न कि पुरुषोंके विचारसे। आयर्लैण्डके उतने प्रतिनिधि नहीं हैं जितने होने चाहिए। जो देश राजधानीसे जितने अधिक दूर हों उनके उतने ही अधिक प्रतिनिधि होने चाहिए। इस प्रकार भारतको आंग्ल प्रतिनिधि सभामें सबसे अधिक प्रतिनिधि भेजने चाहिए। परन्तु भारत को अभीतक यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है। प्रतिनिधिद्वारा राज्य-कर नियन्त्रणके सदृश ही एक और बात है जिससे राज्य की प्रभुत्वशक्तिको कम किया गया है। मकुलक Mocullock) की सम्मति है कि राज्य या प्रतिनिधिसभाको वेही कर लेने चाहिए जो सुगमतासे लगाये और एकत्रित किये जा सकें। यह एक ऐसा स्वाभाविक नियम है जिससे प्रायः सभी सहमत

आर्थिक स्वराज्य होते हुए भी राज्य कर अन्याय युक्त

हैं। इसी प्रकार सभी विचारक यह मानते हैं कि राज्यको वे ही कर लगाने चाहिए जिससे प्रजाको अधिकसे अधिक लाभ पहुँचे। भारतमें यह बात भी नहीं है। दूसरे देशोंके हितको ध्यानमें रखकरके भारतीय राज्य भारतीयोंपर कर लगता है। विक्रमीय १६३६ में ३½ प्रति शतक व्यवसायिक कर जो भारतीय कारखानोंपर लगाया गया था उसका मुख्य कारण यही था कि वह आंग्ल व्यवसायोंका मुकाबला न कर सके। इसी प्रकार की घटनाएँ यह सूचित करती हैं कि भारत को आर्थिक स्वराज्य की कितनी ज़रूरत है। आदमस्मिथके उपरिलिखित सूत्रके 'यथाशक्ति' शब्दपर बड़ा भारी विवाद है। जातीय विचारसे जिस प्रकार उससे आर्थिक स्वराज्य निकलता है उसी प्रकार वैयक्तिक विचारसे उससे यह निकलता है कि अपनी अपनी आयके अनुसार व्यक्तियोंको राज्य-कर देना चाहिए। यह कहांतक स्वीकरणीय है अब इसपर प्रकाश डाला जावेगा।*

व्यावसायिक कर

आदमस्मिथके यथाशक्ति शब्द विवाद

(ख)

समानता तथा स्वार्थ त्याग सिद्धान्त

करकी समानता सूत्रमें 'यथाशक्ति' शब्द ध्यान देने योग्य हैं। यथा-शक्ति शब्दका क्या तात्पर्य है? क्या इसका यह अर्थ है कि करदको जो मानसिक

यथाशक्ति शब्दके अर्थ

* निकल्सन रचित "प्रिन्सिपल्स आफ पोलिटिकल इकानमी भाग ३, (१६०८) पृष्ठ २६७—२६८।

क्या मानसिक कष्ट सम्पत्ति तथा आयशक्तिके मापक हैं

कष्ट होता है उसके विचारसे अथवा करदकी संपत्ति तथा आय प्राप्त करनेकी शक्तिके विचारसेकर लेना चाहिये ? इस प्रकार शक्ति शब्दके अन्तरीय तथा वाह्य अर्थमें कौनसा अर्थ ठीक है। प्रथम अर्थके अनुसार स्वार्थ त्याग सिद्धान्त और द्वितीय अर्थके अनुसार शक्ति सिद्धान्त Faculty theory) निकलता है। इस प्रकरणमें स्वार्थत्याग सिद्धान्त पर ही प्रकाश डाला जायगा।

स्वार्थत्याग सिद्धान्त एवं शक्तिसिद्धान्त

(I) शक्ति शब्द का अन्तरीय अर्थ।

शक्ति शब्दका व्याख्या

यथा शक्ति शब्दका अन्तरीय अर्थ लेते हुए महाशय मिल कहते हैं कि 'राजनीतिका मुख्य आधार जब हम करकी समानता रखते है तो उसका यह मतलब होता है कि राज्य खर्चोंको संभालनेके लिए प्रजापर इस मात्रामें मे कर लगाये जिसके देनेमें प्रत्येक व्यक्तिका समान कष्ट हो" परन्तु मिल महाशयका यह अर्थ हमको स्वीकृत नहीं है। क्योंकि ऐसा कोई भी कर नहीं हो सकता जिसके विषयमें यह कहा जा सके कि उससे संपूर्ण व्यक्तियोंको एक सदृश कष्ट होता है। कष्टको कैसे मापा जाय ? क्या प्रत्येक व्यक्तिपर सम्मन कर लगानेसे सबको समान कष्ट होगा ? क्या दरिद्र तथा धनाढ्य समान कर राशिसे एक सदृश कष्ट उठावेंगे ? यदि एक लक्षपतिपर दस रुपया कर लगा दिया

महाशय मिल

जाय और इसी प्रकार यदि एक दस रुपये महीने की आमदनीवाले मजदूरपर भी दस रुपया कर लगा दिया जाय तो क्या दोनोंको समान कष्ट पहुँचेगा? कभी नहीं। क्योंकि जहां प्रथमका अत्यन्त कम उपयोगी धन राज्य करमें जायगा वहां दूसरेका जीवनोपयोगी धन राज्य करमें जायगा। इस दशामें दोनोंका कष्ट समान कैसे हो सकता है? सारांश यह है कि समान कर राशि तभी किसी हद्दतक समान कष्ट उत्पन्न कर सकती है जब कि सबके पास धन समान हो। किसी हद्दतक शब्द यहां इसी लिए कहा है कि व्यक्तियों में सुख दुःखके अनुभव करनेकी मात्रा भिन्न भिन्न होती है। एक ही सदृश धन होते हुए और एक हो सदृश धन करमें देते हुए प्रत्येक व्यक्तिमें सुख दुखकी मात्रा भिन्न भिन्न होती है। कृपणको अधिक कष्ट और उदारको बहुत ही कम कष्ट होता है।*

समान कर तथ समान धन

(क) आवश्यक आयका परित्याग।

इन संपूर्ण बातोंका विचार कर बहुतसे विचारकोंने यह कहा है कि जीवनोपयोगी आवश्यकता मात्र जिस आयसे पूर्ण होती हो उस आय-पर राज्य-कर न लगना चाहिए। प्रश्न तो यह है

जीवनोपयोगी आयको छोड़ कर कर लगना चाहिए

*Nicholson Principles of Political Economy Vol III (1908) PP. 269-270.

कि यह कैसे जाना जाय कि कितनी आय जीवनोपयोगी है और कितनी आय जीवनपयोगी नहीं है ? महाशय आदम स्मिथकी सम्मतिमें उन्नतिशील जन समाजमें यह प्रायः होता है कि अनावश्यक आय समयान्तरमें जीवनोपयोगी आवश्यकताका का रूपधारण करलेती है। महाशय पैन्टलियानी तो इस हदतक पहुँच गये कि उन्होंने यह कह दिया कि जीवनपयोगी तथा अनावश्यक आयमें किसी तरीकेसे भी भेद नहीं किया जासकता है। एक व्यक्ति जिन वस्तुओंका भोग विलासकी समझता है वही वस्तुएं दूसरोंके लिए अत्यन्त आवश्यक हो सकती हैं। यही नहीं। आवश्यकीय बातें घटती बढ़ती रहती हैं। संपत्तिके बढ़नेपर सैकड़ों आवश्यकतायें बढ़ जाती हैं और लोग उनको छोड़ नहीं सकते क्योंकि उनका सम्बन्ध उस सपत्ति तथा उस हैसियतके साथ होता है। यही कारण है कि अनेकों बार आयकरके कारण लोगोंको तकलीफ उठानी पड़ती है और उनको अपनी ज़रूरी आवश्यकताओंको भी घटाना पड़ता है। *

पैन्टलियानी का मत

यह सब होते हुए भी प्रायः आयकर सभी राज्य लेते हैं। भारतमें २००० की और इंग्लैण्डमें

भारत तथा इंग्लैण्डमें आय करकी सीमा

* Nicholson; Principles of Political Economy Vol III (1908) PP. 270-271.

२३८५ रुपयेकी वार्षिक आय को छोड़ कर आय कर लगते हैं। इससे कम आय वालोंको आय कर नहीं देना पड़ता है।

(ख) क्रम वृद्ध कर।

स्वार्थ त्याग सिद्धान्त तथा क्रम वृद्ध कर

कई एक संपत्तिशास्त्रज्ञ स्वार्थ त्याग सिद्धान्त द्वारा क्रम वृद्धकरको पुष्ट करते हैं। सीमान्तिक उपयोगता सिद्धान्त द्वारा यह स्पष्ट है कि जितना रुपया किसीके पास बढ़ता है उसके लिये रुपये की उतनी ही उपयोगिता घट जाती है। इससे स्पष्ट है कि राज्य कष्ट की समानताके लिये धनाढ्य पुरुषसे अधिक धन और दरिद्र पुरुषसे बहुत ही कम धन करके तौरपर लेवे। इस विचारसे हम सहमत नहीं हैं। क्योंकि उपयोगिता सिद्धान्त द्वारा व्यक्तियोंके कष्टोंको कभी भी मापा नहीं जा सकता। बड़ेसे बड़े धनाढ्य पुरुषोंका ऐसा स्वभाव होसकता है कि कर देनेसे उनको बहुत ही अधिक कष्ट पहुँच जावे और वह अपनी स्वतन्त्रताका क्रमवृद्ध करको घातक समझ लेवें। और यह भी हो सकता है कि साधारण आयवाला भी विशेष विचारोंसे प्रेरित होकर करकी अधिक राशि देते हुए भी बहुत ही प्रसन्न रहे। सारांश यह है कि बाह्य मापकोंद्वारा मनुष्यके अन्तरीय गुण तथा सुख दुःखको मापना सर्वथा भूल करना होगा। निस्सन्देह क्रियात्मिक जगत्में क्रम वृद्धकरके

सीमान्तिक उपयोगिता सिद्धान्त की असफलता

क्रम वृद्ध करका क्रियात्मिक जगतमें महत्व

बिना काम भी नहीं चल सकता। यदि बहुतसे राज्य करोंमें बहुत ही असमानता हो तो उसको दूर करना चाहिये और समानता लानेका यत्न करना चाहिये। फरांसीसी अक्रान्तिका मुख्य कारण एक यह भी था। एक ताल्लुकेदारके मरने पर उसकी सपत्तिको ग्रहण करने वालोंका स्वार्थ त्यागकी समानताके आधार पर ही क्रम वृद्ध कर देना पडता है। वास्तविक बात तो यह है कि विचारकोंका यह सिद्धान्त कितना ही अपूर्ण क्यों न हो, प्रत्येक राज्यको कर लगाने समय इस सिद्धान्तका सहारा लना ही पडता है। *

(ग) स्वार्थत्याग तथा आयके साधन।

स्थिर सपति पर राज्य करका अधिक होना

क्रम वृद्धकरके सदृश ही स्वार्थत्याग सिद्धान्त को अन्य स्थानमें भी लगाया जाता है। आजकल राज्यकर लगानेसे पूर्व आयके साधनोंको सब स पहिले देख लेते है। यदि आयके साधन भूमि मकानके सदृश स्थिर हों तो कर अधिक लगाया जाता है और जब कि आयके साधन डाकृरी वकीली आदिके सदृश अस्थिर हों तो करकी मात्रा कम रखी जाती है, यह क्यों? यह इसीलिये कि वकील आदिको अपने परिवारके बीमा कराई आदिका अधिक खर्च उठाना पडता है। स्थिर

---

* निकल्सन रचित प्रिन्सिपल्स आफ पोलिटिकल इकानमी भाग ३ (१९०८) पृष्ठ २७१ २७२

आयके साधन वालोंको यह बात नहीं करनी पड़ती है। इग्लेण्डमें वीमेके धनपर कर नहीं लिया जाता है। इसका कारण यही है कि राज्य जनतामें इस कार्यकी ओर प्रवृत्ति बढ़ाना चाहता है। *

II शक्ति शब्दका बाह्य अर्थ।

शक्ति सिद्धान्त

यदि शक्ति शब्दका अर्थ बाह्य अर्थोंमें लिया जाय और संपत्ति तथा आय आदिको ही शक्ति समझा जाय तो इससे शक्तिसिद्धान्त निकलता है। यह सिद्धान्त बहुत ही पुराना है। अति प्राचीन कालमें शक्तिसे तात्पर्य भौमिक संपत्ति तथा दास आदिसे होता था परन्तु मध्यकालमें यह बात न रही। इंग्लैण्डमें एलीजबेथके अनन्तर इसका अर्थ आयसे लिया जाने लगा। यदि इस सिद्धान्त का स्वार्थत्याग सिद्धान्तसे मुकाबला करें तो प्रतीत होगा कि यह सिद्धान्त उससे बहुत ही उत्तम है। उसमें जहां कोई शक्तिका मापक न था वहां इसमें शक्तिका मापक है। इस सिद्धान्तके अनुसार राज्य धनाढ्योंसे राज्यकर इस लिये अधिक नहीं लेता है कि उनको देते हुए थोड़ा कष्ट होता है परञ्च इस कारण कि वह अधिक दे

शक्ति सिद्धान्त की स्वार्थत्याग सिद्धान्तसे तुलना

---

* Nicholson, Principles of Political Economy Vol III (1908) PP. 273 274

सकते हैं। त्याग सिद्धान्त की अपेक्षा सरल होते हुए भी इस सिद्धान्तमें बहुतसे झमेले हैं जिनको भुलाया नहीं जा सकता है। दृष्टान्त तौरपर शक्तिका अर्थ आय लेते हुए भी निम्नलिखित समस्याओंका हल करना बहुत ही कठिन है।

शक्ति सिद्धान्त की उलझन

क्या अपनी अपनी आयके अनुपातसे कर देनेकी शक्ति प्रत्येक मनुष्य में है? दो पुरुषोंमेंसे यदि एकको आय ५०० रुपये और दूसरेकी आय १००० रुपये हो। दोनोका ही यदि ४०० रुपये खर्च हो तो इस हालत में पहिले के पास जहां १०० बचते हैं वहां दूसरेके पास ६०० रुपये बचते हैं। ऐसी दशामें यदि राज्य आयके अनुपातसे पहिलेपर ५० रु० और दूसरेपर १०० कर लगा दें तो क्या यह कर शक्तिके अनुपातसे लगा हुआ कहा जा सकता है? कभी भी नहीं। क्योंकि अधिक आय वालोंकी अपेक्षा न्यून आय वालोंको स्वआयका अधिक भाग खर्च करना पड़ता है। यही कारण है कि आयके अनुपातसे कर लगाना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। यही नहीं।

शक्ति समान होते हुए भी राज्य कर का असमान होना

कल्पना करो कि दो पुरुष आयरूपी शक्तिमें समान है। पहिलेको अपनी आयके प्राप्त करनेमें अधिक श्रम करना पड़ता है जब कि दूसरेको अपनी आयके प्राप्त करनेमें कुछ भी श्रम नहीं करना करना पड़ता है। ऐसी दशामें शक्तिके समान होते हुए भी राज्य करमें समानता नहीं रही। क्योंकि इसका परि-

णाम यह होगा कि लोगोमें श्रम करने की ओर रुचि कम हो जावेगी। *

(क) आवश्यक आय तथा शक्ति सिद्धान्त

उपरिलिखित दूषणको हटानेके लिये बहुतसे संपत्ति शास्त्रज्ञ आवश्यक आयको छोड़कर शेष आयपर राज्यकर लगाना उचित ठहराते हैं। इसका एक आर्थिक कारण भी है। राज्य कर देनेसे यदि श्रमियों भूमियोंकी आवश्यक आय कम होजावे तो थोड़े समयमें ही श्रमियोंकी संख्या कम हो जावेगी और उनकी भृति बढ़ जावेगी और व्यवसाय-पतियोंको श्रमियोंको भृतिके तौरपर अधिक धन देना पड़ेगा। परिणाम यह होवेगा कि व्यवसाय पतियोंके लाभ कम होनेसे देशकी उत्पादक शक्तिको बड़ा भारी धक्का पहुँचेगा। यदि दैवी धारणासे श्रमियोंकी संख्या आवश्यक आयके (करके कारण) कम होते हुए भी पूर्ववत बनी रहे और उनकी भृति भी न बढ़े तो उनकी कार्य क्षमता कम होजावेगी और इस प्रकारभी देशकी उत्पादक शक्ति कम होजावेगी और देश दरिद्रताके भयंकर पंकमें जा फसेगा। दरिद्र नियमोंके अनुसार राज्यको सहायताके तौरपर दरिद्र श्रमियोंको धन देना पड़ेगा। इस प्रकार राज्य एक हाथसे

आवश्यक आय क छोड़नेमें आर्थिक कारण

* Nicholson; Principles of Politicol Economy Vol III (1808) P P 225-276

करके तौरपर धन लेगा और दूसरे हाथसे सहायताके तौरपर दरिद्र श्रमियोंको धन बांटेगा। इसलिये सब परिणामोंसे यही निकलता है कि आवश्यक आयपर राज्य-कर न लगना चाहिये।

शक्तिका अर्थ यदि पूंजी हो तो भी उलझन नहीं सुलझती

यदि शक्तिका अर्थ आय न रखकर पूंजी रखा जावे तो भी पूंजीपर राज्य-करका लगाना उचित कभी भी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इससे लोगोंमें धन बचाने की आदत कम होजावेगी। योरूपीय देशोंमें लोग पहिलेही बहुतही अधिक फजूलखर्च है। वहां पूञ्जीपर राज्य कर लगनेसे बहुत ही अधिक नुकसान पहुँचा सकता है। सारांश यह है कि आय या पूञ्जीके अनुपातसे कर लगाना अत्यन्त हानिकर तथा अन्याय युक्त है। यदि आयपर कर लगाये बिना किसी राज्यका काम न चलता हो तो भी आवश्यक आयको छोड़कर ही राज्यकर लगाना चाहिये। *

(ख) क्रमवृद्ध कर

शक्ति सिद्धान्त से क्रम वृद्ध करका विकास

शक्तिसिद्धान्तकेद्वारा क्रमवृद्धकरका पोषण इस आधारपर किया जाता है कि व्यावसायिक उत्पत्तिमें क्रमागत वृद्धि-नियम लगता है। जो धनाढ्य हैं वे अधिक२ धनाढ्य होते जाते हैं। क्योंकि न्यून व्ययपर ही पदार्थ अधिक उत्पन्न होजाते हैं। अतः धनाढ्य व्यवसाय पतियोंपर क्रमवृद्धकर लगना चाहिये।

* Nicholson, Principles of Political Econamy vol II (1808) P. P 276 277

क्रमवृद्धकरके लगानेके कुछ लोग बहुतही पक्षमें हैं और कुछ लोग बहुत ही विपक्षमें हैं। प्रथम दल जहां यह कहना है कि धनाढ्योंपर राज्यकर तबतक न्याय युक्त होही नही सकता है जब तक वह क्रमवृद्धकर न हो वहां दूसरा दल इसको अत्याचार तथा लूट मार समझता है। मोलनने एथंजमें १८५०, तथा, १६०५ की आक्रान्तिके समय फ्रान्समें क्रमवृद्धकरका ही धनाढ्योंपर प्रयोग किया गया था। ज्यों ज्यों श्रमियों तथा दरिद्रोंकी राज्यमें शक्ति बढ़ती जायगी त्यों त्यों क्रमवृद्धकरका अधिक प्रयोग किया जायगा। समष्टिवादी इस करके अनन्य भक्त हैं। अस्तु जो कुछ भी हो। यह पूर्वमें ही लिखा जा चुका है कि लोगोंमे समष्टि भावकी प्रवृत्तिका मूल कारण धर्म तथा न्याय नहीं है। किस प्रकार उनमें ईर्ष्या द्वेषके भाव भरे हुए हैं यह किसीसे भी छिपा नहीं है। ऐसी दशामें क्रम वृद्धकरका प्रयोग न्यायशून्य तथा राष्ट्र नाशक होजाय तो आश्चर्य करना वृथा है। इसपर चार प्रसिद्ध आक्षेप हैं जिनको भुलाना न चाहिये।

क्रम वृद्ध कर की मात्राकी अस्थिरता

(१) क्रमवृद्ध करमें करकी मात्रा मन घड़न्त होगी। यदि समाज न्यायको आधार बनाकर और न्यायके विचारसे क्रमवृद्धकरका प्रयोग करेगा तो इससे उतनी भयंकर हानियाँ उत्पन्न न होंगी जिन हानियोंकी आशा की जाती है। इसमें

सन्देह भी नहीं है कि यदि समाजके कुछ लोग ईर्ष्या तथा द्वेषसे प्ररित होकर क्रमवृद्ध करका प्रयोग करेंगे तो इससे राष्ट्र नाशकी, भी बडी भारी सभावना है।

क्रम वृद्ध करस लोगों का अपना अ रक्षा बचाना

(ख) क्रमवृद्धकरसे बचनेके लिये लोग जो जो उपाय करेंगे उनको भी न भुलाना चाहिये। बहुत संभव है कि इसके एकत्रित करनेमें राज्यको अन्यत्र कठिनाइयाँ झेलनी पड़ें। इससे लोगोंका जो आचार गिरेगा उसको भी न भूलाना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं है कि ऐसी घटनायें शुरू शुरूमें ही उपस्थित होंगी। जब जातिको क्रमवृद्धकर सहन करनेकी आदत पड़ जायगी तब उन उन घटनाओं की संख्या बहुतही कम होजायगी। इंग्लैण्डमें उत्तराधिकारका कर क्रमवृद्ध है इसके विरोधी यह कहते हैं कि धनाढ्य लोग क्रमवृद्धकरसे बचनेके उद्देशसे अपने जीवन कालमें हीं अपना धन दे जाया करेंगे। हमारी सम्मतिमें यह कोई बुरा बात नहीं है क्योंकि अपने जीते जी जो वह अपना धन किसीको देंगे तो वह जातीय संस्थाओं को ही देंगे। इससे बढ़कर और उत्तम बात क्या हो सकती है?

क्रम वृद्ध कर तथा पूंजी का विदेश में जाना

(ग) क्रमवृद्धकरपर वह आक्षेप सत्य है कि जिन देशोंमें क्रमवृद्धकर लगेगा वहाँसे पूञ्जीपति भाग जावेंगे और उन देशोंमें जा बसेंगे जहां ऐसे करका प्रयोग न होगा। इसमें सन्देह भी

नहीं है कि यह दोष सभी करोंके साथ है। उन्नतिशील जन समाजमें यह दोष प्रत्यक्ष नहीं होता। यदि राज्यकर लगानेमें सावधानी करें और कर की राशि उस सीमातक न बढ़ावें जो किसीको भी भारू होसके।

क्रमवृद्धकर तथा आयका घटना

(घ) कईयोंके विचारमें क्रमवृद्धकरका प्रभाव आयको घटाना है। यदि किसी देशमें सचमुच ऐसा होवे तो वहाँ ऐसा कर न लगाना चाहिये। यह क्यों? यह इसीलिये कि जातीय उन्नतिको सामने रख करके ही संपूर्ण प्रकारके करोंको लगाना चाहिये। जो कर जातिकी उन्नति तथा उत्पादक शक्तिको बढ़नेसे रोके उन करोंका न लगाना ही उचित है। क्योंकि राज्य जातिकी उन्नति तथा उत्पादक शक्ति को बढ़ानेके लिये ही कर लेता है। यदि करका प्रभाव उलटा हो तो ऐसे करसे लाभ ही क्या है?*

(ग) शक्ति सिद्धान्त तथा श्राय साधन

किस तरहकी आय पर राज्यकर लगे

ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि राज्य कर आय पर लगाना चाहिये या पूञ्जी पर? उसको समानुपाती होना चाहिये या क्रमवृद्ध? अब केवल यही दिखाना है कि यदि आय पर कर लगाना हो तो किस प्रकारकी आय पर कर लगाना

* Nicholson Principles & Political Econ ony Vol III (1908) P P 279-279.

+ Ibid ,, P. P. 272-281

चाहिये। बहुत सी आय अनर्जित होती है। भूमि-गृह व्यवसाय कृषिमें जो आर्थिक लगान है उसको दिखाया जा चुका है। इस पर लगा हुआ कर कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचा सकता है। क्योंकि इससे किसीके भी श्रमका बदला नहीं छीना जाता है। इसी प्रकार एकाधिकारसे उत्पन्न अर्ध लगानों पर राज्य कर लगाना चाहिये। इससे जातिको लाभ ही लाभ है। *

(ग)

समानता तथा लाभ सिद्धान्त

(The benefit or social dividend theory of taxation)

आदम स्मिथने अपने प्रथम सूत्रमें कहा है कि 'उस आमदनीके अनुपातसे जन समाजको राज्य कर देना चाहिए जो राष्ट्रीय संरक्षण द्वारा उसको पृथक् पृथक् तौरपर प्राप्त होती है। उसके इन शब्दोंसे राज्यकरका लाभ सिद्धान्त निकाला जा सकता है। लाभ सिद्धान्तके अनुसार जन समाजको राज्यकी सहायताके लिए उन उन लाभोंके अनुपातसे राज्यकर देना चाहिए जो लाभ उसको राज्य संरक्षणसे प्राप्त होते हैं। राज्य की ओरसे प्रत्येक व्यक्तिके लिए जो लाभदायक व्यापार की जाती हैं उनके बदलेमें कर देना

* निकल्सन रचित-'प्रिन्सिपल्स आफपोलिटिकल इकानमी' भाग ३ (१९०८) पृष्ठ २७६+२७९।

चाहिए। महाशय वाकर इसका संक्षिप्त रूप यह देते हैं कि राजकीय रक्षाके अनुपातसे राज्यकर देना चाहिए। यह सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है। क्योंकि राज्यकी रक्षासे अधिकतम लाभ उठानेवाले निर्धनी तथा दुर्बल लोग होते हैं। स्त्रियों, बालकों, वृद्धों, दीन दुखियोंको ही राज्य संरक्षणकी विशेष आवश्यकता होती है। इस सिद्धान्तके अनुसार तो यह परिणाम निकलता है कि धनिक लोगोंको राज्यकर न देना चाहिए। क्योंकि धनिक लोगोंको राज्य संरक्षणकी बहुत आवश्यकता नहीं होती। वे लोग अपनी रक्षाके लिए नौकर आदि रख सकते हैं। इसी विचारसे प्रेरित होकर महाशय निकल्सनने लाभ सिद्धान्तको यह नवीन रूप दिया है, 'व्यक्तिगत कार्य्योंमें राज्य हिस्सेदार है क्योंकि वह संरक्षणका काम करते हुए व्यक्तियोंके लिए अन्य लाभदायक काम करता है। इसीलिए राज्यको अपने उपकारों तथा लाभदायक कार्योंके बदलेमें व्यक्तियोंसे कर लेना चाहिए। आजकल इस सिद्धान्तके द्वारा एकाकी करको पुष्ट किया जाता है। कहाँतक यह सिद्धान्त एकाकी करको पुष्ट कर सकता है। इसपर हम आगे चलकर विस्तृत रूपसे विचार करेंगे। अतः हम इस प्रकरणको यहाँपर ही छोड़ देते हैं।*

महाशय वाकरका लाभ सिद्धान्त

महाशय निकल्सनका लाभ सिद्धान्त

लाभ सिद्धान्त तथा एकाकी कर

* निकल्सन—प्रिन्सिपल्स आफ पालिटिकल इकानोमी भाग ३ (१९०८) पृष्ठ २८१—२८२।

२—स्थिरता

आदम स्मिथके शेष तीन सूत्र केवल इसी बातको प्रकट करते हैं कि राज्यकरोंमें समानता तथा उत्पादकता लानेकी उत्तमसे उत्तम विधि क्या है ? यह सूत्र इतने स्पष्ट हैं कि इनकी व्याख्या करनेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। इसमें सन्देह भी नहीं कि इन सूत्रोंपर चलना बहुत ही कठिन है। उसकी स्थिरता सम्बन्धी द्वितीय सूत्र इस प्रकार है।

स्मिथका स्थिरता सूत्र

"प्रत्येक व्यक्तिको तथा कर देनेवाले पुरुषको राज्यकर देनेका समय, राज्यकर देनेकी विधि और राज्यकरकी राशि पूर्ण तौरपर तथा स्पष्ट तौरपर पता होना चाहिए।"

इस सूत्रका तात्पर्य यह है कि राज्यकर सब पर प्रत्यक्ष हो और उसकी मात्रा नियत हो। इसीसे दूसरा परिणाम यह निकलता है कि राज्योंको अत्याचार तथा छिपे छिपे व्यक्तियोंसे रुपया न लेना चाहिए। उपहारके तौरपर भी रुपया लेना राज्योंके लिए उचित नहीं है। राज्यकर यदि अस्थिर तथा अनियत हो तो उससे देशको बहुत ही अधिक आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

३—सुगमता

स्मिथका सुगमता सूत्र

करकी सुगमताका तृतीय सूत्र यह है कि:—

"राज्यको कर देनेवाले पुरुषोंकी सुगमताको

देख करके ही राज्य कर ऐसे समयमें तथा ऐसे तरीकेसे लगाना चाहिए जिससे किसी भी करद-को असुविधा न हो।"

इस सूत्रका महत्त्व इसीसे समझना चाहिए कि सुगमताका तत्त्व राज्यकी उत्पादकता तथा उत्तमताको प्रकट करता है। पदार्थोंपर राज्यकर लगाया जा सकता है परन्तु उनपर अधिकतर इसीलिए नहीं लगाया जाता है कि उस करका एकत्रित करना बहुत कठिन हो जाता है।

४—मितव्ययता

मितव्ययता मितव्ययता सूत्र

मितव्ययताका सूत्र इस प्रकार है।

"प्रत्येक राज्यकर इस प्रकारसे और इस राशिमें लेना चाहिए कि उसका जो भाग राज्य-कोषमें आवे वह अधिकतम होवे। अर्थात् इसके एकत्रित करनेमें जहाँतक सम्भव हो न्यूनतम धन लगे।"

यदि कर एकत्रित करनेवाले बहुत अधिक राज्य कर्मचारी होवें तो मितव्ययता सूत्रका भङ्ग होना आवश्यक ही है। व्यापार, उत्पत्ति आदिको रोकनेवाले अत्याचारपूर्ण राज्यकरोंमें भी यही घटना प्रायः उपस्थित होती है।

राज्य करके गौण सूत्र

इन ऊपर लिखित चार सूत्रोंके सदृश ही कुछ एक कर विधिके और भी सूत्र हैं जिनका प्रायः प्रयोग होता है और जो कि इस प्रकार हैं।

राज्य कर बोझ

(क) अति उत्पादक करोंके द्वारा राज्यको

आयमें स्थिर धनकी राशि अति सुगमतासे प्राप्त हो सकती है। यदि छोटे छोटे कर बहुत स्थानों पर लगे हुए हों तो करके एकत्रित करनेमे बहुत ही कठिनता होती है।

(ख) राज्यकरकी सबसे उत्तम विधि वही है जो जनसंख्या तथा उन्नतिके साथ साथ राज्य करोंको लचकदार बना देवे। देशके उन्नतिके साथ राज्य कर स्वय ही अधिक हो जावे और देशकी अवनतिके साथ राज्यकर स्वय ही कम हो जावे। आयकरमें यही विशेष गुण है।

(ग) आवश्यकताके अनुसार जिन करोंको शीघ्र ही बिना किसी प्रकारके विशेष व्यय तथा प्रबन्धके सुगमतासे ही बढाया जा सके वह कर अति उत्तम है।

(घ) उन्नतिशील जनसमाजमें कर लगानेके पुराने स्थानोंको छोड देना चाहिए और नये नये स्थानोंपर कर लगाना चाहिए।

(ङ) यदि किसी स्थानपर कर लगानेसे लाभ होनेका सन्देह हो और करके ऊपर लिखित सूत्रों की टकर पडे तो वहाँ परस्थितिको देख करके तथा विचार करके ही काम करना चाहिए। करके गौण सूत्रोंका ध्यान छोडकर मुख्य सूत्रोंका ही विचार करना चाहिए। समानता तथा स्थिरता सूत्रका यदि कहीं विरोध हो तो स्थिरता सूत्रको मुख्यता देना चाहिए। इस प्रकार यदि

जातिकी उत्पादक शक्ति किसी राज्यकरसे बढ़ती हो और राज्य प्रबन्धके उत्तम होनेकी सम्भावना होतो राज्य कर एकत्रित करनेमें *असुगमता होते हुए भी राज्यकर लगा देना चाहिए। उत्पादकोंके सम्मुख सुगमताका परित्याग कर देना ही उचित है। वास्तविक बात तो यह है कि राज्यकरके मामलेमें सम्पूर्ण ऊँच नीचका ख्याल कर लेना चाहिए। अनेकों बार कर प्रक्षेपण द्वारा समान कर असमान कर बन जाता है और असमान करका रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार करविचालन तथा करसंग्रहणका भी विशेषतः ध्यान कर लेना चाहिए।

---

* बैस्टेबल पब्लिक फायनन्स (१९१७) पृष्ठ ४११—४२१ मी एम देसा, पोलीटिकल इकानोमी पृष्ठ ६०६

तृतीय परिच्छेद

राज्य कर विभागके नियम

राज्य कर समान तथा न्याययुक्त होना चाहिए

राज्यकर विभागका प्रश्न नागरिकोंके कर देनेके कर्त्तव्यसे सम्बद्ध है। राज्यकर इस प्रकार लगना चाहिये जिससे समानता तथा न्यायका भङ्ग न हो। ऐसा क्यों? यह इसीलिए कि राज्य कर एक प्रकारका भार है। इस भारको देनेमें यदि राज्य किसी भी नागरिकसे पक्षपात न करे तो इससे सन्तोष तथा शान्तिका स्थिर रहना स्वाभाविक ही है। ऐसे करसे ही समाजकी उत्पादक शक्ति तथा समृद्धि बढ़ती है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि वे कौनसे नियम है जिनके द्वारा नागरिकोंपर राज्यकरका विभाग समानता तथा न्यायके नियमोंका भङ्ग न करे।

१—राज्य कर विभागके सिद्धान्त

राज्यकर विभागके तीन सिद्धान्त

आजकल राज्य कर विभागके मुख्यतया तीन सिद्धान्त प्रचलित हैं, जिनपर प्रकाश डालनेसे बहुत कुछ इस प्रश्नपर भी प्रकाश पड सकता है।

(१) राज्यकर विभाग तथा राज्यकरका मूल्य सिद्धान्त* राजकीय सेवाओंका राज्यकर मूल्य

* बैस्टेबुल, पब्लिक फाइनन (१९१७) पृष्ठ २९८–१९९

राज्यकर राजकीय सेवाओंका मूल्य नहीं है

नहीं है इसपर विस्तृत तौरपर लिखा जा चुका है। राज्य राष्ट्रका संरक्षण करता है और इस काममें बहुतसा धन खर्च करता है। इस दशामें यह जानना बहुत कठिन है कि किस व्यक्तिको कितना संरक्षण प्राप्त हुआ तथा राज्यकर स्वरूपमें कितना धन देना चाहिये। यदि किसी देशमें नागरिक लोग यह करनेका यत्न करे तो उसका परिणाम अराजकताके सिवाय और क्या हो सकता है?* यहीं पर बस नहीं। सब सम्पत्ति एक सदृश नहीं है। अतः सबके संरक्षणमें राज्यका धन व्यय एक सदृश नहीं हो सकता है। संरक्षणके अनुपातसे सम्पत्तियोंपर राज्यकर लगाना अत्याचार होगा। पेटैन्ट्स्, कापी राइट्स् ट्रेड मार्क आदिके नियमोंके द्वारा राज्य-राष्ट्रमें आविष्कार तथा विज्ञानकी उन्नति करता है। यदि इनपर अधिक कर मूल्य सिद्धान्तके अनुसार लगा दिया जावे तो परिणाम यह होगा कि राष्ट्रकी वैज्ञानिक तथा आर्थिक उन्नति सदाके लिए रुक जायगी। इसी प्रकार सीमा प्रान्तीय राष्ट्रोंपर करका भार अनन्त सीमातक बढ़ जायगा। क्योंकि विदेशीय राज्योंके आक्रमणसे सबसे ज्यादा खतरा उन्हींको होता है और इसीलिए सबसे ज्यादा राजकीय संरक्षणकी उन्हींको आवश्यकता होती है। सीमा

* वाकर, पोलिटिकल इकानोमी पृष्ठ ४१०

प्रान्तीय राष्ट्रोंके सदृश ही दुर्बल तथा निर्धन मनुष्योंपर (मूल्य सिद्धान्तके अनुसार) राज्यकर बढ़ जायगा क्योंकि उन्हींको सबलों तथा धनियोंके अत्याचारोंसे राज्यको अधिकतर बचाना पड़ता है।

मूल्य सिद्धान्तका प्रयोग

ऊपर लिखित दोषोंके होते हुए भी कई एक राज्य भिन्न भिन्न परिस्थितियोंसे प्रेरित हो करके कर ग्रहणमें मूल्य सिद्धान्तका सहारा लेते ही हैं। इंग्लैण्डमें अब फ्यूडलिज्मका कुछ भी अंश नहीं है अतः वहाँ मूल्य सिद्धान्तका भी अब प्रयोग नहीं है। परन्तु यह बात जर्मनीके साथ नहीं है। जर्मनीमें अभीतक फ्यूडलिज्मका कुछ कुछ अंश बचा हुआ है अतः वहां कर ग्रहणमें मूल्य सिद्धान्त का सहारा लिया जाता है। भारतमें ताल्लुकेदारों को राजा की उपाधि देकरके राज्यका धन ग्रहण करना इसीका एक ज्वलन्त उदाहरण है।*

राज्य कर विभागमें लाभ सिद्धान्त

(२) राज्यकर विभाग तथा राज्यकर लाभ सिद्धान्त —बहुतसे विचारकोंके मतमें नागरिकों पर राज्यकर लगानेमें लाभ सिद्धान्तका सहारा लेना चाहिए। यह सिद्धान्त भी मूल्य सिद्धान्तके सदृश ही दोषपूर्ण है। बालकों वृद्धों बेकार

लाभसिद्धान्तके दोष•

श्रमियों तथा मूर्खोंको ही धनाढ्या तथा विद्वानों की अपेक्षा राजकीय सहायताकी अधिक

* बास्टेबुल पब्लिक फाइनेन्स (१९१७) पृष्ठ ३८३-३३७
बाकर पोलिटिकल इकानोमी पृष्ठ ४०

आवश्यकता है अतः लाभ सिद्धान्तके अनुसार तो इन्हींपर सबसे ज्यादा राज्यकर लगना चाहिये परन्तु इसमें कदाचित् ही कोई विचारक सहमत हों। आजकल राज्योंने शिक्षा मुफ्त कर दी है और बेकारोंको काम देनेके लिये राजकीय वर्कशाप खोले हैं। लाभ सिद्धान्तके अनुसार तो राज्यके ये काम कभी भी उचित नहीं ठहराये जा सकते हैं।

राज्य समस्त के हितका ध्यान में रखकर काम करते हैं

(३) राज्यकर विभाग तथा साहाय्य सिद्धान्तः—ऊपर लिखित सिद्धान्तोंके दोषोंसे स्पष्ट है कि आजकल राज्य समाजका सामूहिक तौरपर हितका न कि समाजगत व्यक्तियोंके पृथक् पृथक् हितका ख्याल करते हैं। प्रत्येक व्यक्तिको अपनी अपनी शक्तिके अनुसार राज्यकी सहायता करना चाहिए। मन्दिरों तथा समाजोंके लिए दान देनेमें भी यही नियम काम करता है जो अधिक कमाते हैं वे अधिक दान देते हैं और जो कम कमाते हैं वे कम दान देते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि जो काम सब मनुष्योंके लिए किए गये हों उन कार्योंको इसी सिद्धान्तकेद्वारा उनकी सहायता पहुँचना चाहिए। जो जितना धन देसके वह उतना धन देवे।

शक्तिसिद्धान्तकी दो समस्यायें

राज्यकरके शक्ति सिद्धान्त पर निम्न लिखित प्रश्न उठते हैं जिनका विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

I कर देनेकी शक्तिका मापक आय है या सम्पत्ति ?

क्या यह शक्ति आय सम्पत्तिकी वृद्धिके समानुपातमें बढ़ती है या किसी अन्य अनुपातमें ?

II शक्ति सिद्धान्त के अनुसार क्या समानुपाती कर लगाना चाहिए या क्रमवृद्ध ?

२-राज्यकर प्राप्तिका स्थान

राज्य करके स्थान

राज्यकरके नियमोंको समझनेसे पूर्व यह जानना अ यन्त आवश्यक है कि राज्यकर किस स्थानसे प्राप्तकर किया जाता है। सम्पत्ति तथा आय दो ही वस्तुएँ हैं जिनके आधारपर राज्य कर ग्रहण करता है।

शुद्ध आयपर र यकर

(१) आयका स्वरूप —सम्पूर्णकर शुद्ध आय से ही लिये जाने चाहिएँ। लगान, रायल्टी, व्याज, लाभ, वेतन, भृति, हिस्सोंसे प्राप्त आमदनी आदि ही शुद्ध आय माने जाते हैं। प्राप्त आय या कल्पित आयपर कर लगाना देशकी उत्पादक शक्तिको नाश करना है। इस प्रकार सम्पूण कर चाहे उनकी प्राप्तिका स्थान सम्पत्ति हो, चाहे आय हो और चाहे कोई और चीज हो, शुद्ध आयमेंसे ही प्राप्त करने चाहिएँ। कर लगाते समय दरिद्र मनुष्योंका विशेष ध्यान करना चाहिए। क्योंकि उनके पास तो इतना धन भी नहीं होता है कि वह अपने शरीरका तथा अपने

†Adam's Finance (1898) PP 321—332

भारतमें माल गुजारीकी राशि अन्याय मुक्त है

बालबच्चोंतकका पोषण कर सकें* भारतमें भौमिक लगानकी वर्तमानकालीन राशि राज्यकरके नियमों-के विरुद्ध है। एक तो वह ग्रास सम्पत्तिसे ली जाती है और दूसरे वह इतनी अधिक है कि भारतीय किसान करज़दार हो गये हैं। भूमि पर राज्यकरका भार कदाचित् ही किसी देशमें में इतना हो जितना कि आजकल भारतमें हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि भारतमें जनताको आर्थिक स्वराज्य तथा उत्तरदायी राज्य नहीं मिला हुआ है।

सम्पत्ति तथ आय का सम्बन्ध

(२) सम्पत्तिका आयके साथ सम्बन्ध:— क्रमवृद्धकर तथा समानुपाती करपर विचार करनेसे पूर्व यह दिखा देना आवश्यक प्रतीत होता है कि सम्पत्ति तथा आयका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे एक सदृश आय नहीं होती है। भौमिक सम्पत्तिकी आय तथा वेतनकी आयमें बड़ा भेद है। क्योंकि पहली जहाँ स्थिर है वहाँ दूसरी अस्थिर है। भूमि सदा बनी रहती है अतः उसकी आय भी सदा बनी है।

वेतनपर करकी मात्रा कम होनी चाहिये

परन्तु पुरुषोंका स्वास्थ्य तथा स्वामीके साथ सम्बन्ध नश्वर है अतः वेतनकी आय अत्यन्त अस्थिर है। ऐसी दशामें भूमि तथा वेतनकी

---

* कोहनका दी साइन्स आफ फाइनन्स पृष्ठ ३१२। सेलिग्मेनकी दी प्राग्रेसिव टैक्सेशन। एडमकी, दी साइन्स आफ फायनन्स पृष्ठ २३३-३४१।

आयपर एक सदृश कर लगाना भयङ्कर अत्याचार करना होगा। यहीं नहीं, बहुतसी सम्पत्तिसे किसी प्रकारकी भी आय नहीं होती है। दृष्टान्त तौरपर गहने कपड़े तथा घरका सामान सम्पत्ति है परन्तु उससे उनके मालिकको किसी प्रकारकी भी आमदनी नहीं होती है। इसलिए ऐसी सम्पत्तिपर राज्यकर लगाना सर्वथा निरर्थक तथा हानिकर है। क्योंकि इससे लोगोंका रहन सहन खराब हो जायगा।

अचर सम्पत्ति पर कर अनुचित है

३-समानुपाती तथा क्रमवृद्धकरका स्वरूप

[illegible]

राज्यकर प्राप्तिका स्थान शुद्ध आय है इसपर प्रकाश डाला जा चुका है। अब यह दिखानेका यत्न किया जायगा कि राज्यकर नागरिकोंकी शक्तिको सामने रखते हुए समानुपाती होना चाहिए या क्रमवृद्ध? समानुपाती तथा क्रमवृद्ध करमें भेद यह है कि जहाँ प्रथमकी प्रति शतक कर मात्रा नियत होती है और आयकी वृद्धिके साथ करकी प्रति शतक मात्रामें कुछ भी भेद नहीं किया जाता है वहाँ द्वितीय की प्रति शतक कर मात्रा बदलती रहती है और आयकी वृद्धिके साथ साथ करकी प्रति शतक मात्रामें भी वृद्धि कर दी जाती है। व्यापारीय तथा व्यय योग्य पदार्थोंपर प्रायः समानुपाती कर और मृत पुरुषकी जयदाद ग्रहण करनेवालेपर प्राय क्रमवृद्धकर लगाया

जाता है । पिछले सदियोंसे आयव्यय शास्त्रमें क्रमवृद्धकरको या तो लाभ सिद्धान्तकेद्वारा या शक्ति सिद्धान्तके द्वारा पुष्ट करते हैं। इसी विषयपर हम 'राज्य करके नियम' नामक परिच्छेदमें प्रकाश डालेंगे अतः इसको यहाँपर ही छोड़ देना उचित है। यहाँपर जो कुछ विचार करना है वह यही है कि उचित क्या है ? राज्यों-का क्रमवृद्ध करकी नीतिका अवलम्बन करना चाहिए या समानुपाती करकी नीतिका ? इस प्रश्नके उत्तरपर ही राजकीय कर प्रणालीका आधार है। इसी कारणसे अब इसके पक्ष करनेवाले तथा विरोध करनेवाले दोनों पक्षोंकी युक्तियों-की आलोचना करनी आवश्यक प्रतीत होती है।

समानुपाती कर तथा क्रमवृद्धकर [illegible]

१ समष्टिवादी तथा क्रमवृद्धकर—बहुतसे विचारक देशमें धनकी समानताको लानेके लिए क्रमवृद्ध करको उचित प्रकट करते हैं। उनके विचारमें इस उद्देशको पूरा करनेका क्रमवृद्धकर एक बहुत उत्तम साधन है। इसी प्रकार कुछ एक लेखक समष्टिवादी न होते हुए भी धन-विभागकी समानताको सामाजिक सङ्गठनके लिए नितान्त आवश्यक समझते हैं और इसीलिए क्रमवृद्धकरको उचित बताते हैं। प्रोफेसर वैग्नर इसी श्रेणीके हैं। उनका मत है कि प्रजातन्त्र राष्ट्रोंमें नागरिकोंकी पारस्परिक असमानता राष्ट्र

क्रमवृद्ध करसे धनकी समानता होती है

वैग्नरका मत

शरीरकी अस्वस्थताका चिह्न है। अतः जातिकी व्यावसायिक, व्यापारीय, सामाजिक तथा राजनैतिक अवस्थाको सामने रखते हुए जहाँतक हो सके क्रमवृद्ध करका ही प्रयोग करना चाहिए।

वाकरका मत

महाशय वाकर नागरिकोंकी धन-सम्बन्धी असमानताका मुख्य कारण राज्यको समझते हैं। उनकी सम्मति है कि राज्यने व्यापारीय सन्धि बाधकसापुद्रिक कर, मुद्रा सम्बन्धी नियम आदि बातोंसे और जालसाजी तथा अत्याचारोंको ठीक ढङ्गपर न रोककर नागरिकोंमें धनकी असमानताकी प्रवृत्तिको बहुत ही अधिक बढ़ा दिया है अतः राज्यको इन कार्योंको छोड़ना चाहिए और इनके द्वारा अत्यन्त बुरे फलको क्रमवृद्धकरके द्वारा दूर करना चाहिए। इसी युक्तिको महाशय रायरने पसन्द किया है और वाकरके सदृश ही अपना मत प्रकट किया है।

हमारे विचारमें सामूहिक समष्टिवादियोंका तो क्रमवृद्ध करको पुष्ट करना सर्वथा निरर्थक है। क्योंकि इससे उनका अभीष्ट कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता है। वह उत्पत्तिके साधनोंपर राज्यका प्रभुत्व चाहते हैं। क्रमवृद्ध करके द्वारा उत्पत्तिके साधन सम्पूर्ण नागरिकोंमें समान तौरपर बँट जावेंगे। अर्थात् उनका जो अन्तिम उद्देश्य है वह क्रमवृद्धकरके द्वारा कभी भी पूरा नहीं किया जा सकता है। सामूहिक समष्टि-

वादियोंकी अपेक्षा प्रोफेसर वैग्नरका विचार बहुत ही युक्तियुक्त है। उनके विचारपर हमको यहाँपर कुछ भी कहना नहीं है। इसी प्रकार महाशय वाकरका विचार भी बहुत उत्तम है। निस्सन्देह राज्यके नियमोंके कारण धनकी असमानता किसी हदतक उत्पन्न हुई है परन्तु उसको एकमात्र मुख्य कारण प्रगट करना ठीक नहीं है। राज्यके अतिरिक्त अन्य बहुतसे कारण हैं जो धनकी असमानताको उत्पन्न करते हैं इस दशामें एक मात्र राज्यके सरपर सारे दोषका मढ़ देना किसी हदतक ठीक नहीं कहा जा सकता है। इस अत्युक्तिको छोड़ कर शेष सर्वांशमें महाशय वाकरका मत आदरणीय है।

राज्य करका समानता तथा क्रम वृद्धकर

(२) स्वार्थ त्याग सिद्धान्त तथा क्रमवृद्धकर— बहुतसे विचारक करकी समानताके लिए क्रमवृद्ध करका लगाना आवश्यक समझते हैं! दृष्टान्त तौर पर भोगविलासके विदेशीय पदार्थोंपर सामुद्रिक कर क्रमवृद्ध होना चाहिए। क्योंकि इसका प्रयोग अमीर लोग ही करते हैं और वह राज्यकर भी अधिक दे सकते हैं अतः उन पदार्थोंपर क्रमवृद्ध कर ही लगाना चाहिए। इसी प्रकार कर देनेमें सब व्यक्तियोंका स्वार्थ त्याग होना चाहिए इसको पूरा करनेके लिए भी अमीरों तथा गरीबोंपर एक सदृश समानुपाती कर न लगना चाहिए। इस

विषयपर आगे चल करके विचार किया जायगा अतः इसको यहाँपर ही छोड़ दिया जाता है।

(३) क्रम वृद्ध कर तथा व्यवसायिक उन्नति—आंग्ल सम्पत्तिशास्त्रज्ञ प्रायः क्रमवृद्धकरके विरुद्ध हैं। उनके विचारमें क्रमवृद्धकरसे व्यावसायिक उन्नति रुक जाती है। महाशय मिलका कथन है कि "धनाढ्य पूँजीपतियोंपर तथा अधिक आयपर क्रमवृद्धकर लगाना एक प्रकारसे देशके व्यवसायों तथा नागरिकोंकी मितव्ययतापर कर लगाना है"। यदि यह सत्य हो तो क्रमवृद्ध करको कभी कभी स्वीकृत नहीं किया जा सकता है। वास्तविक बात तो यह है क्रमवृद्धकरके लगानेमें सावधानीकी जरूरत है। देशके सम्पूर्ण व्यवसायोंकी एक सदृश दशा नहीं होती है। कई एकाधिकारी होते हैं और कई बहुत थोड़े लाभपर चल रहे होते हैं। कम लाभपर चलनेवाले व्यवसायों पर जहाँ क्रमवृद्धकर न लगाना चाहिए वहाँ एकाधिकारी व्यवसायोंको इससे छोड़ना भी न चाहिए। यही कारण है कि शुद्ध आयपर प्रायः क्रमवृद्धकर का प्रयोग उचित बताया जाता है। यदि किसी व्यवसायकी आय थोड़ी है तो उस पर क्रमवृद्धकर अपने आप ही न लगेगा। प्रजातन्त्र देशोंमें धनाढ्य लोग राज्यकी बागडोर अपने हाथमें करनेका यत्न करते हैं। परिणाम इसका यह है कि जनता इनसे सदा भय खाती रहती है

क्रमवृद्धकरपर मिलका विचार

क्रमवृद्धकरके प्रयोगमें साव[धा]नी

व्यवसायोंकी [अव]स्थामें भेद

और उनकी शक्तिको बहुत बढ़ने नहीं देना चाहती है। प्रजातन्त्र देश इसलिए भी क्रम वृद्ध करको दिन पर दिन पसन्द कर रहे हैं।*

प्रजातन्त्र ,रा का क्रम वृद्ध कर मे प्रेम

४-राज्यकरका वर्गीकरण

राज्यकरपर जितने लेखक है उतने ही वर्गीकरण हैं। यह क्यों? इसीलिए कि राज्यकरपर भिन्न विचारोंसे विचार किया जा सकता है। जिस लेखकने जो उद्देश सामने रखकर विचार करना शुरू किया उसने उसी उद्देशके अनुसार उसका वर्गीकरण कर दिया।

राज्यकरका व गीकरण बहुत प्रकार कया गया है

राज्य कर लगानेका मुख्य उद्देश्य यही है कि राष्ट्रीय कार्यों तथा प्रबन्धोंके लिए राज्यको धन मिल जाय। इस कार्यमें राज्य प्रत्येक व्यक्तिको बाधित कर सकता है। महाशय आदम स्मिथने करका वर्गीकरण करते समय लाभ, भृत्ति, लगान आदि के क्रमको ही लिया है। परन्तु कइयोंकी सम्मतिमें यह उचित नहीं है क्योंकि राज्य करके लगाने समय इस बात का कभी भी ध्यान नहीं करते कि कहाँ आर्थिक लगान है कहाँ आर्थिक लगान नहीं है। और न तो राज्य इस बातका ही ध्यान रखते हैं कि लाभ भृत्ति लगानके क्रमके अनुसार ही कर

रा य करका उद्देश्य

आदम स्मथके वर्गीकरणका आधार

दोष

* एडमस फायनन्स (१८६८) पृष्ठ २४१-२५३ बोस्टेबुल पब्लिक फायनन्स (१६१७) पृष्ठ २०१-३२२

लगावें। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि राज्य कर इन्हीं चीज़ों पर पडता है। आदम स्मिथके क्रमानुसार राज्यकरपर विचार करनेसे कर प्रक्षेपण के नियम अति सुगमतासे जाने जा सकते हैं। बहुतसे राज्यकर पदार्थोंपर लगाये जाते हैं और वह अन्तमें पुरुषोंपर जा पड़ते हैं। कई बार राज्य कर लगा देते हैं उनका उससे कुछ मतलब नहीं होता है कि वह कहां जा करके पडेगा और कहां जा करके न पडेगा।

न ५

I प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्षकर।

रा य करका प्राचीन वर्गी करण

राज्यकरोंका सबसे पुराना वर्गीकरण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्षके विचारमें है। महाशय मिलके विचारमें प्रत्यक्ष कर वह राज्यकर है जो उन्हीं पुरुषोंसे लिया जावे जिनपर राज्यकर लगाना अभीष्ट हो। उस लक्षणके अनुसार भौमिक तथा गृह सपत्ति, कंपनीके हिस्से, जायदाद, घोड़ा गाड़ी आदि पदार्थोंके विचारसे उनके स्वामियोंपर लगाये गये राज्यकर प्रत्यक्ष करके उदाहरण है। प्रत्यक्ष करकी व्याख्या बहुत ही कठिन है। क्योंकि बहुत बार राज्यकर लगता किसी पर है और जाकरके पडता किसी और पर है। श्रमियोंकी भृत्तिपर लगा हुआ राज्यकर बहुत बार व्यवसाय पतियों के लाभपर जा पड़ता है। यदि व्यवसायपति उस करसे अपने आपको बचा ले गये तो वह

मिलका लक्षण

प्रत्यक्षकर जाननेमें कठिनाई

व्ययियोंपर जा पड़ता है। अप्रत्यक्ष करोंमें तो इस घटनाका बहुत ही बड़ा महत्व है। कई बार राज्य पदार्थोंपर इसी उद्देश्यसे कर लगा देता है कि वह व्ययियोंपर जा पड़े। इस प्रकारका कर प्रक्षेपण मांग तथा उपलब्धि, स्पर्धा तथा एकाधिकार, पूँजी तथा श्रमका भ्रमण आदि आदि अनेक कारणोंसे सम्बद्ध है जिसपर आगे चल कर प्रकाश डाला जायगा।

अप्रत्यक्ष करमें कर प्रक्षेपणका भाग

बहुत विचारक वास्तविक घटनाके अनुसार प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करका लक्षण करना उचित प्रगट करते हैं। परन्तु इसका तो एक प्रकारसे यह तात्पर्य होगा कि कर प्रक्षेपणके नियम पहिले बता दिये जावें और करका वर्गीकरण पीछे किया जावे। यह क्रम कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है। महाशय मकुलककी सम्मतिमें प्रत्यक्ष तौरपर आय तथा पूँजी पर लगे हुए करको ही प्रत्यक्ष कर कहना चाहिये। व्ययद्वारा आय रूपी पूंजीपर अप्रत्यक्ष तौरपर लगे हुए राज्यकरको प्रत्यक्ष कर कहना ठीक नहीं है। इस प्रकार मिल तथा मकुलकके लक्षणमें बड़ाभेद है। मिलके विचारमें व्ययपर लगा हुआ राज्यकर यदि वह दूसरे पर जा करके न पड़े तोप्रत्यक्ष कर है परन्तु, मकुलकके विचारमें यही अप्रत्यक्ष कर है। कोसा भी इसी विचारसे सहमत हैं।उन्होंने भी पुरुष, आय, संपत्तिपर लगे हुए करकोप्रत्यक्ष कर प्रगट

मकुलकका प्रत्यक्षकरका लक्षण

मिल तथा मकुलकके लक्षणमें भेद

कोसाकी सम्मति

किया है और व्यय तथा विनिमयपर लगे हुए राज्य करको अप्रत्यक्षकर प्रगट किया है। प्रत्यक्ष करके सदृश ही अप्रत्यक्ष करका मिल महाशय यह लक्षण देते हैं कि "अप्रत्यक्ष कर वहकर है जो कि एक पुरुषसे इस आशासे लिया जाता है कि वह किसी दूसरेपर फेंक देवे। चुंगी तथा सामुद्रिक कर इसीके उदाहरण हैं।

मिलका अप्रत्य क्षकरका लक्षण

मिल तथा मकलकके लक्षणमें भेद

उपरिलिखित दोनों लक्षणोंमें विचारके लिये मिलका लक्षण उत्तम है और शासन तथा प्रबन्ध के लिये मकुलक तथा कोसाके लक्षण प्रशंसनीय हैं। क्योंकि राज्य कर्मचारी किसी एक लिस्टके अनुसार आय तथा पूँजीपर कर लगा देते हैं और इनको प्रत्यक्ष करकी श्रेणीमें रख देते हैं। इसमें उनको सुगमता रहती है। यदि उनको यह विचारना पड़ा कि कौनसा कर कहां फेंकना है तो उनको बहुतसी कठिनाइयोंको झेलना पड़े। इसी प्रकार वह लोग विनिमय तथा अस्थिर आर्थिक घटनाओंपर कर लगा देते हैं और उनको अप्रत्यक्ष करकी श्रेणीमें रख देते हैं। इससे होता क्या है। अप्रत्यक्ष कर की राशि सदा स्थिर हो जाती है और अप्रत्यक्ष करकी राशि अस्थिर। इससे बजटके बनानेमें कोई कठिनता उठानी नहीं पड़ती है। *

* जे० एम० मिल० प्रिन्सिपल्स, पांचवीं पुस्तक, तृतीय परिच्छेद, प्रक० ४ पृष्ठ २१ बेस्टेबलका पब्लिक फायनान्स (१८१७) पृष्ट २७१।

II रेट्स तथा राज्यकर।

राज्यकर लगानेके समयमें प्राय धनकी राशि पूर्वसे ही निश्चित करली जाती है। इसके अनन्तर यह निश्चित किया जाता है कि कितनी कर मात्रा किससे लेनी है। इसी कर मात्रा या कर राशिको सम्पत्तिशास्त्रमें रेट्सके नामसे और प्रो० बस्टेबल अनुपा-ीयकर के नामसे पुकारते हैं। परन्तु उत्तमता यही है कि रेट्स शब्दको न बदला जाव। अनुपातन्त जो करकी मात्रा नियत हो उसको रेटस कहा जावे और इससे विपरीतका कर ही कहा जाय इसी प्रकार शुल्क या (फीस) और राज्य करमें बड़ा भारी अन्तर है और जो कि इस प्रकार है।

रेक तन

कर तया र मे भर

शुक व कर मे १र

III शुल्क या फीस तथा राज्यकर

आर्थिक लाभके स्थानपर जन समाज तथा देशके हितको मुख्यतया ध्यानमें रखकर राज्य जो काम प्रारम्भ करते हैं और उस कामके बदले जो धन ग्रहण करते है उसको शुल्क या फीसके नामसे पुकारा जाता है। बहुतसे विचारक विशेष विशेष पदार्थों सेवाओं तथा श्रमोंको कीमतोंका नाम ही शुल्क प्रगट करते हैं और शुल्क तथा कीमतमें भेद दिखाना बहुतही कठिन समझते है। अस्तु जो कुछ भी हो। इस विचारसे हम सहमत नहीं

शुक यारू कालनरा

सेवाओंका मूल्य शुल्क नहीं है

निक सनक्रत प्रिन्सिपल्स आफ पोलिटिकल इकनोमी ततीय भाग ( ) पृष्ठ २६३ २६६

हैं। भिन्न भिन्न पदार्थों सेवाओं तथा श्रमोंकी कीमतका नाम शुल्क नहीं है। हम लोग इंग्लैण्डसे कपड़ा और जर्मनीसे रंग मंगाते हैं। उन चीजोंके लेनेके बदलेमें उन देशोंको जो रुपया दिया जाता है उसको शुल्क नहीं कहा जा सकता है। इसका यह तात्पर्य न समझना चाहिये कि किसी प्रकारकी भी कीमतें शुल्क नही कही जा सकती हैं। प्रजा तथा देश हितको मुख्यतया ध्यानमें रखकर जो काम किये जावें उन कामोंके बदलेमें जो धन लिया जाता है उसीको शुल्क कहा जाता है। प्रोफेसर सैलिग्मैनने ठीक कहा है कि, "शुल्कका मुख्य चिन्ह यह है कि यह मुख्यतया जन समाज या देशके हितके लिये किये गये कार्योंसे प्राप्त आय है। जिस आयमें प्रजा हितका विचार गौण, और आर्थिक विचार मुख्य हो वह आय शुल्क नहीं कही जा सकती है"।* यही कारण है कि विशेष वशेष राष्ट्रीय आयोंको शुल्क नामसे पुकारा जाता है। सड़कों, पुलों, डाक, स्कूल, कालेज आदिसे प्राप्त राजकीय आय शुल्क है। यही विचार प्रोफेसर न्यूमैनका है। यह होते हुए भी शुल्क शब्दके प्रयोगमें बड़ा मत भेद है। शुल्क शब्दके उपरिलिखित लक्षणको सब लोग माननेको तैयार नहीं हैं। वह लोग तीन प्रकारसे आक्षेप करते हैं जो इस प्रकार हैं।

सैलिग्मैन का मत

न्यूमैनका मत

शुल्कके लक्षण पर तीन आक्षेप

* प्रोफसर सैलिग्मन "एसेज इनटेक्सेशन" (न्यूयार्क तथा लन्दन) १८९६ पृष्ठ ३०३

(१) शुल्कका इतना विस्तृत लक्षण करनेसे बहुत ऐसी आयें भी शुल्क कही जाती हैं जिनको शुल्क न कहना चाहिये। विद्यार्थियोंकी शुल्क, बन्दरगाहोंका महसूल, मुकदमोंमें स्टाम्प कर, रेल्वे टिकट, लिफाफेके टिकट आदिमें क्या समानता है जिससे सबको शुल्कका नाम दिया जावे? इस आक्षेपका उत्तर यह है कि जिस सिद्धान्तपर यह आय आश्रित है वह सिद्धान्त सबमें काम कर रहा है। राज्य उपरिलिखित सपूर्ण कामोंको राष्ट्रहितके विचारसे करता है। उन कामोंके करनेमें राज्यका रुपये कमाना उद्देश्य नहीं है। जो कुछ धन, राज्य उन कामोंके बदलेमें लेता है वह इसी लिये कि उन कामोको ठीक तौर चलाया जा सके। राष्ट्रहितको सामने रख करके ही भिन्न भिन्न राज्य रेलोंको बनाते हैं और कम्पनियोंसे खरीदते हैं। पोस्ट आफिसमें भी यही बात काम कर रही है। इस प्रकार राष्ट्रहित उपरिलिखित सभी कार्योंमे समान है, इस दशामे सब कार्योंकी आयको फीस या शुल्क कहनेमें हानि ही क्या है?

प्रथम आक्षेप

आक्षेपका समाधान

(२) विपक्षी लोगोंका द्वितीय आक्षेप यह है कि "यदि राज्यने राष्ट्रहितको सन्मुख रखकरके ही उपरिलिखित संपूर्ण काम किये हैं तो उसको अधिक आय प्राप्त करनेका यत्न न करना चाहिये। जैसा कि उच्च स्थानीय राज्यके २५४ नियम धारा

द्वितीय आक्षेप

के बतानेवाले महाशयोंने शुल्क या फीस लेना उसी सीमातक उचित ठहराया है जिस सीमातक कि खर्चा होवे। खर्चेसे अधिक धन लिया ही क्यों जावे? यदि लिया भी जावे तो उसको शुल्क या फीस क्यों कहा जावे?

समाधान

इसका उत्तर यह है कि जिस धनको लेनेमें प्रजा हित या राष्ट्रहित ज्योंका त्यों बना रहे उस धनको लेनेमें हर्जा ही क्या है। बहुधा थोड़ेसे थोड़ा किराया लेते हुए भी आय व्ययसे किसी कदर अधिक हो जाती है। ऐसी दशामें उसको शुल्क क्यों न कहा जावे? सारांश यह है कि शुल्कका प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रजा हितसे है न कि आय या व्ययसे।

कोर्टवानडर लिन्डनका मत

महाशय कोर्ट वान डर लिन्डनने ठीक कहा है कि शुल्क इतना अधिक न होना चाहिये कि आयका साधन बने। इसमें सन्देह भी नहीं है कि व्ययके साथ उसका कोई घनिष्ट सम्बन्ध प्रगट करना भूल है। उत्पत्तिव्यय द्वारा राष्ट्रके हितों तथा कामोंका मापना कैसे उचित कहा जा सकता है। व्ययसे कुछ ही अधिक आयके बढ़ते ही शुल्क टैक्स कैसे बन सकता है जब कि राज्यका प्रजाके हितमें पूर्ववत् ही ध्यान हो।"

तृतीय आक्षेप

(३) विपक्षी लोग तृतीय आक्षेप यह करते हैं कि राज्यके उद्देशों तथा कार्योंमें बड़ा भेद होता है। बहुतबार राज्य प्रजाहित तथा राष्ट्रहितसे प्रेरित होकर काम शुरू करते हैं परन्तु

पीछेसे राजकीय कोषको भरनेमें ही अपना संपूर्ण ध्यान लगा देते हैं। रेल, डाक तथा तार आदिमें यह बात प्रायः देखी गयी है। भारतमें नहरोंसे लाभ प्राप्त होते हुए भी आंग्ल राज्यने कई प्रान्तोंमें जो बाधितजल टैक्स लगानेका यत्न किया है और इस साल डाककी रेट्सको बढ़ाया है उसमें कौनसा प्रजाहित काम कर रहा है?

समाधान

इसका उत्तर यह है कि यदि कोई राज्य ऐसे कार्योंसे अपने खजाने भरनेका यत्न करे और प्रजा-हितका ध्यान न करे तो वह अपने उद्देश्यको भुलाता हुआ कहा जा सकता है। परन्तु बहुधा ऐसा भी होजाता है कि आय प्राप्त होते हुए भी प्रजाहित पूर्ववत् ही विद्यमान रहता है। अर्थात् प्रजाहित तथा आयका कोई परस्पर विरोध नहीं है। दोनों एक साथ भी रह सकते हैं और प्रायः रहते भी हैं। भिन्न भिन्न योरुपीय राज्योंने रेलोंके खरीदनेमें जो धन व्यय किया है और अपनी अपनी प्रजाको सुख पहुँचाने तथा रेलवे कम्पिनियोंके एकाधिकारको भंग करनेका जो यत्न किया है उसमें प्रजाहित ही मुख्य है। इसदशामें रेलवेसे प्राप्त आयको शुल्क क्यों न कहा जावे? कानोंको खुदवाना रेलोंके बनवानेसे सर्वथा भिन्न है। राज्य आर्थिक दृष्टिसे कानोंको खुदवाते हैं। यही कारण है कि उनसे प्राप्त आयको शुल्क नहीं कहा जा सकता है।

शुल्क नियत करनेके नियम

अब यह प्रश्न स्वभावतः ही उत्पन्न होता है कि शुल्कके निर्धारणके क्या नियम हैं ? यदि इसका यह उत्तर दिया जावे कि शुल्क इतना थोड़ा होना चाहिये कि राज्यके उन प्रजाहित सम्बन्धी कार्योंसे सम्पूर्ण मनुष्य लाभ उठा लेवें, तो इसीका दूसरा अर्थ यह होगा कि शुल्क सर्वथा होना ही न चाहिये और इसीलिये शुल्क अन्याय युक्त है। क्योंकि राष्ट्रीय कार्योंसे पूर्ण सीमातक तभी लोग लाभ उठा सकते हैं जबकि सर्वथा ही शुल्क न होवे। दृष्टान्तके तौरपर रेलोंका किराया जितना कम होवेगा लोग उतनाही उसके द्वारा इधर उधर जावेंगे। यदि रेलोंका किराया सर्वथा ही न होवे और माल भी उनके द्वारा मुफ्तही रवाना कर दिया जावे तब सम्पूर्ण लोग उन रेलोंसे पूर्ण सीमातक लाभ उठावेंगे। सारांश यह है कि सम्पूर्ण लोगोंका पूर्ण सीमा तक किसी राजकीय कार्यसे लाभ उठानेका दूसरा मतलब यह है कि उस कार्यके बदलेमें राज्य कुछ भी शुल्क न लेवे।

राज्य मुफ्त काम नहीं कर सकता

परन्तु यह कब तक संभव है ? कब तक राज्य मुफ्त काम कर सकता है ? क्या इस प्रकार करनेसे राज्य एक ओर लाभ तथा सुख पहुँचाते हुए दूसरी ओर प्रजाको हानि तथा कष्ट न पहुँचावेगा ? प्रशियाकी राजकीय रेलोंसे ११२५०००००० रुपयेकी आमदनी है। यदि वह रेलोंका किराया न लेवे तो रेलोंके चलाने तथा प्रबन्धके लिये उसको

८७००००० रुपया प्रतिवर्ष आयकर द्वारा प्रुशियन प्रजासे निचोड़ना पड़े। इसी प्रकार हालैण्डको डाक तथा तारसे १५०००००० रुपयेकी आय है यदि वह डाक तथा तार मुफ्तही भेजना शुरू करे तो उसको भी उतनाही धन प्रजापर कर लगा करके प्राप्त करना पड़े। इस प्रकार कई एक कार्योंका प्रयोग मुफ्त करवाकर प्रजाको करों द्वारा पीड़ित करनेमें कौनसा प्रजाहित है? इससे तो अच्छा यही है कि करोंके स्थानपर राज्य शुल्कका ही प्रयोग करे।

शुल्का मात्र परिस्थितिपर निर्भर रहती है

शुल्कका अधिक या कम लेना भिन्न २ परिस्थितिपर आश्रित है। प्रजाहित सम्बन्धी राजकीय कार्योंमें यह प्राय देखा गया है कि व्ययी लोग शुल्कके कम लेनेके लिये और प्रबन्धकर्त्ता लोग उसको बढ़ानेके लिये राज्यसे झगड़ा करते हैं। इस झगड़ेको कैसे रोका जावे। इसका क्या उचित उपाय है?

शुल्क मामलेमें राजा व प्रजामें झगड़ा

शासक लोग इस उपरलिखित झगड़ेको मिटानेके लिये राज्यकार्योंमें दो भेद करते हैं।

राजकीय कार्योंके दो भेद

(१) सर्वजन सम्बन्धी कार्य—वह कार्य है जिनसे देशके सारे मनुष्योंको एक सदृश लाभ पहुँचाया जाय।

(२) विशेषजन सम्बन्धी कार्य—वह कार्यहैं जिनसे विशेष व्यक्तियोंको ही लाभ पहुँचाया जाय।

रेल तथा तार

रेल तथा तारका प्रयोग सबलोग एक सदृश नहीं करते। इसलिए इन कार्योंमें शुल्क का लेनाही राज्य उचित समझता है क्योंकि जो उन कार्योंसे लाभ उठावे वही उसका खर्चा देवे। कर लगा-कर सारे मनुष्योंपर उसका खर्चा क्यों फेंका जावे? ठीक है। इससे जो कुछ पता लगता है वह यही है कि शुल्क कहाँ लिया जाय और कहाँ न लिया जाय। परन्तु इससे यह पता नहीं चलता कि उसकी कितनी राशि भिन्न भिन्न व्यक्तियोंसे ली जाय?

आश्चर्यकी बात है कि इस प्रश्नपर प्रायः किसी भी संपत्तिशास्त्रज्ञने प्रकाश डालनेका यत्न नहीं किया है। महाशय एडोल्फ वैग्नरने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया और यह लिख करके छोड दिया कि "राजकीय कार्योंसे जिनके द्वारा राज्य आय प्राप्त करता है प्रायः कुछ एक व्यक्ति और साधारण जन लाभ उठाते हैं। लाभ उठानेका अनुपात दोनोंमें भिन्न भिन्न होता है। कहींपर विशेष-विशेष व्यक्ति अधिक लाभ उठाते हैं। और कहीं पर साधारण जन। जहाँ विशेष विशेष व्यक्ति अधिक लाभ उठाते हैं जहाँ शुल्क अधिक होता है और जहाँ साधारण जन अधिक लाभ उठाते हैं वहाँ शुल्क कम होता है।"

शुल्क शब्दका व्यवहार यदि परिमित कार्योंमें ही किया जाय तो महाशय वैग्नरका उपरिलि-

ख्रित कथन सर्वथा सत्य है। परन्तु शुल्क शब्दका व्यवहार हमने बहुत विस्तृत अर्थोंमें किया है इस दशामें इसका नियम अपरिपूर्ण है। क्योंकि सर्व-साधारणोंको एक सदृश लाभ पहुँचाते हुए भी रेलोंका किराया न लेनेमें किसी भी राज्यका विचार नहीं है। इससे विपरीत नहरोंका प्रयोग सर्वथा मुफ्त है यद्यपि उनसे विशेष विशेष व्यक्तियोंको ही लाभ पहुँचता है। दृष्टान्त तौरपर हालैण्डमें नहरों तथा राजकीय सड़कोंका प्रयोग सर्वथा निःशुल्क है। यह क्यों ?

महाशय वैग्नर-के विचारकी अपूर्णता

रेलोंका किराया और सर्वसाधारणोंको लाभ

महाशय वैग्नरके हिसाबसे तो नहरोंपर सबसे अधिक शुल्क लिया जाना चाहिये था। बहुत बार शुल्कके कम कर देनेसे राज्य की आय बहुत ही अधिक बढ़ जाती है। तार तथा डाकमें यह घटना प्रायः देखी गयी है। परन्तु यदि कहीं शुल्कके कम कर देनेसे संपूर्ण मनुष्योंको उस कार्यसे लाभ उठानेका अवसर मिले परन्तु राज्य को हानि उठानीपड़े और इस हानिको वह अधिक कर द्वारा पूरा करे तो इस प्रकार की शुल्क की कमी किसको अभीष्ट हो सकती है ? कल्पना कीजिये कि यह घटना तारके विभागमें ही उप-स्थित होती है। अब यहाँ पर यह प्रश्न संभावतः उत्पन्न होता है कि तारके शुल्क कम हो जानेसे और इस कारण उसके प्रयोगके बढ़ जानेसे क्या सब मनुष्योंकी जीवनोपयोगी आवश्यकता पूर्ण

हो गयी ? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि लोगोंने पत्रोंद्वारा समाचार तथा कुशल क्षेम लिखनेके स्थानपर तार द्वारा ही उन कामोंको करना शुरू कर दिया ? यदि वास्तवमें ऐसा ही हो तो राज्य का एक ओर शुल्क कम करके प्रजापर कर लगाना कहांतक प्रजाके लिये हितकर कहा जाता है ? ऐसी शुल्क की कमीसे हो क्या लाभ ? जब कि उल्टा सर पर करका भार उठाना पड़े ?

यही प्रश्न वहां और भी अधिक पेचीदा रूप धारण कर लेता है जहां कि अधिकसे अधिक शुल्क लेते हुए भी राज्यको हानि हो। ऐसी ही स्थलोंमें राज्यको बड़े संभालके पग धरना पडता है। राज्यको यही नीति रखनी पड़ती है कि प्रजा को अधिकसे अधिक लाभ पहुँचाते हुए वह कमसे कम हानि उठावे ? यही कारण है कि बड़े बड़े कार्योंमें शुल्कका निर्माण खर्चेपर ही निर्भर करता है। दृष्टान्त तौरपर जब राज्य रेलोंको बनाता है उस समय प्रजा हितके साथ साथ राज्यकोषको नुकसान पहुँचाना उसका उद्देश नहीं होता है। राज्यके स्वार्थत्यागकी भी एक हद है। बहुत बार प्रजा हितके लिए काम करते हुए भी राज्य ऋणको चुका देना अत्यन्त आवश्यक समझता है। यदि इस बातके लिए उसको शुल्क अधिक रखना पड़े तो वह रख सकता है और प्रजासे स्पष्ट शब्दोंमें यह कह सकता है

कि "हम सब प्रकारकी हानि उठाकरके शुल्क कम कर देनेको तैयार नहीं हैं। व्यापार व्यवसायकी वृद्धिके लिए रेल नहर तथा तार आदि विभागोंमें शुल्क उसी हदतक कम किया जा सकता है कि उसमें राज्यकोषको धक्का न पहुँचे, स्वार्थ-त्यागकीभी हद है। जहांतक हम स्वार्थ-त्याग कर सकते हैं हम पहलेसे ही कर रहे हैं। इससे अधिक और स्वार्थत्यागका मतलब यह है कि पुराने संपूर्ण कार्यक्रमों, विचारों तथा निश्चयोंपर पानी फेर दिया जाय। यह हम तबतक करनेको तैयार नहीं हैं जबतक कि हमको अपनी गल्ती न मालूम पड़े। हम व्यापार व्यवसायद्वारा लाभ उठाना चाहते हैं। रेल नहरें इसी लिए बनायीं गयी हैं। परन्तु रेल नहरकी उन्नति और शुल्ककी कमीकी एक हद है जिसका निर्धारण बहुत सी बातों तथा अवस्थाओंको ध्यानमें रखकरके किया गया है। चिर काल-से राज्योंकी यही नीति रही है। बड़ी बड़ी सड़कों तथा नहरोंपरसे शुल्क इसी लिए हटा लिया गया है। परन्तु रेलोंपरसे शुल्कका हटाना सर्वथा कठिन है। नहरों तथा सड़कोंके बनाने तथा स्थिर रखनेका व्यय थोड़ा है। इस व्यय-को राज्य अपने सिरपर सुगमतासे ही ले सकता है। परन्तु यह बात रेलोंके साथ नहीं है। रेलोंके बनाने तथा चलानेके खर्चे की अधिकताका

लाभ और राजकीय स्वार्थ-त्याग

अवस्था विशेष

इसीसे अनुमान लगाया जा सकता है कि अभी तक किसी भी राज्यके दिमागमें यह बात न आयी कि रेलोंका शुल्क माफ कर दिया जाय।

शिक्षा

यही घटना शिक्षामें काम कर रही है। प्रारम्भिक शिक्षाका शुल्क कई राज्य बहुत थोडा लेते हैं और कई राज्य सर्वथा लेते ही नहीं हैं जब कि उच्च शिक्षाका शुल्क सभी राज्य लेते हैं जो कि पर्याप्त अधिक है। दरिद्र तथा निर्धन पुरुषोंके बालकोंको उच्चशिक्षा प्राप्त करनेका अवसर देनेके लिए राज्योंने स्कालरशिप नियत किया है। इन्हीं बातोंका ख्याल करके महाशय बान स्टान ने कहा है कि शासनकी प्रत्येक शाखामें विशेष प्रबन्ध तथा कार्योंके अनुसार भिन्न २ शुल्क होना है। अब प्रश्न यही है कि वह विशेष प्रबन्ध तथा कार्य कौनसे हैं जो कि शुल्कको निश्चित करते हैं? इसका उत्तर अति सुगम नहीं है। क्योंकि यह बात भिन्न भिन्न प्रबन्ध तथा कार्योंके खर्चपर निर्भर करती है। लाभ तथा हानि दोनोंका ही ख्याल करके शुल्क निश्चित करना पड़ता है। बहुतसे स्थलोंमें शुल्क-मोचनसे लाभ तथा हानि दोनों ही हैं। दृष्टान्तके तौरपर प्रारम्भिक शिक्षाको ही लीजिये। प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क करनेसे जहां दरिद्र पुरुषोंको अपनी सन्तानोंको शिक्षा देनेका अवसर मिला है, वहां बहुतसे पुरुषोंने अपने बालकोंकी शिक्षामें भयंकर तौरपर उदासीनता प्रगट

(हाशिया: महाशय बान स्टान; विशेष प्रबन्ध तथा विशेषशुल्क; शुल्क तथा हानि लाभ; निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षाका प्रभाव)

की है। क्योंकि जिन कार्योंके करनेमें अपनी जेबसे कुछ निकालना पड़े उन कार्योंको मनुष्य बहुत ध्यानसे करते हैं और उदासीनता नहीं प्रगट करते हैं। प्रारम्भिक शिक्षाके इस दोषको हटानेके लिये बालकोंकी गैरहाजिरीपर पिताओंको जुर्माना देना राज्यने निश्चित किया है। राज्यका चिरकालसे दरिद्र निर्धनी लोगोंकी ओर दया-मय व्यवहार रहा है। यह एक ऐसी बात है जिसको भुलाना न चाहिए। इस बातको स्थिर रखनेके लिए यह आवश्यक है कि राज्य इस बात-का ध्यान रखे कि किसी प्रकारसे शुल्क करका रूप धारण न करने पावे।

शुल्क और कर

शुल्क तथा कर में बड़ा भेद है। एक ही कार्यमें शुल्क तथा कर इकट्ठे नहीं रह सकते हैं। राष्ट्रीय कार्योंके लिये अप्रत्यक्ष तौरपर जो धन लिया जाता है और जिसके कि लेनेमें किसी एक कार्यको मुख्यतया सामने नहीं रखा जाता है, वह धन कर कहलाता है। परन्तु शुल्क में यह बात नहीं है। प्रजा-हितके लिए किये गये कार्यपर ही शुल्क लिया जाता है। शुल्क देते समय जनताको यह पता होता है कि अमुक धन अमुक कार्यमें ही खर्च किया जायगा।

बहुत बार राज्य प्रारम्भिक शिक्षाको मुफ्त करके उसका खर्च भोजन-करद्वारा निकालते हैं। भोजन-करको शुल्क नहीं कहा जा सकता है क्योंकि

भोजन कर और उसका शिक्षामें सम्बन्ध

भोजन-कर तथा प्रारम्भिक शिक्षाकी निःशुल्कताका कोई नित्य सम्बन्ध नहीं है। भोजन-करके स्थान-पर किसी अन्य करके द्वारा प्रारम्भिक शिक्षाका खर्च निकाल सकते हैं। इस दशामें भोजन कर शुल्क नहीं कहा जा सकता। यह अभी लिखा जा चुका है कि करका मुख्य चिन्ह यही है कि उसका किसी भी राष्ट्रीय कार्यके साथ नित्य तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहता है। सारांश यह है कि करका धन-व्ययके साथ सम्बन्ध है न कि कार्यके साथ। करद्वारा प्राप्त धन सैकड़ों कार्योंमें राज्य खर्च करते हैं। किसी एक भी करके विषयमें यह कहना कठिन है कि वह अमुक कार्यमें हो खर्च किया जायगा और अमुक कार्यमें नहीं। वास्तवमें करद्वारा प्राप्त संपूर्ण धन राज्य कोषमें इकट्ठा कर दिया जाता है और वार्षिक बजट्के द्वारा भिन्न भिन्न कार्योंमें खर्च कर दिया जाता है। परन्तु शुल्क-

शुल्कका कार्य-के साथ सबंध

में यह बात नहीं है। शुल्कका धन-व्ययके स्थानपर प्रत्यक्ष तौरपर कार्यके साथ ही सम्बन्ध है। शुल्क देते समय यह पता होता है कि इसका रुपया अमुक स्थानमें ही लगेगा। इस स्थानपर यह प्रश्न स्वभावतः ही उत्पन्न होता है कि शुल्क किन किन अवस्थाओंमें शुल्कका रूप छोड़ देता है और करका रुप धारणकर लेता है?

शुल्कके रूपमें परिवर्तन

कई एक संपत्तिशास्त्रज्ञोंका विचार है कि उत्पत्ति-व्ययसे शुल्क अधिक लेते ही शुल्क करका रूप

धारण कर लेता है। डाक्टर कोर्टवानडर लिन्डन-की इस विषयमें जो सम्मति है उसका उल्लेख किया ही जा चुका है। हमारे विचारमें उत्पत्ति व्ययसे अधिक लिया हुआ भी शुल्क शुल्क ही रह सकता है। दृष्टान्तके तौरपर यदि तार तथा डाकका महसूल कम हो जाय और इस कमीके कारण माँगके अतिशय बढ़ जानेसे राज्यको उत्पत्ति-व्ययकी अपेक्षा अधिक शुल्क मिले तो यह शुल्क कर क्योंकर कहा जाय। क्या इससे राज्यके अन्दर प्रजाहितका भाव कम हो जायगा? किसी राष्ट्रहित सम्बन्धी कार्यका शुल्क तभी करका रूप धारण करता है जब कि उस कार्यके करनेमें राज्यका उद्देश्य धन बटोरना हो जाता है। महाशय अहलर(Ehler) ने ठीक कहा है कि 'करका' अंश शुल्कमें तब तक प्रविष्ट नहीं होता है जब तक शुल्क राष्ट्रीय कार्योंका परिणाम हो। परन्तु जब शुल्कके कारण राष्ट्रीय कर्मण्यता हो तब शुल्क कर-का रूप धारण कर लेता है। क्योंकि ऐसी दशामें राज्य अधिक धन प्राप्तिकी लोलुपतासे करको शुल्क-का नाम दे देते हैं और यह भी इसी लिए कि ऐसा करनेमें प्रजा उनको न रोके।

महाशय अहलर

बहुत बार म्युनिसपैलटियां जल तथा गैसके प्रबन्धके लिये बनी हुई कम्पिनियोंसे बहुतसा रुपया इन कार्योंके करनेकी आज्ञा देनेके बदले लेती हैं। इससे कम्पनियाँ जल तथा गैसका महसूल

जल तथा गैस का प्रबन्ध और कर तथा शुल्क

बढ़ा देती हैं और इस प्रकार कर-प्रक्षेपणके नियमके अनुसार नागरिकोंसे ही उस धनको भी लेती हैं जोकि म्युनिसपैलटियाँ उनसे लेती हैं। ऐसी दशामें म्युनिसपैलटियोंके इस प्रकारसे धनको लेनेको शुल्क कहा जाय या कर। हमारी सम्मतिमें इसको कर ही कहना चाहिए। क्योंकि कम्पनियोंसे म्युनिसपैलटियां आर्थिक विचारसे ही धन ग्रहण करती हैं। अतः इसको शुल्क न कह करके कर ही कहना चाहिए। *

(IV)

वास्तविक तथा पौरुषेय कर

(Real tax and personal tax)

वास्तविक कर और पौरुषेय करका स्वरूप

स्थिर संपत्ति कर या वास्तविक-कर वह कर है जो कि व्ययी या स्वामीकी शक्तिका बिना विचार किये एकमात्र पदार्थोंपर ही लगाया जाय। दृष्टान्त तौरपर आयात (Import duty) तथा भौमिक-कर (Land tax) वास्तविक-कर हैं। इसी प्रकार पौरुषेय कर वह कर है जो पुरुषोंपर ही लगाया जाय। भिन्न भिन्न व्यवसाय, आय संपत्ति तथा स्थितिके अनुसार पुरुषोंपर जो राज्यकर लगते हैं वह पौरुषेय कर हैं।

महाशय बेस्टेबलका वर्गीकरण

परन्तु महाशय बैस्टेबलने मुख्य (Primary) तथा गौण (Secondry) भेदमें राज्यकरोंको विभक्त किया है। उनके विचारमें

---

* पोयर्मन भाग २, (शुल्क तथा कर)

भूमि, व्यवसाय, पूँजी, भृति तथा मनुष्योंपर लगा हुआ राज्यकर मुख्य कर है। इसी प्रकार (i) वस्तु (ii) विनिमयके साधन (iii) व्यापार तथा दायाद या जायदाद परिवर्त्तन आदिपर लगा हुआ राज्यकर गौणकर है। इस वर्गीकरणकी उत्तमता यह है कि क्रियात्मक तथा विचारात्मक आधारको मिलाकर करका यह वर्गीकरण किया गया है। *

---
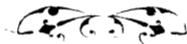
* निकल्सन, प्रिन्सपल्स आफ पुलिटिकल इकानमी। भाग (१९०८) पृष्ट २९६–२९७

बैस्टेबल, पब्लिक फाइनान्स (१९१७) पृष्ठ २७१ २७९

चतुर्थ परिच्छेद

राज्यकर संभारके नियम।

१—कर-भारकी कठोरता।

करका राशि करभारको कठोरताका मापक नहीं है। धनकी उत्पत्ति को कम करनेमें करभारकी कठोरता है

कर-भारकी कठोरताका आधार क्या है? इसपर विचार करनेसे प्रतीत होगा कि करोंकी अधिकता या न्यूनताके साथ कर-भारकी कठोरताका कुछ भी संबंध नहीं है। कर-भार उस समय कठोर समझा जाता है, जब कि वह धनको उत्पत्तिको कम या नष्ट कर दे। यह क्यों? यह इसलिए कि इससे वैयक्तिक आयके सदृश हो जातिके आयको बहुत ही अधिक धक्का पहुंच जाता है। जातिकी समृद्धि बहुत कुछ रुक जाती है और उसके आयके स्रोत शुष्क हो जाते हैं। कल्पना कीजिए कि किसी जातिकी आय २०००००००० रुपये है। इसपर राज्यने १०००००००० रुपयेका कर लगा दिया, साथ ही यह भी मानिए कि राज्यने करको उलटे ढंगपर लगा दिया है, जिस ढंगपर इसको कर लगाना चाहिए था, उस ढंगपर उसने कर नहीं लगाया। परिणाम इसका यह हुआ कि जातिकी आयको नुकसान पहुँचा। जिस हद्दतक उसको बढ़ना चाहिए था वह बढ़ न सकी। यदि ठीक ढंगपर कर

करभारको कठोरतामें (१)

लगाता तो जातिकी आय २२००००००० रुपये तक पहुँच जाती, राज्यने यद्यपि जातिसे प्रत्यक्ष तौरपर १००००००० रुपयेका ही कर लिया, परंतु उस करका अप्रत्यक्षरूप ३००००००० रुपये तक जा पहुँचा। यदि इस गलतीका धनकी कमी ही परिणाम होता तो भी कोई बात न थी। कठिनता तो यह है कि ऐसी भूलोंसे जातिकी शक्ति तथा स्वभाव सर्वथा बदल जाते हैं। (१) पदार्थोंके उत्पन्न करनेमें उसकी रुचि नहीं रहती और (२) उसकी उत्पादक शक्ति बहुत ही अधिक घट जाती है।

जातिकी पदार्थोंकी उत्पत्ति रुचि तथा उत्पादकशक्ति कम हो जाती है।

स्थूल उत्पत्ति (Gross product) पर राज्य-करका मुख्य प्रभाव यही होता है कि जातिका पदार्थोंकी उत्पत्तिमें झुकाव नहीं रहता है। यदि किसी देशमें भौमिक लगान या भौमिक कर स्थूल उत्पत्तिको देखकर लगाया हो तो इससे बढ़कर बुरी बात और नहीं हो सकती। क्योंकि इससे कृषिको जितना नुकसान पहुँचे उतना ही थोड़ा है। भारतवर्षमें आंग्ल सरकारने यही बात की है। उसने वास्तविक उत्पत्तिके स्थानपर स्थूल उत्पत्तिपर ही सरकारी लगान निश्चित किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारतमें भूमिकी उत्पादकशक्ति घट गयी है। कृषक दरिद्र हो गये हैं, जनताका पदार्थोंकी उत्पत्ति तथा भौमिक शक्ति बढ़ानेकी ओर झुकाव नहीं

जातिका रुचि का घटना

भारतमें कर-भार

रहा है। यही नहीं, यहां लगान की मात्रा भी अधिक है। स्थूल उत्पत्तिका $\frac{1}{2}$ तथा $\frac{1}{5}$ लगानके तौरपर आंग्ल सरकार भारतीय कृषकोंसे लेती है। इसकी अधिकताका इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि भारतीय किसान धन उधार लेकर सरकारी लगान चुकाते हैं। सालमें एक भी फसलके असफल होते ही वे लोग दुर्भिक्षके ग्रास हो जाते हैं। *

---

* हिंदू राज्य-नियमोंके अनुसार पदार्थका उत्पत्तिका ६ भाग राज्य करके तौरपर प्राचीन कालमें लिया जाता था। कण-विधिपर लगानके एकत्रित करनेके कारण दुर्भिक्ष कालमें राजा तथा प्रजा दोनोंको ही अकालका दुःख सहन करना पड़ता था। आंग्ल राज्यमें कण-विधिका प्रचार हट गया है। अतः राज्यको दुर्भिक्षकी प्रबलताका उस हदतक अनुभव नहीं होता है, जिस हदतक किसानों तथा काश्तकारोंको। १६१७ विक्रमीयमें मध्यप्रान्तमें स्थूल उत्पत्तिका $\frac{1}{2}$ लगानके तौरपर राज्यने लेना शुरु किया। (आर० सी० दत्त रचित "फेमिन्स इन इण्डिया" पृष्ट २२—२३) इसी प्रकार उत्तर पश्चिमी प्रान्तोंमें स्थूल उत्पत्तिका $\frac{3}{5}$ भाग राज्यने लगानके तौरपर नियत किया और लगान रुपयोंमें लेना शुरु किया। यह लगान किसानोंके लिए भारी है और उनको दरिद्र बना रहा है, (मैकडानेलका करेन्मी कमेटीके सम्मुख उत्तर, पृ० ५७३७-४०)

सरकारी राजकर्मचारी, किसानका पदार्थोंकी उत्पत्तिमें जो उत्पत्तिव्यय होता है उसका ठीक ढगपर अनुमान नहीं करते हैं। जहां किसानोंका ४) खर्च है वहां १) ही खर्चमें गिनते हैं। इस प्रकार खर्चा कम दिखलाकर राजकर्मचारी लोग वास्तविक उत्पत्तिका पता लगाते हैं और उसके आधारपर राजकीय लगान नियत करते हैं। इससे लगानका बहुत अधिक होजाना स्वाभाविक

भौमिककर तथा कणविधिका पदार्थोंकी उत्पत्ति पर प्रभाव

यूरोपमें प्रायः यह देखा गया है कि पदार्थोंकी उत्पत्तिपर भौमिक करके लगानेसे कुछ एक पदार्थोंको उत्पन्न करना छोड़ दिया जाता है। यह क्यों? यह इसीलिए कि इन पदार्थोके उत्पन्न करनेमें घाटा होता है और राज्यकर लेनेके लिए ऋण लेना पड़ता है। कणविधिका सबसे बड़ा दोष यही है कि यह विधि भिन्न भिन्न पदार्थोंके उत्पत्तिव्ययका कुछ भी ध्यान नहीं रखती है। इससे गहरी कृषि (Intensive cultivation) की ओर जनताका झुकाव नहीं रहता है। शुरू-शुरूमें भूमिकी अतिशय उत्पादकता, पूँजीकी न्यूनता, जनताकी कृषि-विज्ञानमें अज्ञता तथा आबादीकी कमीके कारण कण-विधिके दोष प्रत्यक्ष नहीं हुए थे, परन्तु कालान्तरमें यही कणविधि पूँजी, आबादी तथा कृषिविद्याकी वृद्धिसे और भूमिकी उत्पादक शक्तिके बहुतही अधिक कम होजानेसे समाजके लिये हानिकर होगयी। यही कारण है कि आजकल सम्पत्ति शास्त्रज्ञ कण-विधि तथा स्थूल उत्पत्तिके अनुसार राज्यकर

ता है। मद्रासमें लगान नियत करनेवाले राजकर्मचारियोंने तो रद्दी तथा अच्छी जमीनोंके उत्पत्तिव्ययको एक सदृश ही मानकर लगान निश्चित कर लिया। परिणाम किसानोंके लिए बहुत ही अधिक भयकर हुआ है। मद्रासके दुर्भिक्षोंका मुख्य कारण यही है। किसानों पर लगान बहुत अधिक है। (आर० सी० दत्तरचित "फैमिन्स इन इण्डिया" पृ० ३२-३७)

लगानेके विरुद्ध हैं। भूमिकी वास्तविक उत्पत्तिपर ही भौमिक कर लगना चाहिए। कृषिके सम्पूर्ण खर्चोंको निकाल देनेपर कृषकोंको जो शुद्ध आमदनी हो उसीपर राज्यकर लगना चाहिए।

भौमिककर या भौमिक लगानकी अधिकताका पदार्थोकी उत्पत्तिपर प्रभाव

जिन देशोंमें भौमिक कर या भौमिक लगान की मात्रा अधिक होती है, उन देशोंके लोग भूमियोंमें अपना धन लगाना तथा भूमियोंकी उत्पादक शक्तियोंको बढ़ाना छोड़ देते हैं। कल्पना कीजिए कि भूमिके वार्षिक मूल्यपर २० राज्यकर है। और उस देशमें व्याजकी मात्रा ५ है। यदि वहाँ कुछ भी राज्यकर न होता तो कृषक लोग अपनी पूंजी लगाकर ५% से अधिक लाभ प्राप्त कर लेते। यदि २०% राज्यकर देनेसे कृषकोंको अपनी पूञ्जीपर ५% व्याजसे भी कम लाभ प्राप्त होता हो तो वह अपनी पूञ्जीको कृषिमें कब लगाने लगे। भारतवर्षकी यही दशा है। यहाँ भौमिक लगान बहुत ही अधिक है अतः भूमिकी उत्पादक शक्ति दिनपर दिन घटती जाती है। लोग लगान बढ़ानेके भयसे भूमिमें अपनी पूञ्जी नहीं लगाते हैं, क्योंकि लगान बढ़नेके बाद उनकी पूंजी निरर्थक हो जायगी और उनको भूमिमें लगी हुई पूञ्जीका बदला न मिलेगा।

निर्यात करका पदार्थोंकी उत्पत्तिपर प्रभाव

भौमिक लगान या भौमिककर वृद्धिके सदृश ही निर्यातकर (Export duty) का भी प्रभाव पदार्थोंकी उत्पत्तिको कम कर देना हो तो कणविधि-

के सदृशही यह कर भी स्थल उत्पत्तिपर ही आकर पड़ते हैं। निर्यात करका मुख्य प्रभाव पदार्थोंकी कीमतोंका कम कर देना है। यदि अन्य अवस्थाएँ समान रहीं तो निर्यातकर वृद्धिके समान-अनुपातमें पदार्थोंकी कीमते कम होजाती हैं। इससे बढ़ी हुई कीमतोंके कारण उत्पादकोंको जो लाभ पहुँचना चाहिए वह लाभ नहीं पहुँचता है। कम कीमतके मिलनेसे जिन पदार्थोंके उत्पन्न करनेमें उत्पादकोंका अधिक खर्चा होता है उन उन पदार्थोंका उत्पन्न करना वे लोग छोड़ देते हैं। क्योंकि देशके अन्दर कुछ एक सीमान्तिक निकृष्ट भूमियां सदाही विद्यमान होती हैं जिनमें आर्थिक भूमीय लगानका अभाव होता है और जिनका कि जोतना बोना विशेष विशेष अधिक कीमतोंके साथ सम्बद्ध होता है। निर्यात करके लगतेही इन भूमियोंका जोतना बोना छोड़ दिया जाता है। इसी प्रकार कुछ एक सीमान्तिक निकृष्ट पुतली घर होते हैं जो कि कीमतोंकी अधिक विशेषताके कारण चलते हैं और जिनमें आर्थिक पूञ्जीय लगानका अभाव होता है। कीमतोंके गिरतेही इन व्यवसायोंमें पूञ्जी लगाना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि निर्यात करका मुख्य प्रभाव कुछ एक खेतोंको खेतीसे निकाल देना और कुछ एक व्यवसायोंको पदार्थोंको उत्पन्न करनेसे रोक देना होता है।

निर्यातकरका कृषि तथा व्यवसायपर प्रभाव

निर्यात करका प्रभाव कृषिपर पड़ेगा या व्यवसायपर? यह उन पदार्थोंपर निर्भर करता है जिनपर कि निर्यात कर लगाया गया हो। यदि व्यावसायिक पदार्थपर निर्यात कर हो तो व्यवसाय टूटेंगे और कृषिजन्य पदार्थोंपर निर्यात कर हो तो खेतोंका जोतना बोना छोड़ दिया जायगा। इसमें व्यक्तियोंको जो कुछ नुकसान पहुँचता है, वह तो पहुँचता ही है, जातीय समृद्धिके लिए भी इस प्रकारके कर बहुत ही भयंकर होते हैं। भिन्न भिन्न पदार्थोंपर निर्यात कर लगानेका दूसरा मतलब यह है कि भिन्न भिन्न व्यवसायोंमें पूञ्जी तथा श्रमका विनियोग न हो। इससे पूञ्जी तथा श्रम बेकार हो जाते हैं। मजदूरोंकी मजदूरी घट जाती है और पूंजी विदेशीय कामोंमें जा लगती है।

निर्यातकर और देशका व्यापारीय तथा आयव्यय सतुलन

व्यापारीय या आयव्यय सन्तुलन सिद्धान्तके द्वारा भी निर्यात करके हानिकर प्रभावको प्रगट किया जा सकता है। कल्पना कीजिए कि पदार्थोंके निर्यातपर राज्यने कर लगा दिया है तो होगा क्या? निर्यात करके लगते ही देशके निर्यात कम हो जायंगे, और इस प्रकार व्यापारीय सन्तुलन नष्ट हो जायगा। देशसे उतने पदार्थ बाहर न जा सकेंगे जितने पदार्थ उस देशमें आवेंगे। इस प्रकार विपरीत व्यापारीय सन्तुलन होनेसे देशका सोना चांदी बाहर निकलते ही बैंकोंके डिस्काउंट रेट बढ़ जानेसे और देशके

सारे कागजोंके दाम गिरनेसे और सोने चांदीके दाम चढ़नेसे देशके विपक्षीय व्यापारीय संतुलन पुन: सपक्षीय व्यापरीय संतुलनमें परिवर्त्तित हो जायगा। इस सारे घटनाचक्रका मुख्य प्रभाव देशके व्यापारको कम कर देना होगा।

आयात कर (Import duty) के लगानेसे देशमें विदेशीय आयात पदार्थोंकी कीमतें चढ़ जाती हैं। इससे विदेशीय आयात पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाले स्वदेशीय व्यवसाय लाभके अधिक होनेसे दिन दूना रात चौगुना काम करने लगते हैं। इससे श्रमियोंकी बेकारी दूर हो जाती है और उनकी मजदूरी पूर्वापेक्षा बहुत ही अधिक बढ़ जाती है। अन्तरीय व्यापार तथा व्यवसाय चमक उठता है। परंतु इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि आयात करके लगनेसे अन्तर्जातीय व्यापार किसी न किसी हद-तक अवश्य ही कम हो जाता है। यदि किसी देशके अपने ही जहाज़ हों तो अन्तर्जातीय व्यापार को धक्का लगनेसे स्वदेशीय जहाजोंकी वृद्धि तथा उन्नतिका रुक जाना स्वाभाविक ही है। *

आयातकरका स्वदेशीय व्यवसायोंपर प्रभाव

बाधक सामुद्रिक आयात करोंका प्रभाव

बाधक सामुद्रिक कर तथा राज्यकी आय

* एन. जा. निकल्सन रचित 'प्रिन्सिपल्स आफ इकानमी' (१९१२) भाग २, पृष्ठ ३८१—३८५

देशके अन्तर्जातीय व्यापारको कम कर देना है इस-पर अभी प्रकाश डाला जा चुका है। इनसे राज्य-की आमदनी कम हो जाती है (शुरूशुरू में राज्यकी आमदनी बढ़ जाती है परंतु पीछे कम हो जाती है।) यदि किसी राज्यको इससे अधिक आमदनी हो तो उसका व्यावसायिक उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। क्योंकि इस करका मुख्य उद्देश्य यही होता है कि विदेशीय पदार्थोंकी स्वदेशमें कीमतें चढ़ जायँ और उनका प्रयोग स्वदेशमें रुक जाय अर्थात् उन पदार्थोंका स्वदेशमें सर्वथा ही विक्रय न हो। यही कारण है बाधक सामुद्रिक करका अन्तिम स्थिर प्रभाव राज्यकी आमदनीको घटा देना है। इसीसे यह भी स्पष्ट होता है कि कर कितनी बड़ी शक्ति है जिसके सहारे सुगमतासे ही देशके व्यापारकी गति बदली जा सकती है। स्वदेशी व्यवसाय व्यापारको उन्नत अवनत करने-में राज्य-करका बडा भारी भाग है।

जीवनोपयोगी पदार्थोंपर राज्य कर न लगाना चाहिये

जीवनोपयोगी पदार्थोंपर राज्यकर न लगाना चाहिये। क्योंकि इससे जनताकी उत्पादक शक्ति कम हो जाती है। क्योंकि जीवनोपयोगी पदार्थों पर राज्य कर लगाते ही उनकी कीमतें चढ़ जाती है और जनतामें उनका प्रयोग कम हो जाता है। अमीरोंपर ऐसे करोंका कोई विशेष हानिकर प्रभाव नहीं होता है: क्योंकि वे लोग अधिक कीमतपर भी पदार्थोंको खरीद सकते हैं, परंतु

ऐसे करोंका प्रभाव श्रमियोंके लिये अच्छा नहीं होता है। उनको उन पदार्थोंका प्रयोग कम करना पड़ता है जिनपर राज्यकर लगा हुआ होता है। जो दरिद्र तथा मजदूर अपने खर्चेको कम करनेके लिये तैयार न हों और राज्यकर लगनेपर भी कर लगे पदार्थोंका प्रयोग न छोड़ें, वे अपने बच्चोंसे मजदूरी करवाकर धनकी कमीको पूरा करते हैं। बच्चोंसे मज़दूरी करवाना महापाप है। क्योंकि इससे उनकी उन्नति रुक जाती है। सारांश यह है कि दरिद्रोंके जीवनोपयोगी पदार्थोंपर राज्यकरका लगना बहुतही बुरा है। इससे जातिकी उत्पादक शक्ति तथा कार्यक्षमता नष्ट हो जाती है।

अन्तर्जातीय व्यापारका देशकी दरिद्रताको बढाना

अन्तर्जातीय व्यापारका प्रभाव भी बहुत बार ऐसा ही होता है। जब किसी दरिद्र निर्धनी देशका समृद्ध देशके साथ अन्तर्जातीय व्यापार हो और दरिद्र निर्धनी देशको विदेशीय जातिके आधिपत्यके कारण व्यावसायिक शक्ति बननेका अवसर न मिले और उसको एकमात्र कृषि करके ही संतुष्ट रहना पड़े और कृषिजन्य पदार्थोंका मूल्य भी विदेशीय समृद्ध जातियोंकी मांगके कारण बहुत ही चढ़ जाय तो ऐसे निर्धनी दरिद्र देशकी उत्पादक शक्ति, कार्यक्षमता तथा पदार्थोंकी उत्पत्तिमें रुचि सर्वथा नष्ट हो

जाती है। भारतवर्ष इसीका प्रत्यक्ष उदाहरण है। *

पूँजी सञ्चयको रोकनेवाले राज्यकर न लगने चाहिये।

बहुतसे विद्वानोंका विचार है कि राज्यको ऐसे कर भी न लगाने चाहिये जोकि जातिमें पूँजी संचयको आदतको कम करें। क्योंकि जातिकी उत्पादक शक्तिका आधार श्रमियोंकी शारीरिक तथा मानसिक शक्तिके साथ साथ उत्पत्तिके साधनों तथा पूंजीपर भी निर्भर करता है। ऐसे राज्यकर जो उत्पत्तिके साधनों तथा पूंजीकी वृद्धिको रोकें, वह जातिके हित तथा समृद्धिके नाशक होते हैं। जिस प्रकार जीवनोपयोगी पदार्थोंपर लगा हुआ राज्यकर श्रमियोंकी कार्य मताको नष्ट करता है उसी प्रकार अचल पूंजीकी वृद्धिको रोकने वाला राज्यकर पूंजीकी कार्यक्षमताको नष्ट करता है। अतः दोनों प्रकारके ही राज्यकर समाज तथा जातिके हितके विरोधी हैं।

अधिक आयपर राज्यकर

अधिक आमदनीपर राज्यकर लगना चाहिये या नहीं? यह एक अत्यन्त आवश्यक प्रश्न है। इसका मुख्य कारण यह है कि अमीर लोग अपने बचाये धनसे राज्यकर देते हैं। उनको आमदनीपर लगा हुआ राज्यकर उनके जीवनोपयोगी खर्चोंपर बहुत अधिक प्रभाव नहीं डालता है।

* एन० जी० पियर्सनकी, प्रिन्सपल्स आफ इकानामिक्स (१९१२) भाग २, पृष्ठ ३८५–८६

उनपर आयकरका जो कुछ प्रभाव होता है वह यही है कि उनके पास पूंजी बहुत एकत्रित नहीं होती है। इसमें संदेह भी नहीं है कि बहुत बार राज्यकर पूंजीपर भी प्रभाव नहीं डालते हैं। दृष्टांतके तौर पर घोड़े रखने, नौकर रखने आदि पर लगा हुआ राज्यकर पूंजीसंचयको नहीं रोकता है।

समष्टिवादि-योंका मत

समष्टिवादी लोग अमीरोंपर आयकर लगना चाहिये, इसके बहुत ही पक्षमें हैं वह आमदनीपर २० प्र० श० तक कर लगानेके लिये उद्यत हैं। यह क्यों? यह इसीलिये कि इससे असमानता दूर होती है। व्यवसाय-पतियोंकी शक्ति कम हो जाती है और श्रमियोंकी दशा भी सुधारी जा सकती है। आजकल सभी सम्पत्तिशास्त्रज्ञ धनाढ्योंपर क्रमवृद्ध आयकर लगानेके पक्षमें हैं। इसके निम्न-लिखित तीन कारण हैं :—

क्रमवृद्ध आय कर

(१) धनाढ्य तथा साधारण मनुष्य, सभी कुछ कुछ धन बचाते हैं। धनाढ्योंके पास अधिक धन बचता है, दरिद्रोंके पास कम। धनाढ्योंपर यदि क्रमबद्ध आयकर लगा दिया जाय तो दरिद्रों-पर करका भार कम किया जा सकता है। यह किस समाज सुधारकको मंजूर न होगा।

क्रमवृद्ध आय करका धना-ढ्योंपर प्रभाव

(२) धनाढ्योंपर क्रमवृद्ध आयकरका प्रभाव बहुत देर बाद पड़ता है। राज्यकर वही अनुचित होता है जो पदार्थोंकी उत्पत्तिमें

प्रत्यक्ष तथा तात्कालिक बाधा डाले । क्रमवृद्ध आयकरमें यही बात नहीं है अतः यह उचित है ।

जायदाद प्राप्ति तथा बचतपर लगे राज्यकर का उत्पत्तिके साधनों पर प्रभाव

(३) बहुत बार यह भी देखा गया है कि विशेष विशेष देशोंमें जायदाद,प्राप्ति तथा बचतपर लगा हुआ राज्यकर उत्पत्तिके साधनोंपर कुछ भी प्रभाव नहीं डालता। दृष्टान्त तौरपर यदि किसी देशमें उत्पत्तिके साधन तथा संरक्षित पूंजी पर्याप्त अधिक राशिमें विद्यमान हो और राज्यकर एकमात्र संरक्षित पूंजीपर ही जाकर पड़े तो इससे देशकी कुछ संपत्ति, संरक्षित पूंजीके बाहर चले जानेसे, कम हो सकती है। परन्तु इससे उत्पत्तिके साधनोंपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता ।

अथवा कल्पना कीजिए कि किसी जातिका कुछ धन विदेशीय कम्पनियोंके हिस्सों तथा कामोंमें लगा हुआ है। ऐसी दशामें राज्यकरका प्रभाव यही होगा कि विदेशीय संरक्षित पूंजी स्वदेशमें न आसकेगी । उत्पत्तिके साधनोंपर राज्यकरका प्रभाव कुछ भी न होगा । परन्तु यदि किसी देशमें संरक्षित पूंजीकी मात्रा बहुत ही कम हो तो धनाढ्योंकी आमदनीपर लगा हुआ राज्यकर उत्पत्तिके साधनोंपर ही जाकर पड़ेगा । इससे देशके व्यापार व्यवसायको बड़ा भारी धक्का पहुँच सकता है । भारतवर्षमें आयकरकी मात्राका प्रभाव यही है ।

उत्पत्तिके सदृश ही व्ययपर भी राज्यकरका

प्रभाव भयंकर होता है। जब कभी व्यावसायिक कर या आयातकर किसी पदार्थपर लगाया जाता है तो उस पदार्थकीकीमत प्रायः बढ़ जाती है। कीमतका बढ़ना उसपदार्थके व्ययको कम कर देता है। यदि हालैण्डमें शक्करसे, इंग्लैंडमें तमाखूसे और भारतमें स्पिरिटसे इसी प्रकारके राज्यकर हटा दिये जांय तो इन पदार्थोंका व्यय भिन्नभिन्न देशोंमें बढ़ सकता है। स्पिरिटपरसे कर हटते ही भारतवर्षमें भी प्रत्येक प्रकारकी विदेशीय दवाइयोंका बनाना सुगम हो जाय और शक्करके कारखाने लाभपर चलने लगें। इस एक ही राज्यकरने शक्कर तथा औषधियोंकी वृद्धिको रोका हुआ है। मकानोंपर राज्यकर लगनेका बहुत बार यह प्रभाव होता है कि लोग मैले मकानोंमें रहने लगते हैं। सारांश यह है कि व्ययपर लगे हुए राज्यकर समाजके रहन सहनको खराब कर देते हैं। कुछ एक व्ययी पदार्थोंपर राज्यकर लगनेका दूसरा मतलब यह है कि लोग उन पदार्थोंका प्रयोग करना छोड़दें और ऐसे पदार्थोंका उपयोग करें जिनपर राज्यकर नहीं है। प्रश्न तो यह है कि क्या लोग करयोग्य पदार्थोंका प्रयोग छोड़कर राज्यकरसे सर्वथा ही बच गये? कभी भी नहीं। क्योंकि करद-पदार्थोंके प्रयोगके छोड़नेसे उनको जो कष्ट होगा क्या वह कष्ट राज्यकरका परिणाम नहीं है। धन या मुद्राके विचारसे लोग करसे मुक्त कहे जा सकते हैं? परन्तु सुख

व्ययपर राज्य करका भयकर प्रभाव

तथा आनंदके विचारसे नहीं। यही कारण है कि वे राज्यकर समाजके लिये हानि कर समझे जाते हैं, जिनके कारण लोगोंको जीवनोपयोगी पदार्थों-का प्रयोग छोड़कर कष्ट उठाना पड़े या जिनके कारण स्वदेशीय व्यवसाय लाभके न होनेसे रसा-तलमें मिल जांय। वही राज्य सभ्य समझे जाते हैं, जोकि इस प्रकारके राज्य करोंको नहीं लगाते हैं। *

——o——

२—राज्यकर विचालन

(Deflection of taxes)

कर विचालनके द्वारा करभारका कम हो जाना।

पूर्व प्रकरणमें यह दिखाया जा चुका है कि राज्यकरकी राशिके कम होते हुए भी करभार अत्यन्त अधिक हो सकता है। अब इस प्रकरणमें यह दिखानेका यत्न किया जायगा कि राज्यकरकी राशिके अत्यन्त अधिक होते हुए भी करभार कुछ भी नहीं हो सकता है। यह घटना राज्यकर विचालनके द्वारा ही हो सकती है। राज्यकर विचालनसे तात्पर्य यह है कि राज्यकरका भार करद अपने ऊपर न पड़ने दे। यह बात तभी होती है जब कि (१) बहुतसे कारणोंसे राज्यकर-का भार विदेशियोंपर जा करके पड़े (२) या किन्हीं अन्य कारणोंसे राज्यकरका भार करदपर जाकरके न पड़े।

* पन, जी० निकल्सन-प्रिन्सिपल्स आफ इकानामिक्स (१९१२) भाग २, पृष्ठ ३८२–३९१

(१) आयात करके द्वारा राज्यकरका भार शुरू शुरूमें विदेशियोंपर ही आ कर पड़ता है। इस विषयपर हम अपने संपत्ति शास्त्रमें पर्याप्त अधिक प्रकाश डाल चुके हैं। यहांपर हमको जो कुछ लिखना है वह यही है कि आयातकर लगते ही विदेशियोंको अपने कारखाने टूटनेका भय हो जाता है। इस भयसे विदेशीय व्यवसाय-पति अपने ऊपर ही आयात करको लेनेका यत्न करते हैं और अपने मालका दाम बाजारमें नहीं चढ़ने देते हैं। परन्तु यह बात कुछ समयतक ही रहती है। जब वह लोग आयात करका भार उठानेमें असमर्थ हो जाते हैं और उनके कारखाने चलनेसे रुक जाते हैं तो आयातकर उसी देशके लोगोंपर जाकर पड़ता है, जहां कि आयातकर लगा होता है। यदि कोई देश विदेशीय कृषिजन्य पदार्थको स्वदेशमें राज्यकरके सहारे न आने दे तो ऐसी दशामें विदेशीय कृषिजन्य पदार्थोंकी मांग तथा कीमतके कम होनेसे विदेशीय व्यापार-को बड़ाभारी धक्का पहुँच जाता है।

आयातकरका विचालन।

निर्यात करमें भी कर विचालनका यही नियम है। कल्पना कीजिये कि अमरीकाने अपनी रुईपर निर्यात कर लगा दिया है और इसी अनुपातमें उसने बाहरसे आनेवाले सूतपर आयातकर लगा दिया है। इसका परिणाम यह होगा कि कीमतों के घटजानेसे अमरीकन लोग रुई बोना छोड़

निर्यात करका विचालन

देंगे। इससे रुईकी उपलब्धि कम हो जायगी और सारे संसारमें रुईका दाम चढ़ जायगा। इस प्रकार अमरीकन निर्यातकरका बहुतसा भाग विदेशियोंपर जा पड़ेगा।

कर विचालन-की सीमा।

(२) करदपर राज्यकरका कुछ भी भार न पड़े यह बहुत ही कठिन है। विशेष विशेष अवस्थामें ही यह संभव है। यदि कोई मजदूर राज्यकर लगानेके बाद अधिक काम करना शुरू करे और अपनी दैनिक आमदनीको पूर्वोपेक्षा बढ़ा ले और इस प्रकार राज्यकर देनेपर भी उसकी आमदनी ज्योंकी त्यों पूर्ववत् बनी रहे, तो ऐसी हालतमें यह कहना कि उस मजदूरपर राज्यकरका कुछ भी भार नहीं पड़ा है, सत्यका अपलाप करना होगा। क्योंकि राज्यकरका भार उस मजदूरपर अधिक कामके रूपमें आकर पड़ा है। अर्थात् रुपयोंके रूपमें उसपर करका भार न पड़कर श्रमके रूपमें उसपर करका भार पड़ा है। उस समय कर विचालन पूर्ण समझा जाता है जब कि व्यवसायपति करभारसे बचनेके लिये अपने कारखानोंके खर्चेको वैज्ञानिक, शिल्पीय या यांत्रिक उन्नतियोंके द्वारा कम करनेका यत्न करे और अपनी आमदनीको पूर्ववत स्थिर रखे। जर्मनीमें यही बात हो चुकी है। शक्कर पर राज्यकरके लगते ही जर्मन व्यवसाय पतियोंने चुकुन्दर की थोड़ी राशिसे ही पूर्ववत् शक्कर निकालना शुरू किया

और इस प्रकार राज्यकरके भारसे बच गये। यही कारण है कि राज्यकर-भारका यह विचित्र गुण देखा गया है कि उचित मात्रामें तथा बुद्धिपूर्वक करके लगानेसे न्यून व्ययपर ही लोग पूर्ववत् पदार्थ उत्पन्न करते हैं और दिनपर दिन नये नये आविष्कारोंको निकालते हैं। उचित मात्रामें तथा बुद्धिपूर्वक इन शब्दोंका प्रयोग इसलिए है कि थोड़ीसी गलती से राज्यकर भयंकर नुकसान भी पहुँचा देता है। आविष्कार आदि निकालनेके लिये लोगोंको उत्तेजित करनेके बजाय उनको आलसी तथा निरुत्साही बना देते हैं, लोगोंको पदार्थोंके उत्पत्तिमें रुचि तथा उनकी उत्पादक शक्तिको कम कर देते हैं। राज्यकर उस जहरके समान है जो अल्पमात्रामें ताकत देनेका और बहुमात्रामें मारनेका काम करता है। भारतवर्षमें राज्यकरका प्रयोग उचित विधिपर नहीं है। यही कारण है कि राज्य कर हमारे जातीय व्यवसायोंको नष्ट कर रहा है और देश दिनपर दिन दरिद्र होता जाता है। यही कारण है कि राज्यकर लगानेकी शक्ति भारतियोंको अपने ही हाथमें रखनी चाहिये, जबतक भारतीय यह न करेंगे तबतक वह दरिद्रसे समृद्ध न हो सकेंगे। *

राज्य-करसे आविष्कारोंका होना

* एन० जी० पियर्सन—प्रिन्सिपल्स आफ इकानामिक्स (१९१२) भाग २, पृष्ठ ३८१-३८६

३—राज्यकर संरोपण ❀।

कर संरोपण का तात्पर्य

बहुतसे राज्यकर कर संरोपणरूपी घटनाको उत्पन्न करते हैं। प्रश्न हो सकता है कि करसंरोपणका क्या मतलब है? इसको निम्नलिखित दृष्टान्तके द्वारा बहुत ही उत्तम विधि पर समझाया जा सकता है। कल्पना करो कि भारतीय सरकार जातीय ऋण पत्रके रखनेवालों पर कुछ राज्य कर लगा देती है। इस हालतमें जातीय ऋण पत्रका बाजारमें मूल्य गिर जाना स्वाभाविक ही है। जातीय ऋण पत्रके मूल्यके गिरनेका सब से मुख्य प्रभाव उन्ही पर पड़ेगा जिनके पास ऐसे पत्र होवेंगे। वह इस हानिकर प्रभावसे किसी प्रकार भी न बच सकेंगे। सन् १८६८में यही घटना उत्पन्न हो चुकी है। इसी घटनाको कर संरोपणके नामसे पुकारा जाता है। क्योंकि राज्य करका भार तत्कालीन जातीय ऋणपत्रके मालिकों पर अवश्य ही पड़ता है।

❀ राज्यकर संरोपण = आमार्टिज़ेशन आव टैक्सिज (Amortisation of taxes).

Principles of economics by N. G. Pieson (1912). Vol. II P. P. 391—396.

एन० जी० पियर्सन लिखित प्रिन्सिपल्स आव इकानामिक्स। संस्करण १९१२। द्वितीय भाग। पृ० ३९१—३९६।

बहुतसे संपत्तिशास्त्र कर प्रक्षेपणके * प्रकरण में ही कर संरोपणको रखते हैं। परन्तु यह उचित नहीं है। क्योंकि कर प्रक्षेपण तथा कर संरोपण में बड़ा भारी भेद है। कर संरोपण कर प्रक्षेपणसे सर्वथा ही उल्टा है। ऊपर लिखा जा चुका है कि जातीय ऋण पत्रके मालिकों पर लगा हुआ राज्य कर उन्हीं पर जाकरके पड़ता है। वह उस राज्य कर भारसे अपने आपको किसी भी तरीकेसे नहीं बचा सकते हैं। कर प्रक्षेपणमें इससे विपरीत दिखानेका यत्न किया जाता है। अस्तु, संरक्षित पूंजी पर लगे हुए राज्य करसे भी संरक्षित पूंजियोंके मालिकोंका बचना कठिन होजाता है, क्योंकि राज्य कर लगते ही संरक्षित पूंजीका बाजारी मूल्य गिर जाता है और साराका सारा राज्यकर संरक्षित पूंजियोंके मालिकों पर ही जा पड़ता है। सारांश यह है कि कर संरोपण की घटना सहसाही उत्पन्न होती है और इससे बचना बहुत ही कठिन होता है।

कर प्रक्षेपण तथा करसंरोपणका सबन्ध

ऊपरि लिखित दृष्टान्तोंके कुछ एक अपवाद भी हैं। उनमें यह जानना बहुत ही कठिन है कि कर संरोपण कब होगा और कब नहीं होगा? यही कारण है कि बहुत स्थानोंमें कर संरोपण (1)

कर संरोपण का भिन्न भिन्न स्वरूप

* कर प्रक्षेपण = इन्सिडेन्स आव् टैक्सिज (Incidence of taxes)

पूर्णया (ii) अपूर्ण (iii) सहसा या (iv) मन्द होता है। किन २ स्थानोंमें कर संरोपण किस प्रकारका होता है इसको अब हम एक दूसरे दृष्टान्तके द्वारा समझानेका यत्न करेंगे।

कागजा बाजारी मालपर राज्य करका संरोपण

कल्पना करो कि राज्यने सब प्रकारके कागज़ों हुण्डियों तथा कागज़ी बाजारी पदार्थों पर और सारी की सारी कम्पनियोंके हिस्सेदारों पर एक सदृश राज्य कर लगा दिया है। यह इसीलिये कि कोई भी राज्य करसे बच न सके। यहां पर जो कुछ विचार करना है वह यही है कि ऐसी हालतमें कर संरोपण की घटना किस प्रकार उत्पन्न होगी? इस प्रश्नको सरल करनेके लिये बहुतही गम्भीर विचार करने की जरूरत है। क्योंकि इस प्रश्नमें दो प्रकारकी घटनायें सम्मिलित हैं। जातीय ऋण पत्रपर लगा हुआ राज्यकर उसके सारेके सारे मालिकों पर एक सदृश जाकर पड़ता है चाहे वह अपने देशके रहनेवाले हों और चाहे वह विदेशके रहनेवाले हों। यही कारण है कि म० पियर्सन इस प्रकारके राज्य करको वास्तविक कर (real tax) के नामसे पुकारते हैं। उनके विचारमें वास्तविक करमें दो विशेषतायें हैं।

म० पियर्सनके विचारमें वास्तविक कर

(१) राज्यकर विशेष प्रकारकी आमदनीके साधनोंपर ही लगाया जाता है।

(२) इस राज्यकरमें करदकी जाति, विजाति या परिस्थितिका कुछ भी ख्याल नहीं किया जाता है।

दृष्टान्त तौरपर भौमिक कर * मिश्रितपूंजी वाली कंपनियोंके लाभपर लगा हुआ राज्यकर, भिन्न २ बैंकोंको प्रमाण पत्र देनेका राज्यकर तथा इसी प्रकारके और बहुतसे कर वास्तविक करके ही उदाहरण हैं। वास्तविक कर आदमनी को देनेवाले पदार्थों पर ही लगाया जाता है। इससे इस बातका कुछ भी ख्याल नहीं होता है कि वह पदार्थ किसके पास है। इसी प्रकार विदेशीय संरक्षित पूंजी पर लगे हुए राज्यकर को वास्तविक कर नहीं कहा जा सकता है क्योंकि विदेशीय लोग संरक्षित पूंजीको अपने देशमें मगा लेंगे और इस प्रकार राज्यकरसे मुक्त हो जांयगे। यदि भारतवर्षमें आष्ट्रियन बांड्ज रशियन बांड्ज पर अमेरिकन रेलवे डिबंचर्ज राज्यकर लग जाय तो उनकी आमदनी पूर्ववत् ही बनी रहेगी। केवल भारतीयोंको ही उनकी आमदनीमेंसे राज्यकर देना पड़ेगा। दूसरे देशके लोग इनसे पूर्ववत् ही लाभ उठावेंगे। यही कारण है कि भारतवर्षमें इनका दाम विदेशोंकी अपेक्षा गिर जायगा। इस दशामें इस करको वास्तविक कर कैसे कहा जा सकता है? जब कि वह सबपर एक सदृश न पड़ता हो?

वास्तविक कर के उदाहरण

उपरिलिखित अवास्तविक करके कारण भारत

* भौमिक कर = लैन्ड टैक्सिस (Land taxes).

अवास्तविक करका भारतीय कागजों पर प्रभाव

वर्ष तथा अन्य देशोंकी स्थितिमें बड़ा भारी भेद आजाता है। राज्यकरके कारण भारतवर्षमें उपरिलिखित कागजोंका दाम गिरनेसे भारतीयोंको बड़ाभारी नुकसान पहुँचेगा। इसको समझनेके लिये कल्पना करो कि उपरिलिखित कागजोंका दाम १०० तथा लाभ ३० प्र० श० है। यदि लाभका २/३ राज्यकरके तौरपर भारतीयोंको सरकारको देना पड़े तो परिणाम यह होगा कि उनकागजोंका बाजारमें ८० दाम हो जायगा। विदेशीय लोग उन कागजों को भारतवर्षसे खरीद लेंगे और अपने देशोंको उन कागजोंको बेंच कर २० प्र० श० लाभ उठावेंगे। इससे भारतको जो घाटा होगा वह स्पष्ट ही है।

राज्य कर तथा शेयर मार्केट

उपरिलिखित कागजों पर राज्यकर लगनेसे भारतके अन्य बाजारी कागजोंकी क्या दशा होगी? इसपर विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। इसपर विचार करनेसे पूर्व निम्नलिखित दो बातोंका ध्यान करलेना जरूरी है।

(१) राज्यकर किस प्रकार लगाया गया है?

(२) करद कागजोंका क्रयविक्रय विदेशमें किस प्रकार हो रहा है?

यदि भारतके अन्य बाजारी कागजोंपर जातीय ऋणके सदृश ही राज्यकरके लगे या उन पर राज्यकर लगते ही उनका विदेशमें क्रयविक्रय रुक जाय तो उनका मूल्य जातीय ऋणके सदृश ही होगा। यदि उनपर रशियन बौंड्ज़के सदृश

लगाया जाय और राज्यकर एक मात्र भारतीयों-पर ही आकरके बड़े तो उनका विदेशमें चला जाना स्वाभाविक है।

उपरिलिखित संदर्भसे हमारा जो कुछ मतलब है वह यही है कि कर संरोपणकी घटना प्रायः वास्तविक करोंमें ही उपस्थित होती है। प्रश्न जो कुछ उठता है वह यही है कि क्या कोई ऐसे भी वास्तविक कर हैं जिनमें करसे रोपण न होता हो ? क्या छोटे देशोंके सदृश ही बड़े देशोंमें भी यह घटना एक सदृश ही काम करती है? करसं-रोपण कब पूर्ण तथा कब अपूर्ण होता है?

ऊपर लिखित प्रश्न बहुत ही गम्भीर हैं। उनको समझनेके लिये कल्पना करो कि जर्मनी जैसा बड़ा देश अपने देशकी संरक्षित पूंजीपर इस विधिसे राज्य कर लगाता है कि वह साराका सारा राज्य कर एक मात्र जर्मनोंको ही देना पड़े। इसका परिणाम यह होगा कि जर्मनीसे संरक्षित पूंजी विदेशमें जाना शुरू होजायगी। इससे जर्मनीके बड़े होनेके कारण करसंरोपण रूपी घटना अपूर्णरूपमें प्रगट होगी। क्योंकि जर्मनीकी संरक्षित पूंजीका दाम गिरते ही, उसके सस्ता होनेसे विदेशी लोग उसीको खरीदेंगे और अन्य कागजोंका खरीदना छोड़ देंगे। इससे अन्य कागजोंकी उपलब्धि मांगसे बढ़ जायगी और उनका दाम भी कुछ २ गिर जायगा। परिणाम

इसका यह होगा कि करदजर्मन संरक्षित पूंजीका मूल्य भी राज्य कर की मात्रा तक न गिर सकेगा क्योंकि अन्य कागजोंके दाम गिरनेसे उसका दाम राज्य करकी मात्रा तक गिरनेसे पूर्व ही थम जायगा। और विदेशीय लोग अन्य जर्मन कागजोंको सस्ता होनेसे खरीदना शुरू कर देंगे। इस प्रकार यहां कर संरोपण अपूर्णरूपसे प्रगट होगा।

असली बात तो यह है कि कर संरोपण विशेष २ अवस्थाओंमें ही होता है। यह अवस्थायें सदा पूर्ण रूपसे प्रकट नहीं होती है। यही कारण है प्रत्येक विषयमें कर संरोपणका विचार पृथक २ ही करना चाहिये।

वास्तविक करोंमें भी करसंरोपणका अभाव

वास्तविक करमें कर संरोपणकी घटना किस प्रकार उपस्थित होती है? इसपर हम अभी प्रकाश डाल चुके हैं। आश्चर्य तो यह है कि वास्तविक करोंमें भी कर संरोपण सदा नहीं होता है। इसको देखनेके लिये गृह लगानको ही लेलीजिये। संपत्तिशास्त्रमें यह दिखाया जा चुका है कि जिन २ देशोंमें आबादी तथा संपत्ति बढ़ती पर हो और इसी लिये अधिक २ मकानोंके बनानेकी जरूरत हो वहाँ पर व्याजवृद्धिके सदृशही राज्यकरका प्रभाव पड़ता है। यदि व्याजकी मात्रा ४ प्र० श० हो और मकान बनानेमें ३.६ प्र० श० हो तो कोई भी अपनी पूंजीको मकान बनानेमें नहीं लगा

सकता है। यदि मकानका किराया बढ़कर ४½ प्र० श० पहुँच जाय तो लोग उसमें अपनी पूञ्जी लगा सकते हैं। यही कारण है मकानोंकी माँग जब बहुत ही अधिक बढ़ जाती है तो गृह कर * एक मात्र किरायेदारोंपर ही जा पड़ता है। इस हालतमें गृहकर कर-संरोपणका क्षेत्र पारकर करप्रक्षेपणके क्षेत्रमें प्रविष्ट होजाता है। यही कारण है कि अब हम करप्रक्षेपणके सिद्धान्तोंको दे देना आवश्यक समझते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि करप्रक्षेपण तथा करसंरोपणके नियम एक सदृश ही हैं। क्योंकि कर संरोपणमें हम करकी स्थिरताका और कर-प्रक्षेपणमें हम करकी गतिके नियमका पता लगाते हैं। करकी स्थिरताके नियमोंको जानते समय हमको करकी गतिके नियमोंसे काम पड़ता है और करकी गतिके नियमोंको जानते समय हमको करकी स्थिरताके नियमोंसे काम पड़ता है। आश्चर्य्य तो यह है कि दोनोंके ही नियम एक सदृश हैं। अतः कर-प्रक्षेपणके नियमोंको हम विस्तृत तौरपर देनेका यत्न करेंगे। †

गृहकर

कर प्रक्षेपणक तथा कर सरोपण

---

* गृहकर = हाउस टैक्स (House tax)

† एन० जी० पियर्सन लिखित प्रिन्सिपल्स आव इकानामिक्स मारकरण १८९२। द्वितीय भाग। पृ० ३६६—४०३।

४—राज्यकर प्रक्षेपण *।

राज्यकर प्रक्षेपणका तात्पर्य

कर-प्रक्षेपणका विषय अति कठिन है। प्रत्यक्ष-से प्रत्यक्षका कर लगाते हुए भी राज्य बहुत बार उन लोगोंपर करका भार डालनेमें असमर्थ हो जाते हैं जिनपर कि वह करका भार डालना चाहते हैं। दृष्टान्त तौरपर कल्पना करिये कि राज्य मकानके मालिक तथा किरायेदार दोनोंपर ही पृथक् पृथक् प्रत्यक्ष कर लगाता है। प्रत्येकके लिये करका अनुपात भी निश्चित कर देता है। परन्तु होता क्या है? कभी कभी किरायेदार अपने करका भार मकानके मालिकपर फेंक देता है और कभी कभी मकानका मालिक अपने करका भार किरायेदार पर फेंक देता है। यही नहीं। कभी कभी यही करका भार मकानके मालिक या किरायेदार किसी पर भी न पड़ कर भौमिक लगान या व्यावसायिक लाभोंपर जा पड़ता है। बहुत बार जायदाद करका परिणाम भूमियोंकी भूक्तिका घटना होजाता है।

कर-प्रक्षेपणका ध्यानयोग्य बातें

कर-प्रक्षेपणका अनुशीलन करते समय अन्य बहुत सी बातोंका ध्यान रखना चाहिये। क्योंकि यह प्रायः होता है कि (१) राज्य जिस उद्देश्यसे कर लगाता है, उसका वह उद्देश्य पूर्ण

* राज्यकरप्रक्षेपण = इंसिडेन्स आव टेक्सेशन (Incidence of taxation)

नहीं होता है। (२) राज्यको यह पता नहीं चलता है कि अमुक करका भार किधर और किस पर पड़ रहा है (३) और उसके परिणाम क्या हुए? और वह परिणाम देशके लिये हितकर हैं या अहितकर? । यह प्रायः होजाता है कि करभारसे हानि पहुँचनेके स्थानपर उल्टा देशको लाभ हो जाय। आंग्ल राजाओंने स्वार्थवश विदेशीय पदार्थों पर सामुद्रिक कर अधिकराशिमें लिया इससे स्वदेशमें विदेशीय पदार्थोंकी कीमतें चढ़ गयीं। परन्तु कीमतोंके चढ़नेके साथही आंग्लव्यवसायोंमें जीवन पड़ गया। संरक्षक सामुद्रिक-कर*का प्रयोग भिन्न भिन्न राज्य स्वदेशीय व्यवसायोंके संरक्षणमें करते हैं परन्तु इसका परिणाम यह होता है कि बहुतसे स्वदेशीय व्यवसाय एकाधिकारीका रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि करप्रक्षेपणके द्वारा राज्यका न्याययुक्त राज्यकर अन्याययुक्त और अन्याययुक्त राज्यकर न्याययुक्त होसकता है। यही कारण है कि कर लगाते समय राज्योंको करप्रक्षेपणका और साथ ही इन दो बातोंका ध्यान कर लेना चाहिये।

(१) राज्यकर प्रत्यक्ष तौरपर कौन देता है?

(२) राज्यकरका वास्तविक भागी कौन है?

कर प्रक्षेपणकी समस्या एक प्रकारसे धन-

* संरक्षक सामुद्रिककर = प्रोटेक्टिव् ड्यटीज् (Protective duties)

कर प्रक्षेपण धन विभागकी समस्या है।

विभागकी समस्या है। जिस प्रकार धनविभाग विनिमयका एक भाग नहीं कहा जा सकता है उसी प्रकार करप्रक्षेपणको मूल्य सिद्धान्तका एक रूप प्रगट करना वृथा है। अब हम यह दिखानेका यत्न करेंगे 'राज्यनियम तथा देश प्रथाका कर प्रक्षेपणमें क्या भाग है?'*

(क)

राज्यनियम तथा देशप्रथाका कर प्रक्षेपणमें भाग

राज्य नियम तथा देश प्रथा का करप्रक्षेपण में भाग

देशप्रथा तथा राज्यनियमका कर प्रक्षेपणकी शक्तिके साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। ग्रामों तथा फ्यूडल देशोंमें करप्रक्षेपणका मुख्य स्रोत देशप्रथा तथा राज्यनियम ही कहे जा सकते हैं। ऐंग्लो-सैक्सन तथा नार्मन राज्योंमें इङ्गलैंडमें जमींदारोंसे सब प्रकारके राज्यकर लिये जाते थे। जमींदार लोग अपने राज्यकरका भार छोटे छोटे आसामियों पर फेंक देते थे। दृष्टान्त तौरपर स्कूटेज नामक करको ही लीजिये। प्रत्येक नाइटको ४० शिलिङ्ग स्कूटेजमें राज्यको देना पड़ता था। इस ४० शिलिङ्गको वह अपने ६ बड़े बड़े आसामियोंपर बांट देता था। इस प्रकार प्रत्येक आसामीपर २ शि० ६ पेन्सका स्कूटेज आकर पड़ता था। उन दिनों विनिमयकी अतिशय वृद्धि न होनेके कारण संपूर्ण राज्यकर करप्रक्षेपणके अनुसार

* पोलक तथा मेटलैन्ड लिखित हिस्टरी आव इंग्लिश ला भाग १। पृ० ६०५।

भूमिपति या कृषकपर आ पड़ते थे। गौ, बैल, धन आदि चल वस्तुओंपर लगाया हुआ राज्य-कर भी भूमिपर ही आ पड़ता था। महाशय पोलक तथा मेट्लैण्डका कथन है कि उन दिनों में विनिमयके अधिक न होनेसे "चलवस्तुओंपर लगाया हुआ राज्यकर निराधार न रहकर भूमि-पर ही आ पड़ता था" * भारतमें अबतक यही दशा विद्यमान है। भारतमें रैय्यतवारी तथा जमींदारी बन्दोबस्त द्वारा भूस्वामियोंसे राज्य लगान लेता है। जमींदारी बन्दोबस्तवाले स्थानोंमें लगान वृद्धिका संपूर्ण प्रभाव आसामियों पर ही आकर पड़ता है। परन्तु आजकल जिस प्रकार विनिमय तथा प्रण द्वारा कर-प्रक्षेपण होता है वह फ्यूडल कालमें भिन्न भिन्न देशोंके अन्दर न विद्यमान था। अब वह दिखानेका यत्न किया जावेगा कि विनिमय तथा प्रणमें कर-प्रक्षेपणकी क्या गति रहती है।

(ख)

विनिमय तथा प्रणका कर प्रक्षेपणमें भाग।

आजकल राज्य, भिन्न भिन्न पदार्थोंके द्वारा मनुष्योंपर कर लगाता है। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्य

* (निकल्सन कृत प्रिन्सिपल्स आव् पुलिटिकल इकनामी। संस्करण३ १९०८)। तृतीय भाग पृ० २९८–३०७।

अपनी अपनी परिस्थितिके अनुसार राज्यकर एक दूसरेपर फेंक देते हैं। देशप्रथा तथा राज्यके स्थानपर कर-दाताओंकी शक्तिपर ही अब कर-प्रक्षेपण निर्भर करता है। जब कि कोई राज्यकर किसी पुरुष पर लगता है, वह अपनी संपूर्ण आर्थिक अवस्थाका निरीक्षण करता है और वह सोचता है कि यह राज्यकर कहां पर फेंका जा सकता है। राज्यनियम द्वारा करभारके हल्का करनेमें रोका जा करके भी विनिमय द्वारा वह करभारको यथाशक्ति दूसरों पर फेक देता है। विनिमयके लिये एकसे अधिक मनुष्यकी ज़रूरत होती है। करभारको हल्का करनेके लिये कर-दाता यदि किसीसे प्रार्थना भी करे तोभी कदाचित् ही कोई उसके करभारको अपने सरपर लेनेके लिये तैय्यार हो। परन्तु यह काम कर-दाता अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार सहजसे ही कर लेते हैं और किसीसे प्रार्थना करनेको उनको आवश्यकता भी नहीं पड़ती है।

विनिमय तथा प्रक्षक कर प्रक्षेपणमें भाग

सारा जन समाज विक्रेता या क्रेताके नामसे पुकारा जा सकता है। क्योंकि जहाँ कोई मनुष्य अपनी आवश्यकताओंको क्रेताके रूपमें वहाँ दूसरा मनुष्य अपनी आवश्यकताओंको विक्रेताके रूपमें पूर्ण करता है। इस दशामें यह स्पष्ट ही है कि राज्य क्रेतासे या विक्रेतासे कर लेता कहा जा सकता है।

क्रेता विक्रेताके रूपमें समाजका वर्गीकरण

राज्यकर प्रत-
पण

कल्पना करो कि राज्य, बेचनेवालोंपर पदार्थ-विक्रयकी आज्ञा देनेके कारण राज्यकर लगाता है। विक्रेता इस करभारसे तंग आकर यदि खरीदनेवालोंसे प्रार्थना करे कि आप हमारे कर-भारको कुछ अपने ऊपर ले लीजिये और हमको इस करभारसे बचाइये तो शायत् ही उसपर कोई अनुग्रह करे। यह न कर वह अपने करभार-को सहजसे ही खरीदनेवालोंपर फेंक सकता है। यदि तो बेचनेवालेका विक्रेय पदार्थमें एकाधिकार होगा, तब तो वह उस पदार्थ का मूल्य बढ़ा कर अपना करभार खरीदनेवालोंपर फेंक देगा। परन्तु यह तभी सम्भव है कि कीमत बढ़नेपर भी पदार्थकी मांग स्थिर रहे। यदि मांग लचकदार हो और विक्रेताओंके विक्रेय पदार्थकी कीमत बढ़ते ही उसकी मांग कम होजाय तो राज्य-करका सारा भार बेचनेवालोंपर ही पड़ेगा। वह किसी भी तरीकेसे खरीदनेवालोंपर अपना भार न फेंक सकेंगे। इसी प्रकार राज्य यदि राज्यकर पदार्थ खरीदनेकी आज्ञा देनेके बदले क्रेताओंपर लगावे तो प्रार्थना करनेपर भी बेचने-वाले पदार्थों की कम कीमत ले करके उस राज्य-भारको अपने ऊपर कभी भी न लेंगे। ऐसी हालतमें खरीदनेवाले कर देनेके कारण आय कम होजानेसे पदार्थोंका खरीदना कम कर दें तो यदि इस मांगकी कमीसे विक्रेता पदार्थोंका मूल्य

घटा दें तो राज्यकरका भार बेचनेवालोंपर आ पड़ेगा। परन्तु यदि वह मांगके कम होनेपर भी मूल्य न घटावें तब करका सम्पूर्ण भार खरीद-नेवालोंपर ही पड़ेगा। वह किसी प्रकारसे कर-भारसे अपने आपको न बचा सकेंगे।

कर प्रक्षेपणका उपलब्धि तथा मांग सिद्धान्त

कर प्रक्षेपणका सिद्धान्त

विक्रेतापर करका तात्कालिक प्रभाव उसकी मांगको कम कर देना है। क्योंकि पूर्व कीमतकी अपेक्षा पूर्व कीमत योग राज्यकर (क्रेता पर राज्यकर पड़ जानेका या कीमतके बढ़ जानेका एक सदृश प्रभाव होता है) पर मांगका कम हो जाना स्वाभाविक ही है। मांगके कमीकी लचक आव-श्यकताकी घनता तथा लचक और दूसरे पदार्थों-के प्रयोग पर निर्भर करती है। यदि एक पदार्थ पर राज्यकर लगे और उसके स्थानपर प्रयुक्त होनेवाले अन्य पदार्थ ज्यों त्यों बने रहें तो उस पदार्थकी मांग कम हो जायगी। परन्तु यदि उसके स्थानपर प्रयुक्त होनेवाले अन्य पदार्थोंपर भी एक सदृश ही राज्यकर लगा दिया जाय तो उस पदार्थकी मांगमें बहुत भेद न पड़ेगा। इसमें सन्देह भी नहीं है कि कुछ न कुछ उसकी मांग अवश्य ही घट जायगी।

पदार्थोंकी मांगके सदृश ही राज्यकरका उनकी उपलब्धिपर प्रभाव पड़ता है। विक्रेतापर राज्यकर

लगानेका दूसरा अर्थ पदार्थका उत्पत्ति व्यय बढ़ जाना और इस प्रकार पदार्थकी उपलब्धिका कम हो जाना कहा जा सकता है। परन्तु यदि पदार्थकी उपलब्धि स्थिर तथा लचक रहित हो तो विक्रेताओंपर राज्यकर लगानेका पदार्थकी उपलब्धिपर कुछ भी प्रभाव न होगा। उससे विपरीत यदि उपलब्धि अस्थिर तथा लचकदार होगी तो राज्यकरका प्रभाव पदार्थकी उपलब्धि कम कर व्यापार व्यवसायको नष्ट करना होगा।

राज्यकर लगनेसे पदार्थकी मांग कम होते ही (यदि उपलब्धि पूर्ववत् रहे) पदार्थकी कीमत कम होने लगेगी। कीमतकी कमीकी सीमा है। राज्यकरकी राशितक कीमतोंके गिरनेसे पूर्व ही (कीमतकी कमीके कारण) उपलब्धिके कम होजानेपर उपलब्धि तथा मांगका आर्थिक संतुलन किसी अन्य ही स्थानपर होजायगा। यदि राज्यकर विक्रेतापर लगे तो (यदि मांग पूर्ववत् रहे) इसका तात्कालिक प्रभाव कीमत (जोकि क्रेता देंगे) को बढ़ा देना होगा। कीमतकी वृद्धिकी सीमा है। राज्यकरकी राशितक कीमतोंके बढ़नेसे पूर्वही (वृद्ध कीमतके कारण) मांगके कम होजानेसे उपलब्धि तथा मांगका आर्थिक संतुलन किसी अन्यही कीमतपर हो जायगा *।

* Edge worth 'Pure theory of taxation' P 48.

मांगपर राज्य करका प्रभाव

यदि क्रेताओंपर सबसे पहिले राज्यकर लगे तो पदार्थोंकी मांग कम हो जायगी। यह मांग किस सीमा तक कम होगी यह उसकी लचकपर निर्भर करता है। मांगकी कमी तथा विक्रेताओंकी स्पर्धाका परिणाम कीमतका घटाव होगा जो उपलब्धिकी लचकसे निश्चित होगा। इसी प्रकार यदि राज्य-करके कारण कीमतोंकी वृद्धि पदार्थोंकी मांग (जो अत्यन्त लचकदार है) को अति सीमा तक कम कर दे तो राज्यकरका अधिक भाग क्रेताओंपर ही जा पड़ेगा (यदि पदार्थोंकी मांग सर्वथा स्थिर तथा लचक रहित होवे)।

उपलब्धिपर राज्य करका प्रभाव

यदि विक्रेताओं पर सबसे पहले पहल राज्य कर लगे तो पदार्थोंकी उपलब्धि कम हो जावेगी। यह उपलब्धि किस सीमा तक कम होगी यह उसकी लचकपर निर्भर करता है। उपलब्धिकी कमी तथा क्रेताओंकी स्पर्धाका परिणाम कीमतका चढ़ाव होगा जो कि मांगकी लचकसे निश्चित होगा। इसी प्रकार यदि राज्य करके कारण कीमतोंका घटाव पदार्थोंकी उपलब्धि (जो अत्यन्त लचकदार है) को अति सीमा तक कम कर दे तो राज्यकरका अधिक भाग क्रेताओंपर ही जा पड़ेगा (यदि पदार्थोंकी मांग सर्वथा स्थिर तथा लचक रहित हो)। विशेष विशेष स्थानोंको छोड़कर प्रायः राज्यकर क्रेता विक्रेता

दोनों पर ही पड़ता है। राज्यकर किसपर अधिक और किसपर न्यून पड़ेगा। यह मांग तथा उपलब्धिकी आपेक्षिक लचकपर निर्भर करता है।

क्रेता तथा विक्रेता पर राज्य-करका प्रभाव

यदि मांग सर्वथा स्थिर तथा लचक रहित हो ता कर क्रेताओंपरही पड़ेगा। यदि मांग तथा उपलब्धि दोनोंही सर्वथा स्थिर तथा लचक रहित हो तो कर क्रेता विक्रेता दोनों परही समान रूपसे पड़ेगा। इसी प्रकार मांग तथा उपलब्धिके सर्वथा अस्थिर तथा लचक दार होनेपर करका प्रभाव व्यापार व्यवसायको नष्ट करना होगा। इसीको चाप द्वारा इस प्रकार प्रगट किया जा सकता है।
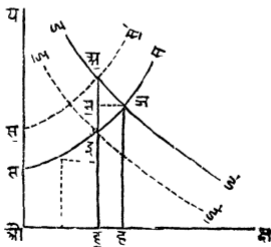
अ इ = राज्य-कर
स स , स स = उपलब्धि
ड ड', ड ड' = मांग
ओ य = कीमत
ओ द = पदार्थकी राशि
अ ह अ ह = कीमत

यदि क्रेताओंपर अ इ राज्यकर लगे तो ड ड' मांगके स्थानपर पदार्थोंकी ड ड' मांग ही रह जावेगी और क्रेतालोग अ ह कीमत देनेके स्थानपर इ ह कीमत ही देवेंगे। इस प्रकार विक्रेता लोगोंको अपने पदार्थोंकी इ ह कीमतही मिलेगी। परन्तु यदि विक्रेताओंपर अ इ राज्यकर लगे तो पदार्थोंकी इ ह वास्तविक कीमत हो जावेगी। इस प्रकार इ ह कीमत पर ओं ह उपलब्धि तथा ओं ह मांग हो जावेगी। इससे स्पष्ट है कि क्रेता या विक्रेता कोई कर देवें परिणाम एकही होवेगा।

अह कीमतसे अ ह कीमत अ न अधिक है। इ ह कीमत अहसे इ न कम है। न अ योग इ न राज्य-करके बराबर है। अब यह स्पष्ट ही है कि यदि डड' अधिक लचक दार होवे और सस' सर्वथा स्थिर तथा लचक दार

रहित होवे तो संपूर्ण राज्य-कर विक्रेता परही आपड़ेगा। इससे विपरीत यदि डड सर्वथा स्थिर तथा लचक रहित होवे और सस' अत्यन्त अधिक अस्थिर तथा लचक दार होवे तो संपूर्ण राज्य-कर क्रेता पर जा पड़ेगा।

यदि राज्यकर क्रेताओं तथा विक्रेताओंसे भिन्न भिन्न अनुपातमें लिया जावे तौभी कोई अन्तर न पड़ेगा और वही परिणाम होगा। परन्तु अ ह का अहसे ऊपर रहना और इ ह का अहसे नीचा रहना डड तथा मम की लचक पर निर्भर करता है।

पञ्चम परिच्छेद

भिन्न भिन्न आयों पर राज्यकर प्रक्षेपण के नियम

१-आर्थिक लगान तथा भूमि पर राज्य कर प्रक्षेपण

शुद्ध भौमिक लगानपर राज्य करका प्रभाव

एक मात्र शुद्ध आर्थिक लगानका जानना बहुत ही कठिन है क्योंकि कृषि-जन्य पदार्थकी उत्पत्ति-में पूंजी श्रम तथा प्रबन्धका भी भाग सम्मिलित होता है। परन्तु विचारमें सुगमताके लिये कल्पनाके तौर पर यह मान लिया जाता है कि 'आर्थिक लगान* पृथक भी मिल सकता है। साधारण तौर पर सीमान्तिक निकृष्ट भूमि † तथा अन्य भूमियोंकी उत्पत्तिमें जो भेद होता है उसीको आर्थिक लगान समझा जाता है। इसीको रुपयोंमें जाननेके लिये सीमान्तिक निकृष्टभूमिके उत्पत्तिव्यय तथा अन्य भूमियोंके उत्पत्ति व्ययोंको जान लिया जाता है और दोनोंमें जो भेद होता है उसको आर्थिक लगान कहा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि भूमिकी उत्पादकशक्ति तथा कीमतों पर आर्थिक लगान का आधार है जोकि साधारण लगानसे सर्वथा भिन्न है।

आर्थिक लगान तथा भूमिपर करका प्रभाव

* आर्थिक लगान = प्यूअर इकानामिक रेंट (Pure Economic rent) † सीमान्तिक निकृष्ट भूमि = मार्जिनल लैन्ड।

स्पष्ट तौरपर देखनेके लिए निम्नलिखित बातोंका मान लेना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

आर्थिक लगान तथा भूमिकर का प्रभाव देखने के लिये स्वयं सिद्धियाँ

(क) भिन्न २ भूमि भागके मालिक भिन्न भिन्न हैं।

(ख) उत्पादक तथा भूस्वामियोंका पारस्परिक मेल नहीं है।

(ग) पदार्थोंकी कीमत तथा भौमिक शक्तिको देख कर ही लगान प्रतिवर्ष नियत किया जाता है।

(घ) भूमिपर केवल एक ही पदार्थ उत्पन्न किया जाता है या भूमि केवल एक ही उद्देश्यके लिए दूसरोंको एक वर्षके लिये दी जाती है।

(ङ) आर्थिक लगानको जाननेके लिए उस उत्पादकशक्ति (श्रम तथा पूँजी) को ही मापक समझा जायगा जो भिन्न भिन्न गुणवाली भूमि पर पदार्थोंको उत्पन्न करनेके लिये लगायी जाती है।

(च) श्रम पूंजीकी मात्राके एक सदृश होते हुए भी आर्थिक लगान भूमिकी उत्पादकशक्ति तथा परिस्थितिकी भिन्नताके कारण भिन्न भिन्न होता है।

उपरिलिखित शर्तोंके पूर्ण होनेपर यह स्पष्ट हो है कि शुद्ध आर्थिक लगानपर लगा हुआ राज्यकर भूमि पतियोंपर ही पड़ता है। उस राज्यकरको किसी भी तरीकेसे भूमिपति दूसरोंपर नहीं फेंक सकते। व्ययियोंपर इस राज्य करका कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। कृषकों पर भी इस राज्यकरका

शुद्ध आर्थिक लगानका भूमि पतियोंपर पड़ना

पड़ना कठिन है क्योंकि स्पर्धाके कारण उनको एक मात्र श्रम तथा पूँजीका ही बदला मिलता है। प्रत्येक भूमिका आर्थिक लगान उत्पत्ति तथा कीमत-का भेद होता है। इसपर लगा हुआ राज्यकर वहां ही रह जाता है जहाँ कि पड़ता है। यही नहीं। यदि राज्यकर इस सीमातक असमान हो कि उत्कृष्ट भूमिकी आमदनी निकृष्ट भूमिकी अपेक्षा भी कम हो जाय तोभी राज्यका भार बाँटा नहीं जा सकता। यही घटना गहरी कृषिमें काम करती है। परिमितता-जन्य* लगानपर पड़ा हुआ राज्यकर भी जहाँका तहाँ पड़ा रह जाता है? सारांश यह है कि उपरिलिखित शर्तोंके पूर्ण होते हुए आर्थिक लगान पर लगा हुआ राज्यकर किसी दूसरे पर भूमिपति लोग नहीं फेंक सकते हैं। यदि राज्यने शुरू शुरूमें कर आसामीपर लगाया हुआ है तो वह आसामी उसको भौमिक लगान मेंसे निकाल लेगा। क्योंकि यदि भूमिपति उसको ऐसा न करने दें तो वह अपनी पूँजी वहाँसे निकाल कर अन्यत्र लगा लेगा।

आर्थिकलगान-का कृषि पर प्रभाव

उपरिलिखित शर्तें प्रायः सदा पूर्ण नहीं होती हैं। पूर्व परिच्छेदमें दिखाया जा चुका है कि खास खास हालतोंमें आर्थिक लगान कृषिजन्य पदार्थ-की कीमतोंको भी प्रभावित कर सकता है। प्रायः भूमि भिन्न भिन्न पदार्थोंको उत्पन्न करती है। यदि

* परिमितताजन्य लगान = स्केर्सिटीरेण्ट (Scarcity Rent)

राज्यकर किसी विशेष पदार्थोंकी उत्पत्तिपर ही लगाया जाय तो भूमियां उस पदार्थका उत्पन्न करना छोड़ कर अन्य पदार्थोंका उत्पन्न करना शुरू कर देंगी। परिणाम इसका यह होगा कि कर लगे हुए पदार्थकी उत्पत्ति कम होनेसे उसका मूल्य चढ़ जायगा और कर व्ययियोंपर जा पड़ेगा। दृष्टान्तके तौर मानलीजिए कि रुईके उत्पन्न करनेमें राज्यकर लगता है, और गेहूँके उत्पन्न करनेमें राज्यकर नहीं लगता है होगा क्या? जो रुईकी भूमि गेहूँ उत्पन्न कर सकेगी वह रुईको उत्पन्न करना छोड़ देगी और गेहूँ उत्पन्न करना शुरू कर देगी और राज्यकरसे बच जायगी। परन्तु जो भूमि ऐसा न कर सकेगी उसको राज्यकर सहना ही पड़ेगा। जितना जितना भूमि रुई बोना छोड़ेगी उतना उतना राज्यकर व्ययियों पर जा पड़ेगा।

करका उत्पत्ति और मूल्यपर प्रभाव

व्ययियों पर करका भार

भौमिक लगानके परिच्छेदमें यह स्पष्ट तौरपर प्रकट किया जा चुका है कि किस प्रकार प्रत्येक पदार्थकी उत्पत्तिमें भौमिक लगानके सदृश ही श्रमीय तथा पूँजीय लगान भी होता है। यही कारण है कि बहुत बार सीमान्तिक निकृष्ट भूमि-पर राज्यकरके लगनेपर भी कृषक लोग पदार्थोंको उत्पन्न करते जाते हैं और राज्यकर अपने श्रमीय या पूँजीय लगानमेंसे चुकता कर देते हैं। यह घटना वहाँ पर ही प्रायः काम करती है जहाँ

आर्थिक लगान पर राज्यकर-का प्रभाव

भूमिका एक मात्र स्वामी कृषक ही होता है और वह राज्यकर लगनेपर भी भूमिको छोड़नेमें सर्वथा असमर्थ होता है। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि पूंजीय या श्रमीय लगानको लेनेवाले राज्यकर अत्यन्त भयकर तथा देशके लिये हानिकर होते हैं। क्योंकि इनसे कृषक लोग भूमिमें पूँजी तथा श्रमका प्रयोग करना सर्वथा छोड़ देते हैं और अपना रुपया भूमिसे निकाल कर किसी अन्य स्थानमें लगानेका यत्न करते हैं। भारतमें यही बात हम देख रहे हैं। राज्यने जबसे भौमिक लगानको भारी राज्यकरका रूप दे दिया है तबसे किसान लोगोंने भूमिकी उत्पादक शक्तिको बढ़ाना छोड़ दिया है और बहुतोंने भूमिपर कृषि करना छोड़ कर मजदूरी करना शुरू कर दिया है *।

कृषि प्रयुक्त भूमि तथा उस की उत्पत्ति पर राज्यकर-का प्रभाव

आर्थिक लगानपर राज्यकरका जो प्रभाव होता है उसपर प्रकाश डाला जा चुका है। अब इस बातपर विचार करना है कि सीमान्तिक निकृष्ट भूमि तथा उत्पत्तिको ध्यानमें रख कर उसपर लगाये हुए राज्यकरका क्या प्रभाव होता है। ऐसे करोंका मुख्य प्रभाव उत्पत्ति-व्यय बढ़ा कर कीमतोंका चढ़ा देना ही है। यदि कीमतें न चढ़ें तो सीमान्तिक निकृष्ट भूमि कृषिसे बाहर

* निकल्सन, प्रिन्सिपल्स आफ पोलिटिकल इकानमी (१९०३) भाग ३, पृष्ठ ३११

निकल जायगी। क्योंकि राज्यकरोंके कारण कृषि-जन्य पदार्थोंकी उत्पत्तिमें कृषकोंका खर्चा बढ़ जायगा और उनको कृषिका काम छोड़नेके लिए बाधित होना पड़ेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि सीमान्तिक भूमि तथा उत्पत्तिपर पड़नेवाले राज्यकरसे पदार्थोंकी कीमतोंका चढ़ना बहुत ही अधिक संभव है। अब प्रश्न केवल यही है कि कीमतें किस हद तक चढ़ेंगी? इसका उत्तर कर-प्रक्षेपणके प्रकरणमें दिया जा चुका है। कीमतोंका चढ़ना माँगकी लचकपर निर्भर करता है। यदि मांग सर्वथा स्थिर हो और राज्यकर लगने पर भी उतनी ही भूमिमें कृषि हो तो परिणाम यह होगा कि कीमतोंके चढ़नेसे अन्य पदार्थोंका आर्थिक लगान भी बढ़ जायगा। करद भूमिको राज्यकर द्वारा जो कुछ नुकसान उठाना पड़ेगा वह नुकसान कीमतोंके चढ़नेसे दूर हो जायगा और उसकी दशा पूर्ववत् बना रहेगी। ऐसी दशामें जो कुछ होगा वह यही है कि मांगके होनेसे राज्यकर व्ययियोंपर जा पड़ेगा। इसी प्रकार यदि मांग लचकदार हो और राज्यकर लगते ही कृषकों द्वारा कृषि जन्य पदार्थोंका दाम चढ़ाने से उन पदार्थोंकी मांग कम हो जावे और इस प्रकार उन पदार्थोंकी कीमतें गिरने लगें तो ऐसी दशामें सीमान्तिक भूमिपर कृषि करना छोड़ दिया जायगा। कोई अन्य उत्तम भूमि राज्य करके कारण सीमान्तिक भूमिका रूप धारण

कर लेगी और लगानकी राशि पूर्वापेक्षा घट जायगी। *

गृह प्रयुक्त भूमिपर राज्यकरका प्रभाव

गृह प्रयुक्त भूमिपर राज्यकरका प्रभाव देखनेके लिये कुछ एक शर्तोंका मान लेना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। वे शर्तें निम्नलिखित प्रकार हैं—

(१) कल्पना करो कि भूमिपर एक मात्र मकान ही बनाये जाते हैं।

(२) प्रत्येक मकानके बनानेमें एक सदृश ही पूँजी लगायी जाती है।

(३) पूँजीका पूर्ण भ्रमण है।

(४) मकानोंके आर्थिक लगानकी भिन्नता एक मात्र उनकी परिस्थिति पर आश्रित है।

उपरिलिखित शर्तोंके पूर्ण होनेपर यह स्पष्ट है कि आर्थिक लगानपर लगाया हुआ राज्यकर एक मात्र मालिक मकानपर ही जा करके पड़ेगा। यह क्यों? यह इसीलिये कि मकान बनाने वालोंकी संख्या अधिक है। उनके पास पूँजी इतनी अधिक है कि अवसर प्राप्त करते ही वे अपनी पूँजीको लगानेके लिये हर समय तैयार रहते हैं। यदि भूमिपर अन्य काम भी किये जा सकते तो किरायेदारोंपर राज्यकर पड़

---

*Principles of Political Economy by Nicholtion Vol III (1908) PP 315—317.

सकता था। परन्तु चूंकि उपरिलिखित शर्तोंके अनुसार भूमि मकानके सिवाय किसी और काममें आही नहीं सकती है; इस दशामें आर्थिक लगानपर लगा हुआ राज्यकर एक मात्र मालिक-मकानपर ही पड़ेगा। यही परिणाम उस हालतमें भी होगा जबकि यह मान लिया जाय कि मकान अधिकसे अधिक ऊंचे पहिलेसे ही बने हुए हैं। और अब उनकी उंचाई किसी प्रकारसे भी नहीं बढ़ायी जा सकती है।

परन्तु वास्तविक जगतमें उरिलिखित शर्तें कभी भी पूर्ण नहीं होती हैं। नगरके परकोटेकी भूमि प्रायः कृषिमें प्रयुक्त हो जाती है। कृषिजन्य लगानका आधार प्रायः कृषिसे ही सम्बद्ध है। उसका गृह्य लगानसे कोई विशेष घना सम्बन्ध नहीं है। यही कारण है कि यदि राज्यकर कृषिपर न लगा कर एक मात्र मकानोंपर ही लगे तो इस दशामें राज्यकर किरायेदारोंपर ही पड़ेगा। क्योंकि मालिक-मकानको राज्यकरके कारण मकान-का किराया कृषिजन्य लगान योग राज्यकर न मिले तो वह मकान बनाना ही छोड़ देगा और अपनी पूँजी कृषिमें लगावेगा। इसी स्थानपर महाशय मिलका विचार है कि किरायेदारोंपर राज्यकर समान रूपसे प्रक्षिप्त होगा। यह सत्य हो सकता है यदि प्रत्येक परिस्थितिकी मांगकी लचक या अलचक एक सदृश हो। परन्तु प्रायः

किरायेदारोंपर राज्यकरकाभार

महाशय मिलका विचार

ऐसा नहीं होता। ऐसा हो सकता है कि परकोटे-के पासके मकानका किराया राज्यकरके कारण बढ़ते ही उन मकानोंकी मांगपर बड़ा भारी प्रभाव पड़े जब कि शहरके अन्दरके मकानोंकी मांगमें इतना भारी प्रभाव न पड़े। परन्तु इसमें सन्देह करना भी वृथा है कि सीमान्तिक निकृष्ट गृहपर लगा हुआ राज्यकर साराका सारा किरायेदारोंपर ही पड़ेगा। क्योंकि उस मकानको छोड़ कर वे और किसी मकानमें जाही कैसे सकते हैं? परन्तु यह घटना शहरके अन्दरके मकानोंमें काम नहीं करती। क्योंकि अन्दरके मकानोंका किराया बढ़ते ही लोग कम किरायेवाले मकानोंमें जा सकते हैं।

लोगोंके आय व्यय तथा स्वभावका प्रभाव

इस घटनाका उत्पन्न होना प्रायः लोगोंके आयव्यय तथा स्वभावके साथ सम्बद्ध है। यदि किसी अधिक किराया देनेवाले मनुष्यने अपने खर्चेमें किरायेकी निश्चित मात्रा कर रक्खी है और वह उसको किसी भी तरीकेसे बढ़ाना न चाहता हो तो भी उस दशामें वह उत्तम परिस्थितिका ख्याल न कर निकृष्ट परि-स्थितिके मकानमें चला जायगा और मकानका किराया पूर्ववत् ही रहेगा। इस लचकका परिणाम यह होगा कि किराया मालिक-मकानपर पड़ेगा न कि किरायेदारोंपर।

किरायदारों पर करभार पड़नेकी दूसरी अवस्था

यदि मकानोंके बनानेमें अन्य साधारण कार्यों-के सदृश ही लाभ हो और किरायेदारोंकी मांग सर्वथा स्थिर तथा लचकरहित हो तो उस दशामें

गृह लगानपर लगा हुआ राज्यकर एक मात्र किरायेदारों पर ही पड़ेगा। वे लोग राज्यकरका कुछ भी भाग मकानकी भूमिके मालिकपर न फेंक सकेंगे। परन्तु यदि किरायेदारोंकी मांग लचकदार हो तो उनकी लचकके अनुसार ही राज्यकर मालिक-मकान तथा भूस्वामीपर जा पड़ेगा। मालिक-मकान तथा भूस्वामी इन दोनोंपर राज्य-करभार उनके व्यवहारपर * निश्चित करता है। यदि व्यवहारमें यह शर्त विद्यमान हो कि प्रत्येक परिवर्तनमें उनके व्यवहारमें परिवर्तन होता रहेगा तो मकानकी भूमिके मालिकपर राज्यकर पड़ेगा। सारांश यह है कि व्यवहारकी परिस्थितिकी लचकके अनुसार राज्यकरका भार मालिक-मकान तथा मालिक-जमीनपर पड़ेगा।

किरायदारोंका लचकदार मांग का प्रभाव

भूस्वामी और मालिक मकान के व्यवहारका प्रभाव

चिरकालीन प्रलम्ब व्यवहारमें राज्य मालिक-मकान तथा मालिक-जमीनपर पृथक् पृथक् राज्यकर लगा देता है। परन्तु जब यह नहीं होता तब यह बताना बहुत ही कठिन होता है कि किरायेका कितना भाग मकानके कारण है और कितना भाग भूमिके कारण है तथा राज्यकरका कितना भाग किसपर जा पड़ेगा और उस करसे कौन कितना बच गया? प्रलम्ब व्यवहारके बीचमें किसी प्रकारका भी परिवर्तन या नवीन राज्यकर जिसपर लगाया जाता है उसीको देना पड़ता

प्रलम्ब व्यवहारमें राज्य करका प्रभाव

* व्यवहार ठेका या प्रण = कान्ट्रैक्ट (Contract)

है। व्यवहारके समयकी समाप्तिपर राज्यकर पूर्व नियमोंके अनुसार ही प्रक्षिप्त हो जायगा।

भौमिक मूल्य-पर लगे हुए करका प्रभाव

भूमिके मूल्यपर लगे हुए राज्यकर यदि किरायेदार पर पड़ें तो उसका बहुत ही बुरा प्रभाव होता है। बहुत बार इसके कारण भिन्न भिन्न मकानोंमें लोगोंकी संख्या आवश्यकतासे अधिक हो जाती है और इससे उन्नति सर्वथा रुक जाती है। लोगोंका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। बहुत बार ऐसे करोंके कारण व्यापार व्यवसायकी उन्नति रुक जाती है या क्रेताओंकी क्रय करनेकी शक्ति घट जाती है।

राज्य-करका उत्तम परिणाम

बहुत बार ऐसे राज्य करोंके उत्तम परिणाम भी होते हैं। राज्य करके कारण मकानों तथा मकानकी भूमियोंके दाम चढ़नेसे पर कोटेकी भूमियां मकान बनानेके काममें आजाती हैं। बहुत संभव है कि उन पर उत्तम मकान न बनाये जांय क्योंकि मकानोंसे पुनः उनके निकल जाने का खतरा होता है। यदि राज्य कर हट जाय तो परकोटेकी भूमिके मकान सर्वथा निरर्थक हो सकते हैं। यही कारण है परकोटेकी भूमिपर उत्तम मकान नहीं बनाये जाते हैं और उनका किराया भी कम लिया जाता है। *

---

* निकोल्सन, प्रिन्सिपल्स आफ् पुलिटिकल इकानमी (१९०८) भाग ३ पृष्ठ ३१७—३२१।

भूमिके मूल्यपर लगा हुआ राज्य कर कहां पड़ेगा और कहाँ नहीं पड़ेगा यह जानना बहुत ही कठिन है। यही कारण है कि भूमिके मूल्यपर राज्यकर लगाते समय राज्यको निम्न-लिखित बातोंका ध्यान रखना चाहिए।

भूमिके मूल्यपर राज्य कर

(i) शुद्ध आर्थिक लगानपर राज्य कर लगानेकी इच्छासे राज्यको मकानके मालिकसे ही राज्य कर लेना चाहिए। क्योंकि किरायेदार करको फेंक सकेगा या न फेंक सकेगा इसका जानना बहुत ही कठिन है। इस कठिनाईके कारण किरायेदारोंपर राज्य कर असमान हो सकता है। ऐसी दशामें लगानके मालिकपर ही राज्य कर लगाना चाहिए। यदि ऐसा न किया जायगा तो किरायेदार बुरे तथा गन्दे मकानोंमें रह कर राज्य करसे बचनेका यत्न करेंगे इससे उनका स्वास्थ्य नष्ट होगा और उनका रहन सहन रद्दी हो जायगा। इसी प्रकार दूकानदार लोग यदि राज्य करसे बचनेके लिए पदार्थोंका दाम चढ़ा दें तो इससे देशकी उत्पादक शक्तिको धक्का पहुँचेगा जो किसी उत्तम राज्यको अभीष्ट नहीं है।

शुद्ध आर्थिक लगानपर कर किसपर लगाना चाहिए

दूकानपर करका प्रभाव

(ii) राज्यको कर लगाते समय शुद्ध आर्थिक लगानको जान लेना चाहिए। क्योंकि यदि वह ऐसा न करे और अन्धा धुन्ध राज्य कर लगा दे तो भौमिक लगानपर लगा हुआ राज्य कर पूंजीय तथा श्रमीय लगानको खा जायगा। परिणाम

अन्धाधुन्ध कर लगानेका प्रभाव

इसका यह होगा कि जनता की उत्पादकशक्ति तथा पदार्थोंकी उत्पत्तिमें रुचि घट जावेगी।

भूमिके अनर्जित आयपर राज्य करका प्रभाव

(iii) भूमिकी अनर्जित आयपर राज्यको कर लगाना चाहिए ऐसा कई एक विद्वानोंका मत है। परन्तु इससे कई एक हानियोंके होनेकी संभावना है। अनर्जित आयका जानना बहुत ही कठिन है। राज्य बहुत बार लोभमें पड़ कर अनर्जित आयके स्थानपर वास्तविक आयको भी खा जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि भूमिकी

कृषकोंकी पदार्थ में अरुचि

उत्पादक शक्ति कम होनेसे कृषकोंकी पदार्थोंके उत्पन्न करनेमें रुचि कम हो जाती है। भारतमें यही दिनपर दिन हो रहा है। सबसे बड़ी कठिनता यही है कि अनर्जित आय भूमिके सदृश

श्रम तथा पूंजी में अनर्जित आय और उस पर राज्य-कर

पूंजी तथा श्रममें भी है। पूंजी तथा श्रमकी अनर्जित आयको जान ही कौन सकता है! और यदि किसी तरीकेसे एक बार जान भी लिया जाय तो उसका सदाके लिए जान लेना कठिन है। यही नहीं, अनर्जित आय कोमल तथा परिस्थितिके अनुसार सदा बदलती रहती है। ऐसी दशामें ऐसी अस्थिर तथा चञ्चल आयपर राज्य करका लगना कभी भी उचित नहीं है। ऐसे राज्यकरोंसे जातिकी उन्नति रुक सकती है अतः उनसे कोई राज्य जितना बचे उतना ही उत्तम है। इस प्रकारके राज्यकर लगाना राज्यका समष्टिवादी होना

होगा। और पूंजीविधिकी कर्मण्यताको सर्वथा नष्ट करना होवेगा।

(iv) यदि कोई राज्य सचमुच समष्टिवादी हो तो भी उसको अपने उद्देश्य की पूर्तिके लिये अनर्जित आयपर राज्यकरन लगाना चाहिये। निस्सन्देह अनर्जित आयसे बहुत दोष तथा बहुत नुकसान हैं। परन्तु क्या अनर्जित आयपर लगे हुए राज्य करके दोष तथा नुकसान कहीं उससे भी अधिक तो नहीं है? कहीं इससे नगरोंकी उन्नति तथा भूमिकी उत्पादक शक्ति तथा जनता-की उत्पत्तिकी ओर रुचि तो न घट जायगी? यही नहीं, भूमिकी अनर्जित आयको ही क्यों लिया जावे और पूंजी तथा श्रमकी अनर्जित आयको क्यों न लिया जाय? वास्तविक बात तो यह है कि किसी भी उत्पत्तिके साधनकी अनर्जित आय-को लेना उचित नहीं कहा जा सकता। *

अनर्जित आय पर करका प्रभाव

२-लाभ तथा पूंजीपर राज्यकरप्रक्षेपण।

विचारकी सुगमताके लिए लाभके अन्दर निम्नलिखित तत्वोंका मान लेना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

लाभपर राज्य कर

(1) व्याज।

---

* निकाल्सन, प्रिन्सिपुल्स अफ पोलिटिकल इकानोमी (१६०८) भाग ३ पृष्ठ ३२१—३२६।

(ii) दुर्घटनाओंसे बचनेके लिये बीमा कराई-का धन।

(iii) निरीक्षण की भृति ।

इन उपरिलिखित तीनों तत्वोंमें पृथक पृथक समानताकी ओर प्रवृत्ति होती है । इनपर कर प्रक्षेपणको जाननेके लिए निम्नलिखित शर्तोंका मान लेना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है ।

(i) कल्पना करो कि पूंजीका पूर्ण भ्रमण है ।

(ii) व्यवसायमें लगे हुए चतुर श्रमियों तथा व्यवसायपतियोंका पूर्ण भ्रमण है ।

(iii) पूर्ण स्पर्धा है ।

पूर्णस्पर्धा तथा एकाधिकार

राज्य कर प्रक्षेपणको स्पष्ट तौरपर दिखानेके लिए स्थान स्थानपर अपूर्ण स्पर्धा तथा एकाधिकारको मान करके भी लाभ उठानेका यत्न किया जायगा । इसमें सन्देह भी नहीं है कि असमान आमदनीकी समानताकी ओर प्रवृत्ति होती है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि किसी समयमें संपूर्ण पेशोंके अन्दर लाभ समान हो जायंगे। जो कुछ इसका मतलब है वह यही है कि जब एक पेशेमें दूसरे पेशोंकी अपेक्षा लाभ अधिक होता है तब लोग अपनी पूंजी तथा श्रमका प्रयोग उसी पेशेमें करते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि उस पेशेमें पूंजी तथा श्रमकी स्पर्धाके होनेसे उसका लाभ कम हो जाता है। इसीको इस प्रकार

कह दिया जाता है कि असमान लाभकी समानताकी ओर प्रवृत्ति है। *

व्याजपर राज्य कर

धनको उधारपर देनेमें यदि भयका कुछ भी भाग न हो और व्याजके प्राप्त होनेमें कुछ भी खतरा न हो तो यह कह देना अत्युक्ति करना न होगा कि व्यावसायिक जगत्‌में व्याज समान होता है। यदि पूँजीपतियोंमें पूर्ण स्पर्धा विद्यमान हो। इस दशामें यदि राज्य शुद्ध व्याजपर कर लगा दे तो कर पूँजीपतियोंको ही देना पड़ता है। इस प्रकारके राज्य करके कुछ एक अप्रत्यक्ष परिणाम होते हैं। जिनको कभी भुलाया नहीं जा सकता।

धनी लोग अपने लाभके लिए जातीय हितको भी बलि चढ़ा देते हैं

(i) धनाढ्य लोगोंको अपने लाभका विशेष ध्यान होता है। वे इस लाभके ऊपर अपनी जातिके हितको भी प्रायः बलि चढ़ा देते हैं। यही कारण है कि आदम स्मिथ ने लिखा है कि धनाढ्य लोग किसी एक जातिके सभ्य या नागरिक न होकर संसारके सभ्य या नागरिक होते हैं। इस सत्यको समझते हुए यह कहना सत्य ही होगा कि शुद्ध व्याजपर राज्यकर लगते ही पूँजी पति लोग विदेशोंमें बस जांयगे और अपनी पूँजी वहाँ लगावेंगे जहाँ उनपर राज्यकर न लगता होगा। इसका परिणाम यह होगा कि पूंजी देशसे बाहर

आदमस्मिथकी सम्मति

राज्यकर लगनेमें वे अपनी पूंजी विदेशमें लगावेंगे

* निकाल्सन, 'प्रिन्सिपुल्स आफ पोलिटिकल इकानोमी' (१८०८) भाग ३, पृष्ठ ३२७—३२८।

चली जायगी और इस प्रकार पूंजीके अभावसे करद देशमें व्याजकी मात्रा बढ़ जायगी जिससे पूँजीपतियोंपर राज्यकर न पड़ करके अधमर्ण व्ययियों तथा कारखानेवालों पर राज्यकर जा पड़ेगा और इस प्रकार देशकी उत्पादक शक्तिको धक्का पहुँचेगा।

धन सञ्चयकी आदत कम होगी

(ii) शुद्ध व्याजपर लगे हुए राज्यकरका एक परिणाम यह होगा कि लोगोंमें धन संचयकी आदत कम हो जायगी।

शुद्ध व्याजपर लगा हुआ कर अधमर्ण पर पड़ेगा

(iii) रुपया उधार देनेमें कुछ न कुछ भय अवश्यमेव होता है। दुर्घटनाओंसे बचनेके लिए लोग अपने अपने कारखानोंका बीमा करवाते हैं। ऐसी दशामें शुद्ध व्याजपर राज्यकर लगनेसे व्यवसायपति राज्यकरका खर्चा अपने अपने कारखानोंके बीमा कराईके धनसे निकालनेका यत्न करेंगे और इस प्रकार बीमा करवाना छोड़ देंगे। यही नहीं। उत्तमर्णकी अपेक्षा अधमर्ण दुर्बल होते हैं। अतः शुद्ध व्याजपर लगा हुआ राज्यकर प्रायः अधमर्णपर ही जाकर पड़ता है।

उधार धन देने में भय

(iv) अभी लिखा जा चुका है कि उधारपर धन देनेमें प्रायः भय होता है। ऐसी दशामें भयके विचारसे शुद्ध व्याजपर लगा हुआ समान राज्यकर भिन्न भिन्न व्यक्तियोंपर असमान तौरपर पड़ेगा। कुल व्याजका ⅕ करमें लेते हुए जहाँ सुरक्षित व्याजका २% करमें जा सकता है वहाँ

भययुक्त व्याजका ४ प्रतिशतक राज्यकरमें जा सकता है। इसको समझनेके लिये दृष्टान्त तौरपर कल्पना कर लीजिए कि सुरक्षित व्याज ३% है और भययुक्त व्याज ६% है। इसमें ३% भयका बीमा सम्मिलित है। इस दशामें यदि राज्य ; राज्यकर ले ले तो सुरक्षित व्याज २% हुआ वहाँ भययुक्त व्याज ४% हुआ। भययुक्त व्याजमेंसे ३% धन बीमाका निकाल देनेमें केवल १% व्याजका भाग बचा। सारांश यह है कि भययुक्त व्याजमें राज्य-कर भयंकर रूपसे जा पड़ा। इसका परिणाम यह होगा कि पूञ्जीपति लोग सुरक्षित व्याजमें पूंजी लगावेंगे और भययुक्त व्याजमें नहीं। *

प्रबन्ध करनेका आयपर लगा हुआ राज्यकर

कारखानोंके प्रबन्धकर्ता या व्यवसाय पतियोंकी आयपर लगा हुआ राज्यकर यदि व्यवसाय पतियोंपर ही जा पड़े तो व्याजपर लगे हुए राज्य करके सदृश ही पूंजी विदेशमें लगायी जायगी और स्वदेशमें धनसञ्चय दिनपर दिन कम हो जायगा। यदि व्यवसायपतिकी शक्ति अधिक हो तो राज्यकर उसी प्रकार व्ययियोंपर जा पड़ेगा जिस प्रकार व्याजमें उत्तमर्णके शक्तिशाली होने पर राज्यकर अधमर्णों † पर जा पड़ता है।

---

* निकल्सन रचित प्रिन्सिपल्स आफ पुलिटिकल इकानमी। (१९०८) भाग ३ पृ० ३२८—३२९।

† अर्थ लगान या अनार्जित आय = अनअर्नड इनक्रेमेंट Unearned Increment.

अर्धलगान या अनर्जित आयपर राज्यकर न लगना चाहिये। क्योंकि इससे जनतामें व्यावसायिक कार्योंके लिये उत्साह तथा आविष्कार निकालनेकी रुचि कम हो जाती है। सारांश यह है कि लाभोंपर राज्यकर लगानेमें बड़ी सावधानी चाहिये। क्योंकि थोड़ीसी गल्तीसे इन करोंके द्वारा देशको बड़ा भारी नुक्सान पहुँचता है। लाभपर कर लगाना कितना कठिन है यह सभी जानते हैं। इसका कारण यह है कि लाभ अस्थिर होते हैं। उनपर स्थिर राज्यकर लग ही कैसे सकता है? महाशय आदम स्मिथने ठीक कहा है कि "लाभ अस्थिर होते हैं अतः उनको जानना बहुत ही कठिन है। स्वयं व्यापारी तथा व्यवसायीको अपने लाभोंका पूर्ण ज्ञान नहीं होता है।" इस दशामें लाभोंपर राज्यकर लगानेमें जो सावधानी करनी चाहिये उसपर बहुत लिखना वृथा है। *

पूंजीपर राज्य कर

इंग्लैण्डमें पूञ्जीपर राज्यकर दो प्रकारसे लगाया जाता है। (i) जब पूंजी मृत पुरुषसे जीवित पुरुषके पास जाती है और (ii) जब पूञ्जी जीवित पुरुषसे जीवित पुरुषके पास जाती है। इनमेंसे प्रथमपर लगा हुआ राज्यकर अत्यन्त प्रत्यक्ष होता है और किसी दूसरेपर प्रक्षिप्त नहीं होता है।

* प्रिंसिपल्स आफ पुलिटिकल इकानमी (१९०८) निकल्सन रचित खंड ३—३२९—३३१

मृतकर*में समानताका विशेष ध्यान रखना चाहिए या इसको क्रमबद्ध लगाना चाहिए इसपर पूर्व प्रकरणमें प्रकाश डाला जा चुका है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि यदि उत्पादक-कर पूञ्जीपर पड़कर क्रमबद्ध तथा भारी हो तो इससे देशकी उत्पादक शक्ति तथा धन संचयकी प्रवृत्तिको बड़ा भारी धक्का पहुँचता है।

यही दशा देशकी साधारण पूञ्जीके साथ है। बृहत्पूञ्जीपर यदि किसी देशमें राज्यकर लगा दिया जाय तो पूञ्जी विदेशोंमें लगायी जायगी और करद देशको नुक्सान पहुँचेगा। पूञ्जीके कम होनेसे स्वदेशमें व्याजकी मात्रा अधिक हो जायगी और इस प्रकार स्वदेशीय व्यवसाय विदेशी व्यवसायोंसे मुकाबला करनेमें असमर्थ हो जायँगे। पूञ्जीके सदृश ही व्यापार तथा व्यवसायपर लगा हुआ राज्यकर देशकी समृद्धिको कम कर सकता है। करप्रक्षेपणके सिद्धान्तमें यह दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार राज्य कर व्यापार व्यवसायका सर्वथा नाशकर सकता है बहुतसे विचारकोंकी सम्मतिमें स्पेनकी समृद्धि, कृषि तथा व्यवसायका नाश इसीलिए हुआ कि स्पेनी राज्यने व्यापारपर कर लगाया था। बहुत बार यह भी देखा गया है कि बड़े

स्पेनका कोष तथा व्यवसाय का नाश

* मृतकर—सक्सेशन ड्यटीज (Succession duties)

तथा राज दर्बारी लोग जब देशमें भ्रमणके लिए निकलते थे तो प्रजाको ही उनके भोजन आदिका खर्चा देना पड़ता था। भारतमें अब तक राज्य-सेवक ग्रामीण दरिद्र प्रजासे इस प्रकारको सहायताएँ लेते हैं। बेगारीमें गाड़ियों तथा मनुष्योंका पकड़ना यहाँ साधारण बात है। परन्तु यूरोपीय सभ्य देशोंमें अब यह बात नहीं रही! भारतमें भारत सचिवकी आज्ञाके अनुसार आंग्ल राज्यने स्वदेशी कारखानों पर १८३८में ३½ फी सैकड़ेका राज्यकर लगा दिया। यह इसी लिए कि वे मैन्चेस्टरकी मिलोंके मुकाबलेमें स्वदेशी कपड़े न बना सकें। इससे और इस प्रकारकी राजनीतिसे स्वदेशी मालका बनना बहुत कठिन हो गया है।

बेगारी आदि का लेना और स्वदेशी कारखानोंपर कर लगाना अन्याय है

(iii) सामुद्रिक कर या व्यापारीय कर (custom duty):—सामुद्रिक करोंका इतिहास अति पुराना है। इंग्लैण्डमें भारतके पदार्थोंका विक्रय रोकनेके लिए जो भयंकर सामुद्रिक कर लगे थे उनका उल्लेख किया जा चुका है। सामुद्रिक करों से जहाँ राज्यको आय होती है वहाँ स्वदेशी व्यवसायोंके समुत्थानमें ये बड़ा भारी भाग लेते हैं। उन्नति शील दुर्बल व्यवसायी देशोंके ये सामुद्रिक कर प्राण स्वरूप हैं। भारतको स्वदेशीय व्यवसायोंके समुत्थानके लिए ऐसे ही करोंकी ज़रूरत है।*

भारतके उत्थानके लिए विदेशी मालपर सामुद्रिक कर लगाना चाहिए

* महाशय निकल्सनकी प्रिंसिपल्स आव् पुलिटिकल इकानोमी। खंड ३। (१९०८) पृ० ३३३-३३७

पदार्थों पर राज्य-करका प्रक्षेपण अति स्पष्ट है। यदि राज्यकर प्रत्यक्ष तौर पर व्ययी पर लगा दिया जाय तो उसकी व्यय करनेकी शक्ति और इस प्रकार उसकी पदार्थोंकी माँग घट जायगी। मांगके घटनेसे पदार्थोंकी कीमतें गिरेंगी और कीमतोंके गिरनेसे उनकी उपलब्धि कम हो जायगी। कीमतें तथा उपलब्धि किस हद तक कम होंगी वह मांगकी लचक पर निर्भर करता है। यही नहीं, पदार्थोंकी उत्पत्ति-विधिका भी कीमतों-पर प्रभाव पड़ेगा। परन्तु यदि राज्य-कर व्यापारियों या उत्पादकोंपर ही पहिले पहिल लगाया जाय तो वे लोग इसको व्ययियों पर फेंकनेका यत्न करेंगे। आजकल राज्य प्रायः उत्पादकोंपर ही राज्य-कर प्रत्यक्ष तौर पर लगाते हैं। यदि पूंजी एक व्यवसायसे दूसरे व्यवसायमें शीघ्र ही लगायी जा सके और पदार्थकी कीमत स्पर्धा-जन्य कीमत हो तो राज्यकरसे उत्पादक लोग बच सकते हैं, परन्तु वर्तमानकालीन व्यावसायिक जगत्‌में उपरिलिखित दोनों बातें काम नहीं करती हैं। स्पर्धाके सदृश ही कीमतोंके निश्चयमें एकाधिकारका भाग है और पूंजीका भ्रमण भी पूर्ण नहीं है। परिणाम इसका यह होता है कि उत्पादकों पर लगा राज्यकर बहुत कुछ उत्पादकों पर ही रह जाता है। यदि वे कीमतोंको बढ़ा कर राज्यकरसे बचना चाहें तो

पदार्थोंपर राज्य करका प्रक्षेपण

व्ययियोंकी मांगके कम हो जानेसे उनके पदार्थों-की कीमतें कम करनी पड़ती हैं और यदि वे पदार्थोंकी कीमतें पूर्ववत् रखें तो उनको पदार्थों-की उपलब्धि मांगके सदृश ही कम करनी पड़ती है। सारांश यह है कि उत्पादकों या व्ययियों पर लगे राज्यकर देशकी उत्पादक शक्तिको किसी न किसी हद तक अवश्य ही कम करते हैं। इसमें सन्देह भी नहीं है कि दरिद्र निर्धन देशोंमें ऐसे कर अधिक हानि पहुँचाते हैं और समृद्ध देशोंमें ऐसे कर बहुत नुक्सान नहीं पहुँचाते, क्योंकि समृद्ध देशोंकी मांग कीमतोंके छोटे मोटे परिवर्तनोंमें स्थिर रहती है। कई पदार्थोंमें उनकी मांग सर्वथा स्थिर रहती है चाहे उन पदार्थोंकी कीमतें कितनी ही क्यों न बढ़ जायं। परन्तु दरिद्र देशोंमें यह बात नहीं है। भारत जैसे दरिद्र देशोंमें नमककी कीमतके चढ़ने पर जनताकी मांग घट जाती है। सारांश यह है कि भारतमें पदार्थों पर लगे हुए राज्यकर जितना अधिक देशकी उत्पादक शक्तिको धक्का पहुँचाते हैं उतना अधिक धक्का आंग्ल राज्यकर इंग्लैण्डकी उत्पादक शक्तिको नहीं पहुँचा सकते हैं।

व्ययियों तथा उत्पादकोंका नुकसान

दरिद्र देशोंकी हानि

पदार्थोंपर लगा हुआ कर देशकी उत्पादक शक्तिको कम करता है

अभी लिखा जा चुका है कि राज्यकर द्वारा कीमतें कहाँ तक चढ़ेंगी यह पदार्थकी उत्पत्ति-विधिके साथ भी सम्बद्ध है। प्रायः क्रमागत ह्रास नियम वाले पदार्थों पर राज्य करके लगनेसे

क्रमागत नियमवाले पदार्थोंपर राज्य-करसे नुकसान

पदार्थोंकी कीमतें राज्यकरके अनुपातसे नहीं बढ़ती हैं, क्योंकि राज्यकर द्वारा उत्पत्ति व्ययके बढ़नेसे पदार्थोंकी उपलब्धि क्रमागत ह्रास नियमके अनुसार ही घटती है अर्थात् राज्यकरकी राशिके अनुपातसे पदार्थकी उपलब्धि न घट कर कुछ कम ही घटती है, इससे पदार्थोंकी कीमतें बहुत नहीं चढ़ती हैं। परन्तु क्रमागत वृद्धि नियमवाले पदार्थोंमें राज्यकर द्वारा उत्पत्ति व्यय बढ़ने ही पदार्थोंकी उपलब्धि क्रमागत वृद्धि नियमके अनुसार घटती हुई राज्यकरके अनुपातसे अधिक घट जाती है। इससे राज्यकर द्वारा क्रमागत वृद्धि नियमवाले पदार्थोंकी कीमतें बहुत ही अधिक बढ़ जाती हैं। यही कारण है कि १८३६के ३½ फी सैकड़ा व्यावसायिक करका अल्पकर न समझना चाहिए। यह कर इतना भयंकर है कि इससे स्वदेशीय व्यवसायोंका नाश बहुत ही शीघ्रतासे हो सकता है। इसी प्रकार एकाधिकारी व्यवसायों पर राज्यकर लगनेसे कीमतें राज्य करके अनुपातसे न चढ़ कर बहुत कम चढ़ती हैं और बहुत बार बिलकुल नहीं चढ़ती हैं। बहुत बार उत्पादक लोग पदार्थोंकी उपलब्धि कम कर राज्य-करका भार श्रमियोंपर फेंक देते हैं और श्रमियोंको कम भृति देना प्रारम्भ करते हैं *।

१८३६के ३½ फी सैकड़ा व्यावसायिक कर भयंकर है

एकाधिकारी व्यवसायों पर राज्य करका प्रभाव

* प्रिंसिपल्स आव पुलिटिकल इकानोमी। महाशय निकलसन लिखित (१८०८) खण्ड पृष्ठ ३३७-३४२

नियात करका फलपरप

संवत् १८७७ में ब्रिटिश राज्यने कोयलेका इंग्लैण्डसे बाहर जाना रोकनेके लिए उस पर निर्यात कर लगा दिया। आंग्ल जनतामें यह भ्रमपूर्ण विश्वास है कि जिस प्रकार आयात कर अन्तमें स्वदेशीय व्ययियों पर ही जा कर पड़ता है उसी प्रकार निर्यात कर एक मात्र विदेशीय व्ययियों पर ही जा कर पड़ेगा। परन्तु इस प्रकारका विचारक्रम उचित नहीं है। क्योंकि यदि निर्यात कर एकमात्र विदेशियोंपर ही जाकर पड़ता हो तो उस देशमें कौन सा ऐसा अभागा राज्य होगा जो इसका प्रयोग न करे।

नियात कर प्राय स्वदेश मे ही पड़ता है

व्यावसायिक प्रणाली (Mercantile system) के दिनोंमें व्यवसायोंकी उन्नतिके लिए भिन्न भिन्न यूरोपीय राज्योंने कच्चे मालको सस्ता करनेके और उत्पत्तिके साधनोंको विदेशमें जानेसे रोकनेके लिए निर्यात करका प्रयोग किया था। निर्यात करकी सफलता ही इस बातको प्रकट करती है कि यह स्वदेशमें ही प्रायः पड़ता है।

निर्यात करका विदेशोंपर पड़ना

बहुत बार राज्य आयके उद्देश्यसे निर्यात करका प्रयोग करते हैं। यह निर्यात कर विदेशियों या स्वदेशियोंपर पड़ता है। यह इनकी माँग तथा उपलब्धिकी सापेक्षिक लचकपर निर्भर रहता है। यदि विदेशीय राज्य उस पदार्थके प्रयोगमें बाधित हों तब तो निर्यात कर उन्हींपर पड़ेगा

परन्तु यदि ऐसा न हो तो निर्यात करका कुछ भाग स्वदेशपर ही पड़ेगा। यही नहीं, निर्यात करके कारण यदि विदेशी उस पदार्थका व्यय सर्वथा ही छोड़ दें तो साराका सारा निर्यातकर स्वदेश पर जा पड़ता है। इस दशामें व्यापारको नुकसान पहुँचना स्वाभाविक ही है।

व्यावसायिक पदार्थोंपर निर्यात कर का प्रभाव

व्यावसायिक पदार्थोंपर निर्यात कर यदि हलका हो तो देशको कोई विशेष नुकसान नहीं पहुँच सकता है। परन्तु यदि ऐसा न हो और निर्यात कर भारी हो तो उसके द्वारा स्वदेशीय व्यवसायोंको धक्का पहुँच सकता है। निर्यात करके लगनेसे पदार्थोंकी उपलब्धि स्वदेशमें बढ़ जाती है और इससे पदार्थोंकी कीमत तथा व्यावसायिक लाभ कम हो जाते हैं। कुछही समयके बाद कीमतोंकी कमीके अनुसारही भिन्न भिन्न व्यवसायके लाभ कम होनेसे पदार्थोंको कम उत्पन्न करना प्रारम्भ करेंगे और इस प्रकार पदार्थोंकी उपलब्धि पूर्वापेक्षा कम हो जायगी। यदि पदार्थ समनियमवाला हो तो पदार्थोंकी उपलब्धि राज्यकरके अनुपातसे ही कम हो जायगी और पदार्थोंकी कीमत पूर्ववत् ज्योंकी त्यों बनी रहेगी। परन्तु क्रमागत वृद्धि नियमवाले पदार्थोंमें कीमतें पूर्वापेक्षा कुछ अधिक और क्रमागत ह्रास नियमवाले पदार्थोंमें कीमतें

पूर्वापेक्षा कुछ कम हो जायँगी। एकाधिकारीय पदार्थोंमें भी कीमतें कुछ कम ही होजायँगी।*

आयात करका प्रक्षेपण

निर्यात करके सदृश ही आयात करका प्रक्षेपण है। कइयोंका विचार है कि आयात कर एक मात्र विदेशियोंपर ही पड़ता है। सत्य क्या है? अब इसीको दिखानेका यत्न किया जायगा। आयात करके लगतेही विदेशीय व्यवसायोंको अपने टूटनेका खतरा पड़ता है। क्योंकि आयात कर देनेवाले देशके व्यवसाय आयात करके बलपर मुकाबला तथा स्पर्धा करने पर तैयार हो जाते हैं। ऐसी दशामें आयात करको जिस हद तक विदेशीय व्यवसाय अपने ऊपर ले सकते हैं वह अपने ऊपर ले लेते हैं परन्तु जब वह ऐसा करनेमें असमर्थ हो जाते है तब आयात कर स्वदेशीय व्ययियों पर ही पड़ता है। सारांश यह है कि

स्वदेशी और विदेशी व्यवसायोंकी स्पर्धा तथा उपलब्धि का लचक

आयात करका प्रक्षेपण विदेशीय व्यवसायोंकी उपलब्धिकी लचक तथा स्वदेशीय व्यवसायोंकी स्पर्धापर निर्भर करता है। यदि आयात करके लगतेही विदेशीय व्यवसाय पदार्थोंको उत्पन्न करना छोड़ दें तो आयात कर स्वदेशीय व्ययियोंपर आ पड़ता है। परन्तु जिस हद तक विदेशीय व्यवसाय पदार्थोंकी उत्पत्तिको कम न कर सकें और पदार्थोंके विदेशमें भेजनेके

* निकल्सन् "प्रिन्सिपल्स आफ पोलिटिकल इकानोमी" (१८७८) भाग ३—पृष्ठ ३४२—३४४

लिये बाधित रहें उस हद तक आयात कर उन्हीं पर पड़ता है। जब कोई देश स्वतन्त्र व्यापारसे बाधित व्यापारमें प्रवेश करता है तो उस समय प्रायः यह होता है कि शुरू शुरूमें बाधक आयात कर विदेशियोंपर पड़ता है। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि अन्तमें बाधक आयातकर स्वदेशीय व्ययियों पर ही पड़ता है। यदि वह स्वदेशीय व्ययियोंपर पदार्थोंकी वृद्धि कीमतके रूपमें न पड़े तो उसका उद्देश्य ही पूरा न हो। इसी उद्देश्यसे तो राज्य बाधक आयात करका प्रयोग करते हैं। उसीसे ही स्वदेशीय व्यवसायोंको लाभ पहुँचता है। *

[illegible] प्रभाव

पदार्थोंपर राज्य कर लगानेके कुछ एक आवश्यक नियम हैं जिनका यहाँपर दे देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

[illegible] पर राज्य कर के नियम

(१) राज्यको वही कर लगाने चाहिए जिनसे राज्यको आय हो। अर्थात् राज्य कर उत्पादक होने चाहिए। इसका अपवाद भी है। राज्य कई एक ऐसे करोंको लगा सकता है; जिससे प्रजाका आचार व्यवहार उन्नत हो। ऐसे करोंका उत्पादक होना आवश्यक नहीं है। आयके उद्देश्यसे लगे हुए करोंका ही उत्पादक होना आवश्यक है, अन्य किसी

आय बढ़ानेवाले और प्रजाका [illegible] चार बढ़ानेवाले कर लगाने चाहिये

---

* निकल्सन प्रिन्सिपल्स आफ पोलिटिकल इकानोमी (१९०८) भाग २ पृष्ठ ३४४-३४६

उद्देश्यसे लगाये गये करोंके लिए यह आवश्यक नहीं है।

राज्यकर स्थिर और समान हों

(ii) जहाँ तक हो सके राज्यकर स्थिर और समान हों। कार्य रूपमें यद्यपि इस नियम पर पूर्ण रूपसे चलना कठिन है तोभी इसमें सन्देह नहीं है कि राज्यको कर लगाते समय इस नियमका अवश्य ही ध्यान कर लेना चाहिए। थोड़ी आयवालोंपर यदि प्रत्यक्ष कर न लगाया जाय तो उनको अप्रत्यक्ष करसे छोड़ना भी न चाहिए। इसी प्रकार यदि किसी एक पदार्थके व्ययियों पर राज्यकर लगाया जाय तो अन्य पदार्थोंके व्ययियोंको राज्यकरसे सर्वथा मुक्त भी न करना चाहिए। जहाँ तक हो सके राज्यकरका क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए और अप्रत्यक्ष करका प्रयोग बढ़ाना चाहिए। इसीमें समानता तथा मितव्ययिता है।

कर प्रयोगमें समानता भाव

राज्य-करकी प्रत्यक्षता तथा स्थिरता

(iii) राज्यकर सब पर प्रत्यक्ष तथा स्थिर होना चाहिए। सामुद्रिक करोंकी राशि बदलती रहती है। इससे उत्पादकोंको उत्पत्ति करनेमें बड़ी कठिनता होती है। व्यापारीय सन्धियोंमें सामुद्रिक करकी राशि खास समय तकके लिये निश्चित कर दी जाती है इससे उत्पादकोंको बड़ा लाभ पहुँचता है।

राज्यकर सहज प्राप्य होने चाहिये

(IV) राज्यकर इस प्रकारके होने चाहिए जिनको सुगमतासे ही एकत्रित किया जा सके।

व्यावसायिक तथा सामुद्रिक करोंमें यही बड़ा भारी गुण है।

मितव्ययिताका ध्यान

(V) राज्यकर लगानेमें राज्योंको मितव्ययिता का ध्यान रखना चाहिए। सामुद्रिक करोंके एकत्र करनेमें जो खर्चा उठाना पड़ता है उतना ही खर्चा इस बातके लिए राज्योंको उठाना पड़ता है कि व्यापारी लोग चोरी चोरी माल बिना सामुद्रिक कर दिये ही स्वदेशमें न ले जाँय।

व्यावसायिक कर का प्रभाव और मितव्ययन.

व्यावसायिक कर तो मितव्ययितासे कहीं दूर हैं। उनसे राज्यका जितनी आय होती है देशको उससे कहीं अधिक नुकसान पहुँच जाता है। यही नहीं, कई बार भारी व्यावसायिक कर द्वारा राज्यकी आय भी कम हो जाती है। दृष्टान्तके तौर पर १८५८ से १८६० विक्रमीय तक इंग्लैण्डकी जनसंख्या $\frac{1}{3}$ अधिक बढ़ी परन्तु उनमें शीशेकी चीजों का प्रयोग केवल $\frac{1}{6}$ ही बढ़ा। क्योंकि शीशेकी चीजोंके बनानेमें व्यवसायोंको राज्यकर देना पड़ता था अतः उनकी कीमतें अधिक थीं और आयके अधिक न होनेसे शीशेके काममें उन्नति न की जा सकती थी। इसी प्रकारकी घटनाएँ मोमबत्ती, साबुन तथा कागजके कामोंमें व्यावसायिक करके कारण देखी गयी हैं। १९३७ के ३६ व्यावसायिक करसे भारतीय कारखानोंको राज्यने बड़ा भारी नुकसान और मैंचेस्टरके कारखानों को सहायता पहुँचायी है।

व्यावसायिक तथा सामुद्रिक करके अप्रचारसे भारतकी दुर्दशा हुई

यह सब होते हुए सभी देशोंमें सामुद्रिक कर तथा व्यावसायिक करका प्रचार है। इंग्लैण्ड रूस, तथा फ्रान्सके राज्य की आधी आय इन्हीं करोंसे प्राप्त होती है। अमेरिकामें भी यही बात है। भारत कृषक देश है। अतः भारतमें व्यवसायोंके न होनेसे और आंग्ल मालके भारतमें सस्ता बिकवानेकी इच्छासे राज्यके सामुद्रिक कर बहुत ही कम लेनेसे राज्यका सम्पूर्ण खर्चा भूमि पर टूट पड़ा है। हर बन्दोबस्तमें बीसों तरीकोंसे राज्य लगानको बढ़ा रहा है और दरिद्र प्रजाके कष्टोंका कुछ भी ध्यान नहीं करता है। निस्सन्देह राज्यने दुर्भिक्ष फण्ड तथा तकावीकी विधि प्रचलित का है। परन्तु इससे लाभ हो क्या है जब कि दरिद्रताके कारणोंको दूर करनेके बदले वे दिन पर दिन बढ़ाए जांय और देश व्यावसायिक उन्नति करनेसे रोका जाय। क्या कभी झोपड़ोंमें आग लगा कर एक घड़े पानीसे आग बुझायी जा सकती है? *

---

* निकल्सन "प्रिन्सिपल्स आफ पोलिटिकल इकानोमी" भाग ३ ([illegible]) पृष्ठ ३[illegible]–३५५

षष्ठ परिच्छेद

किन किन स्थानोंसे राज्यकर प्राप्त किया जा सकता है ?

पूर्व प्रकरणोंमे दिखाया जा चुका है कि राज्य-कर शुद्ध आयसे ही प्राप्त करना चाहिए। इस शुद्ध आयको ग्रहण करनेके लिए भिन्न भिन्न देशोंके राज्योंने भिन्न २ विधियाँ प्रयुक्त की हैं। यही कारण था कि प्राचीन सम्पत्ति शास्त्रज्ञोंने व्याज, भृति, लगान, लाभ आदि शुद्ध आयोंके अनुसार ही राज्यकरका वर्गीकरण किया था। आजकल राज्यकरका वर्गीकरण प्रायः उन स्थानोंके अनुसार दिया जाता है जहाँसे शुरू शुरूमें प्रत्यक्ष तौरपर राज्य कर ग्रहण करते है। दृष्टांत तौरपर आजकल राज्य करके निम्नलिखित तीन स्थान माने जाते हैं जहाँसे राज्य कर लेते हैं और जन समाजकी शुद्ध आय तक प्रत्यक्ष तौर पर पहुँच जाते हैं।

सम्पत्ति शास्त्रज्ञोंका वर्गीकरण

(१) प्रत्यक्ष तौर पर शुद्ध आय पर लगाया गया राज्यकरशुद्ध आय पर राज्यकर।

(२) शुद्ध आयका देने वाली सम्पत्ति पर राज्यकर=सम्पत्ति पर राज्यकर।

(३) शुद्ध आयको देनेवाले पेशों पर राज्य-कर=व्यापारीय तथा व्यावसायिक कर।

व्यय तथा उपभोग कर पृथक् नहीं है

प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि उपरिलिखित वर्गीकरणमें 'व्ययकर' या 'उपभोग कर'का कोई नाम नहीं है? संपत्ति शास्त्र तथा आयव्यय शास्त्रमें इन करोंका वर्णन स्थान स्थान पर आता है अतः इनका यहां पर क्यों नाम नहीं दिया गया? इसका उत्तर यह है कि व्यापारीय तथा व्यावसायिक कर-का ही दूसरा नाम व्ययकर या उपभोगकर है। वैसे तो सारेके सारे राज्यकरोंका ही पदार्थोंके उपभोग तथा व्यय पर प्रभाव पड़ता है। व्ययको प्रभावित करके ही राज्यकर, पदार्थोंकी मांगको और मांग द्वारा कीमतको और कीमतके द्वारा सारे-के सारे व्यावसायिक तथा व्यापारीय प्रबन्धको प्रभावित करते हैं। सारांश यह है कि राज्य करका पदार्थोंके उपभोगके साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रत्येक प्रकारका राज्यकर अन्तमें पदार्थोंके व्यय पर किसी न किसी रूपतक पड़ता है अतः 'व्यय या उपभोग' कर कोई पृथक् कर नहीं है।

—o—

१—शुद्ध आय पर राज्य कर।

शुद्ध आयको प्राप्त करनेमें राज्योंको और इसके देनेमें नागरिकोंको कुछ भी कठिनता नहीं उठानी पड़ती। व्यापार व्यवसायकी वृद्धिके साथ साथ शुद्ध आयके बढ़नेसे आयकर भी बढ़ आता है

और व्यापार व्यवसायके घटनेके साथ साथ आय भी घट जाता है। आयकरमें जो कुछ झमेला है वह यह है कि नागरिकोंकी शुद्ध आयको कैसे जाना जाय। माना कि कुछ एक स्थानोंमें शुद्ध आय अति स्पष्ट है, परन्तु जहां यह बात नहीं है वहाँ क्या किया जाय। इस कठिनताको दूर करनेका एक ही तरीका है कि प्रत्येक घटनापर पृथक पृथक ही विचार किया जाय। आज कल शुद्ध आय निम्नलिखित स्थानोंसे प्राप्त की जाती है।

शुद्ध आय प्राप्त करनेके नाना स्थान

(१) सेवा तथा नौकरीसे प्राप्त आय कर (भृति)

(२) संपत्तिसे प्राप्त आय (व्याज, लाभ तथा लगान)

(३) संपत्तिकी आय (जायदाद प्राप्ति)

(१) <u>सेवा तथा नौकरीसे प्राप्त आयः</u>—सेवा तथा नौकरीसे प्राप्त आयपर भौमिक संपत्ति तथा पूंजीसे प्राप्त आयकी अपेक्षा कुछ कम राज्य कर लगाया जाता है। यह इसी लिए कि भौमिक संपत्ति तथा पूंजीकी आय उनकी अपेक्षा ज्यादा स्थिर है। सेवकों तथा श्रमियोंके पास स्थिर संपत्ति न रहनेसे अपने परिवार तथा बालबच्चोंके भविष्यका उपाय उनको अपनी तनख्वाहसे ही करना पड़ता है। स्थिर संपत्ति तथा पूंजीसे आय प्राप्त करनेवालोंके साथ यह बात नहीं है।

नौकरी पर कम कर

(२) <u>संपत्तिसे प्राप्त आयः</u>—संपत्तिसे प्राप्त

आयकर कर लगानेकी कठिनाई

होने वाली आयपर आय कर लगाना बहुत ही कठिन है। यह क्यों? इसीलिये कि संपत्तिसे प्राप्त आय सदा बदलती रहती है (यहां संपत्तिसे तात्पर्य पूंजीका है) इस आयका भौमिक संपत्तिकी आयसे मुकाबला नहीं किया जा सकता है। यह आम तौर पर देखा गया है कि उन्नतिशील जातियोंमें पूंजीसे प्राप्त आय (व्याज) दिनपर दिन कम हो जाती है और भौमिक लगान दिनपर दिन बढ़ता जाता है। पौरुषेय आय तथा सांपत्तिक आय (Property and income) में यही बड़ा भारी भेद है। यहां एक बात और स्मरण रखनी चाहिये कि पूंजीसे दो प्रकारकी आय होती है। (१) व्याज और (२) लाभ। यह प्रायः देखा गया है कि व्याजकी मात्रा कम होते हुए भी लाभकी मात्रा पूर्ववत बनी रहे। अतः राज्यकर लगाते समय बड़ी सावधानीकी जरूरत है।

(३) संपत्ति की आयः—संपत्तिकी आयका तात्पर्य मृत पुरुषकी जायदाद प्राप्त होनेसे है। यह एक प्रकारकी आकस्मिक घटना है। अतः इसपर राज्य-करका लगाना स्वाभाविक ही है। इसपर आगे चल कर बहुत विस्तृत तौरपर लिखा जायगा, अतः इसको यहांपर ही छोड़ देना उचित है। *

* महाशय आडमरचित फाइनान्स (१८९८)
पृ०—३५४—३६१

२

२—संपत्तिपर राज्य कर।

संपत्तिपर राज्य कर दो तरीके

सपत्तिपर राज्य कर दो ही तरीकोंसे लगाया जा सकता है। पहिला तरीका तो यह है कि आय आदिका बिना ख्याल किये ही प्रत्येक नागरिकको उत्पादक तथा अनुत्पादक संपूर्ण संपत्तिका मूल्य लगा लिया जाय और उसपर मूल्यके अनुसार राज्य कर लगा दिया जाय। इस प्रकारका राज्य कर साधारण संपत्तिकरके नामसे प्रसिद्ध है। दूसरा तरीका यह है कि आयके अनुसार उत्पादक संपत्तिका वर्गीकरण कर लिया जाय और उसपर राज्य कर लगा दिया जाय। इस प्रकार संपत्ति कर दो प्रकारका हुआ।

I मूल्यानुसार संपत्ति कर—साधारण संपत्ति कर (General property tax)

II आयानुसार संपत्ति कर = विशेष संपत्ति कर (Special property tax)*—*

अब प्रत्येक करपर पृथक पृथक तौरपर विचार करनेका यत्न किया जायगा।

* साधारण सम्पत्ति कर' शब्द आय व्यय शास्त्रमे प्रचलित है। परन्तु 'विशेष सम्पत्ति कर' यह शब्द अभी तक आय व्यय शास्त्रमे कहीपर भी काममें नहीं लाया गया है। विचारकी सुगमताके लिए साधारण करके जोड़में 'विशेष सम्पत्ति कर' शब्दको हमने बना लिया है। (लेखक)।

I

साधारण सम्पत्ति कर

साधारण संपत्ति-करके क्या दोष हैं इसपर इस प्रकरणमें कुछ भी प्रकाश न डाला जायगा। जायदाद प्राप्ति करके सदृश ही इसपर भी अगले परिच्छेदमें ही विस्तृत रुपसे विचार किया जायगा। यहांपर केवल दो ही बातोंपर प्रकाश डाला जावेगा।

(१) साधारण संपत्ति-करका सिद्धान्त।

(२) साधारण संपत्ति-करका इतिहास।

(१) साधारण सपत्ति करका सिद्धान्तः—*साधारण संपत्ति करका सिद्धान्त अति सरल है। इसके अनुसार संपत्तिको आयका स्रोत समझा जाता है और यही कारण है कि वैयक्तिक सपत्तिका कल्पित मूल्य लगाकर उसपर (व्याज की बाजारी दरको सामने रखते हुए) राज्य कर लगा दिया जाता है। इस सिद्धान्तको ठीक ढंग पर समझनेके लिए संपत्ति तथा आयका पारस्परिक क्या सम्बन्ध है? इसका ज्ञान लेना, अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

सम्पत्ति आय करका स्रोत है

साधारण सम्पत्ति-करके पक्षपोषकोंका मत है कि सम्पूर्ण सम्पत्ति एक सदृश है। प्रत्येक

* सैलिग्मैन, "एस्सेज इन टेक्सेशन" (१८७८) पृष्ठ ५५६-६१ आडमरचित "फाइनान्स" (१८९८) पृष्ठ ३६१—३६६

व्यक्ति अपनी सम्पत्तिको बेचकर उत्पादक कामों- में लगा सकता है। यदि वह ऐसे कामोंमें नहीं लगाता है तो यह उसकी इच्छा है। इसका दण्ड राज्य क्यों भोगे ? राज्यका तो यही कार्य है कि उसपर राज्यकर लगा दे। इसका उत्तर यह है कि राज्यको वास्तविक अवस्थाको सम्मुख रख कर ही राज्यकर लगाना चाहिए। सम्पूर्ण सम्पत्तिको उत्पादक मान कर, कर लगाना व्यक्तियोंपर अत्याचार करना है। इस अत्याचार- से बचनेके लिए यदि नागरिक अपनी सम्पत्ति- को झूठ बोल करके छिपावें तो इसपर आश्चर्य करना वृथा है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि राज्यका सम्पत्तिसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध ही क्या है ? जो कि सम्पत्ति राज्यको कर दे। राज्यका प्रत्यक्ष सम्बन्ध पुरुषोंसे है न कि सम्पत्तिसे। सम्पत्ति राज्यके बिना भी इस संसारमें सुरक्षित थी। पुरुष ही राज्यके बिना नहीं रह सकते हैं अतः उन्हींसे राज्यका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यही कारण है कि पुरुषोंका कर्तव्य है कि राज्यको यथाशक्ति सहा- यता पहुँचावें। इस सहायताका आधार एक मात्र सम्पत्तिको बनाना ठीक नहीं है। किसी जमानेमें यह ठीक था, परन्तु अब यह बात नहीं रही। यदि प्राचीन कालमें भूमि राज्यकरका एक मात्र आधार थी तो उसका कारण यह था कि लोगोंकी आयका एक मात्र यही साधन थी। एक बात यहाँपर

सब प्रकारकी सम्पत्तिपर कर लगाना चाहिए

राज्यका व्य- क्तिसे सबंध है सम्पत्तिसे नहीं

अब भाधा- रण सम्पत्ति के ख्यालसे कर लगाना ठीक नहीं

भुलानी न चाहिए और वह यह है कि साधारण सम्पत्ति करका आधुनिक स्वरूप प्राचीन कालमें विद्यमान न था। साधारण सम्पत्तिको आयका स्रोत कल्पित करके उसके मूल्यपर किसी ज़माने-में भी राज्यकर न लगाया गया था। यदि प्राचीन कालमें साधारण संपत्ति-कर प्रचलित था तो उनका आधार दूसरा था। महाशय सैलिग्मैन इसी बातको ठीक ढंगपर न समझे और यही कारण है कि साधारण सम्पत्ति-करका इतिहास ठीक ठीक न लिख सके। भूमि गृह आदि संपत्तियों-पर आयको सन्मुख रख कर राज्यकर लगाना चाहिए। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि मूल्य-को सन्मुख रख कर सम्पत्तिपर राज्यकर लगाना बहुत ही बुरा है।

प्राचीन काल

महाशय सै-लिग्मैन

(२) साधारण सम्पत्ति करका इतिहासः—

राज्योंने प्राचीनसे प्राचीन कालमें सम्पत्तिको आयका साधन समझते हुए उसपर राज्यकर लगाया था। शुरू शुरूमें भूमि ही एक मात्र आय-का साधन थी अतः उसीपर एक मात्र राज्य-कर था। परन्तु ज्योंही राष्ट्रोंने उन्नति करना शुरू किया उनके आयके स्थान बढ़ गये। परिणाम इसका यह हुआ कि भूमिके साथ साथ अन्य स्थानों पर भी राज्य-कर लग गये।

आरम्भिक विचार

भूमिसे अन्य स्थानोंमें राज्य कर

एथेन्समें पहले पहल भूमि आदि स्थिर सम्पत्तिपर ही राज्य-कर था। कुछ ही समयके

एथेन्समें राज्य कर

बाद (एथेन्सका व्यापार व्यवसाय बढ़ते ही) धन तथा पूँजीको भी आयका साधन समझ करके उनपर भी राज्य-कर लगाया गया। नासिनियस-के समयमें राज्य-करका आधार भूमि गृह, दास, पशु, सिक्के आदि सम्पूर्ण पदार्थ समझे जाने लगे।* भारतमें चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमें भी व्यापार व्यवसायसे लेकर भूमि पर्यन्त सम्पूर्ण पदार्थ राज्य-करके आधार थे।† रोमका इतिहास भी एथेन्सके सदृश ही है।

चन्द्रगुप्त मौर्य

शुरू शुरूमें रोम कृषिप्रधान था। अत वहाँ भूमिपर ही राज्य-कर था। व्यापार व्यवसायकी उन्नतिके अनन्तर वहाँ भी राज्य-करका क्षेत्र विस्तृत हो गया। भूमिके साथ साथ जहाज़, गाड़ियाँ, सिक्के, गहने, कपड़ों आदिपर राज्य-कर लगाया गया। ११० विक्रमी पूर्वके अनन्तर कुछ एक कारणोंसे रोमन नागरिकोंपरसे प्रत्यक्ष-कर सर्वथा ही हटा दिये गये। अतः इसपर विशेष विचार करना कठिन है।

रोमन राज्य कर

रोमन प्रान्तोंके राज्य करका इतिहास भी उपरिलिखित सचाईको ही प्रकट करता है। रोमन साम्राज्यके आरम्भ होनेपर ही रोममें पौरुषेय सम्पत्ति-कर प्रचलित हुआ। कैलिगुलाने इस

*बोक्ख, पब्लिक इकानोमी आफ़ अथेनियन्स, पुस्तक ४ परिच्छेद ५।

† देखो कौटिलीय अर्थशास्त्रम्।

रोममें पौरुषेय कर

प्रकारके करोंको लगाना शुरू किया। कराकलाके समयमें ये कर सबपर लगाये जाने लगे और रोमन नागरिकका अधिकार भी सबको इसीलिये दे दिया गया कि यह कर सबको देना पड़े। लोग इस प्रकारके करसे बचनेके लिये अपनी सम्पत्तिको पूर्ण तौरपर न बताते थे। परिणाम इसका यह था कि लोगोंपर भयंकर अत्याचार किये जाते थे और स्त्रीसे पतिके विरुद्ध और पुत्रसे माताके विरुद्ध बातें पूँछी जाती थीं और कोड़ोंसे मार मारकर सम्पत्तिका पता लगानेका यत्न किया जाता था।

रोमन साम्राज्यके बाद यूरपमें राज्य करका स्वरूप

रोमन साम्राज्यके भंग हानेपर यूरोपीय देशोंमें राज्य कर-प्रणाली टूट गयी। माण्डलिक राजा तथा ताल्लुकेदार लोग स्वतन्त्र हो गये। जिन स्थानोंसे प्राचीन कालमें राज्य कर प्राप्त किया जाता था, वह स्थान इन लोगोंके आयके साधन बन गये। फयूडल कालमें राज्यकरोंका वास्तविक आधार भूमि थी। नवीन कालके आरम्भमें भूमिके साथ साथ राज्यकरका क्षेत्र शनैः शनैः अन्य स्थानोंमें भी पहुंच गया। राज्य करके स्थान निम्न लिखित हो गये। (I) घरका सामान (II) हथियार, आभूषण, कपड़े (III) शराब कोयला तथा घास (IV) भोजन तथा अन्न (V) घोड़े तथा पशु (VI) भिन्न भिन्न प्रकारके औज़ार (VII) बेलन तथा

पदार्थ (VIII) सिक्का तथा धन (IX) साख इत्यादि इत्यादि । * *

साधारण संपत्ति-करका सबसे बड़ा दोष यह है कि यह व्यक्तियों पर समान तौर पर नहीं पड़ता है। १७५१ वि० में महाशय त्रिस्कोने लिखा था कि "गरीबोंपर राज्यकर ज्यादा है और अमीरों-पर राज्यकर बहुत कम है" १८ वीं सदीमें भी भिन्न भिन्न विचारकोंकी इस कर पर यही सम्मति थी कि "यह कर बहुत भयंकर है और सबपर समान नहीं है। किसानोंपर राज्य कर ज्यादा है और अमीरोंपर कुछ भी नहीं है।" महाशय वालपोल तथा डिकरकी भी यही सम्मति हैं। स्काटलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी तथा इंगलैंड आदि देशोंका इतिहास इसी बातका साक्षी है।†

साधारण स-म्पत्ति करका दोष

गरीबों पर ज्यादा और अमीरों पर कम कर लगता है।

II

विशेष संपत्ति कर

आयके अनुसार सम्पत्तियोंपर राज्य कर लगानेकी विधिका नाम विशेष-सम्पत्ति-कर विधि है। विशेष-सम्पत्ति-कर प्रायः निम्नलिखित चार प्रकारकी सम्पत्ति पर ही लगता है।

आयके अनु-सार कर ल-गाना

---

* महाशय सेलिग्मैन रचित एस्सेज इन् टैक्सेशन (१८९५ ई०) पृ० ३३—३८

† महाशय सेलिग्मैन का एस्सेज इन टैक्सेशन (१८९५) ४५–५७

चार प्रकार-की सम्पत्तियों पर कर लगना

(१) पुरुष सम्बन्धी संपत्ति।
(२) भूमि सम्बन्धी संपत्ति।
(३) पूँजी सम्बन्धी संपत्ति।
(४) उपभोग योग्य पदार्थ सम्बन्धी संपत्ति।

वोट आदिके अधिकार सी सम्पत्ति पर राज्यकर नहीं लगना

(१) पुरुष सम्बन्धी सम्पत्ति—प्रतिनिधि तन्त्र राज्योंमें वोट सम्बन्धी अधिकारको भी एक प्रकार की सम्पत्ति समझते हैं। यह इसीलिये कि इस अधिकारके द्वारा वह अप्रत्यक्ष तौर पर राज्यका नियन्त्रण करते हैं। प्राचीन कालमें दास और अर्ध दासोंसे काम लेनेका अधिकार भी एक प्रकारकी सम्पत्ति था। इस प्रकारकी सम्पत्तिपर अभी तक राज्योंने कर नहीं लगाया है। इसका एक तो यह कारण है कि यह संपत्ति पूँजी या भूमिके सदृश व्यापारीय संपत्ति नहीं है और दूसरा कारण यह है कि नये नये प्रकारके करोंके लगानेमें राज्याधिकारी लोग घबड़ाते हैं। भविष्यमें इस सपत्तिपर राज्य कर लगेगा या नहीं इसका निर्णय अभीसे नहीं किया जा सकता।

(२) भूमि सम्बन्धी संपत्तिः—साधारण संपत्ति करके इतिहासमें इस विषयपर प्रकाश डाला जा चुका है कि सबसे पहिले भूमिपर राज्य कर लगा था। संसारके सभी देशोंमें भौमिक कर एक प्रकारका स्थिर कर समझा आता है। भारतवर्षमें सरकारने भौमिक करको

लगानका रूप दे दिया है। वास्तवमें वह कर ही है। सरकारके एक मात्र कह देनेसे भारतीय प्रजा-की भौमिक संपत्ति सरकारकी नहीं बन सकती। इस दशामें भौमिक करको सरकारका लगानका नाम देना ठीक नहीं है। भारतमें भौमिक कर संसारके संपूर्ण देशोंके भौमिक करसे अधिक है। यही कारण है कि भारतीय किसान दरिद्र हो गये हैं, भारतमें अकालोंकी संख्या दिन पर दिन बढ़-ती जाती है। भौमिक करके विषयमें विचार करते समय एक बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि स्थिर संपत्ति (Real) तथा भूमिमें बड़ा भारी भेद है। स्थिर संपत्तिमें मकान, बाड़ा आदिके द्वारा जो उन्नति की जाती है उस उन्नतिका बदला व्याज कहाता है और उसमें जो भूमि लगी होती है उसका बदला लगान कहाता है। सारांश यह है कि स्थिर संपत्तिमें लगान तथा व्याज दोनों ही सम्मिलित होते हैं। जब कि भूमिमें एकमात्र लगान ही सम्मिलित होता है राज्य कर लगाते समय कराध्यक्षको इस बातका विशेष तौर पर ध्यान कर लेना चाहिए जिससे राज्य कर ठीक ढंग पर लगाया जा सके।

भारत सरकारका भौमिक करको लगान बनाना ठीक नहीं है

भारतमें अकाल

स्थिर सम्पत्ति तथा भूमि और व्याज तथा लगानमें भेद

(३) पूंजी सम्बन्धी संपत्ति—पूंजीपर आकर विशेष संपत्ति करने सफलता नहीं प्राप्त की है। मध्य कालमें नगरोंके व्यापार व्यवसायका काम संघों तथा गिल्डोंके द्वारा होता था। राज्य इन संघों तथा

प्राचीन कालमें वैयक्तिक पूँजी पर कर नहीं लगता था

गिल्डोंसे ही राज्य कर ग्रहण करते थे। उन दिनों में व्यक्तियोंकी पूँजी पर राज्य कर न लगता था। इसमें सन्देह भी नहीं है कि भिन्न भिन्न व्यक्तियों को अपनी हैसियत तथा उच्च पदके कारण राज्य कर देने पड़ते थे। यह भी तब था, जब कि वह खास खास प्रकारके पदार्थोंको प्रयोगमें लाते थे। संघों तथा गिल्डोंके टूटने तथा जातीयताके उत्पन्न होनेके अनन्तर राज्य कर वैयक्तिक पूँजी पर लगाया जाने लगा। परन्तु इसमें राज्योंको सफलता न प्राप्त हुई। इसके निम्न लिखित तीन कारण थे।

राज्योंकी असफलता के तीन कारण

(क) संपत्ति कर सिद्धान्तके अनुसार संपत्ति आयका श्रोत है अतः उस पर राज्य कर लगना चाहिये। इस कथनमें एक हेत्वाभास है जिसको कभी न भुलाना चाहिये। हो सकता है कि संपत्ति आयका श्रोत होते हुए भी प्रत्यक्ष तौर पर आयका श्रोत न हो। दृष्टान्त के तौर पर एक लोहार अपने औज़ारोंसे काम करके धन कमाता है। इस दशा में उसकी आमदनीका मुख्य कारण उसका श्रम है न कि औज़ार। औज़ार तो उसमें साधनका काम करते हैं। संपत्ति कर इस बातको नहीं देखता है। वह श्रमको आयका वास्तविक स्रोत न समझ कर औज़ारोंको समझता है अतः उसी पर राज्य करके रूपमें आकरके पड़ता है। परिणाम इसका यह हुआ कि संपत्ति करने अभी तक सफलता नहीं प्राप्त की है।

संपत्ति कर सिद्धान्तमें हेत्वाभास

किन किन स्थानोंसे राज्य-कर प्राप्त किया जा सकता है ?

(ख) संपत्ति द्वारा आय प्राप्त करनेमें संपत्ति-के संगठनकी आवश्यकता है। आजकल कम्पनियां तथा भिन्न भिन्न प्रकारकी समितियां संपत्ति द्वारा आयको प्राप्त कर रही हैं। व्यक्तियों ने भी अब पृथक् पृथक् अपनी पूंजीके द्वारा आय प्राप्त करना छोड़ कर कम्पनियों तथा समितियोंके द्वारा ही आय प्राप्त करना शुरू किया है। परिणाम इसका यह है कि कम्पनी तथा व्यक्ति दोनों ही साधारण संपत्ति करसे अपनी आयको बचानेका यत्न करते हैं। यही कारण है कि आगे चल कर हम समिति तथा कम्पनी करपर विशेष प्रकाश डालनेका यत्न करेंगे।

लोगोंका सम्प- त्तिकरसे बचनेका उद्योग

(ग) सब प्रकारकी सपत्ति समान नहीं है। एकाधिकारी व्यवसायोंको पूंजोसे जहां अधिक लाभ होता है वहां अन्य व्यवसायोंकी पूँजीसे उतना लाभ नहीं होता है। अतः लाभको देख करके भिन्न भिन्न पूजियोंपर भिन्न भिन्न राज्य कर ही लगाना चाहिये। साधारण संपत्ति कर सिद्धान्त इसी बातकी उपेक्षा करता है। वह सारीकी सारी सम्पत्तिको एक श्रेणी का समझता है जो कि गलत है।

साधारण स- म्पत्ति कर सिद्धान्त [illegible] का प्रभेद नहीं करता

(४) उपभोग योग्य पदार्थ सम्बन्धी सपत्तिः बहुतसे लोगोंके अपने मकान होते हैं। प्रश्न यह है कि उनके मकानोंको व्यापारीय पूँजीके सदृश

मकानों पर कर लगाना चाहिए

समझा जाय वा नहीं? यद्यपि प्रत्यक्ष तौर पर उनको अपने मकानोंसे कोई आमदनी नहीं होती तौ भी मकानोंको व्यापारीय पूँजीके सदृश ही समझना चाहिए। क्योंकि वही मकान दूसरोंको किराये पर दिए जा सकते हैं और जो ऐसा नहीं करते हैं और उन मकानोंमें स्वयं रहते हैं तो एक प्रकारसे वह स्वयं उन मकानोंका किराया खाते हैं। ऐसी पूँजी पर राज्य कर न लगा कर व्यापारीय तथा व्यावसायिक पूँजी पर राज्य कर लगाना एक प्रकारसे अन्याचार करना होगा। चाहे आयको राज्य करका आधार रखा जाय चाहे सपत्तिको इस बातका ख्याल अवश्य ही रखना चाहिये।

३—व्यापारीय तथा व्यावसायिक कर

व्यापारीय तथा व्यावसायिक करका स्वरूप

संपत्ति तथा शुद्ध आयपर राज्य कर किस प्रकार लगाया जाता है इस पर प्रकाश डाला जा चुका है। इस प्रकरणमें व्यापार तथा व्यवसाय पर किस प्रकार राज्य कर लगाया जाता है इस पर प्रकाश डाला जायगा। शुद्ध-आय कर तथा संपत्ति कर प्रत्यक्ष तौर पर व्यक्तियों पर लगाये जाते हैं परन्तु व्यापारीव तथा व्यावसायिक करके साथ यह बात नहीं है। यह व्यक्तियों पर अप्रत्यक्ष तौर पर आकर पड़ते हैं। बहुत वार

महाशय आदम रचित फाइनान्स (१८९८) ३६८—३७७

जो यह कर व्यक्तियोंका बिलकुल भी ख्याल नहीं करते हैं।

व्यापारीय कर तथा व्यावसायिक करके लगाते समय राज्य संपत्तिके मूल्यको आधार नहीं रखते हैं अतः संपत्ति करके दो दोषोंसे यह कर बच जाता है। शुद्ध आय कर तथा संपत्ति करके सदृश यह कर सरल भी नहीं है। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि शुद्ध आय कर तथा संपत्ति करसे लोग छल कपट तथा झूठ बोलनेके द्वारा बच जाते हैं। परन्तु इन करोंसे उनका बचना कठिन है। क्योंकि इन करोंका व्यक्तियोंके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो करके व्यापार व्यवसाय सम्बन्धी पेशोंके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यह कर चार प्रकारका होता है।

व्यापारीय तथा व्यावसायिक करके गुण।

(१) लाइसैन्स कर (License taxes)

(२) अधिकार कर (Franchise taxes)

(३) समिति कर (Corporation taxes)

(४) व्यावसायिक तथा व्यापारीय कर (Excise & custom taxes)

(१) लाइसैन्स करः—विशेष विशेष व्यापारीय तथा व्यावसायिक कार्योंके करनेकी आज्ञा देनेके बदलेमें राज्य जो कर लेता है वह लाइसैन्स कर कहलाता है। भारतमें इक्कों तथा घोड़ा गाड़ी चलाने तथा शराबकी दूकान खोलने आदिके लिये

लैसेन्स करका स्वरूप

जनताको लाइसैन्स लेना पड़ता है और राज्यको इसके लेनेके बदलेमें कर देना पड़ता है।

अधिकार कर और लैसेन्स करमें भेद

(२) अधिकार करः–लाइसेन्स कर तथा समिति करके बीचमें अधिकारकरका स्थान है। नगरोंमें सड़कोंपर ट्रामकी सड़क बनाने तथा ट्राम चलाने के लिये कम्पनियोंको नागरिक प्रबन्ध कारिणी सभा या म्युनिसिपैलिटीसे आज्ञा लेनी पड़ती है और इस आज्ञाके लेनेके बदलेमें राज्य कर देना पड़ता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लाइसैन्स करका सम्बन्ध विशेषतः स्पर्धाजन्य व्यवसायों तथा व्यापारोंके करने देनेके साथ है और अधिकार करका सम्बन्ध विशेषतः राष्ट्रीय पदार्थों तथा संपत्तिके प्रयोग करने देनेकी आज्ञाके साथ है। यद्यपि यह लक्षण सर्वांशमें सत्य नहीं हैं तौ भी इसमें सन्देह नहीं है यही लक्षण अधिकसे अधिक सत्यके पास पहुंचते हैं।

समिति करका स्वरूप

समिति करः—कम्पनी या समितिके रूपमें सगठित व्यवसायपर लगा हुआ राज्यकर समितिकरके नामसे पुकारा जाता है। राज्य नियमोंके सन्मुख समितियां तथा कम्पनियां साधारण व्यक्तिके सदृश ही हैं। यही कारण है कि समितियोंको भी व्यक्तियोंके सदृश ही व्यापारीय तथा व्यावसायिक कर देने पड़ते हैं।

समितियां तथा कम्पनियां राज्यसे प्रमाण-पत्र

समितियां तथा कम्पनियां पर सम्पत्ति कर का प्रयोग

या चार्टर प्राप्त कर साधारण व्यक्तियोंके सदृश ही व्यापार व्यवसायका काम शुरू करती हैं। हिस्सेदारोंसे पूँजी एकत्रित कर उस पूँजीके सहारे बहुत धन उधार लेकर कम्पनियां बड़ी मात्रामें अपने कामको आरम्भ करती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कम्पनियोंके पास दो प्रकारका धन होता है जिसके द्वारा वह आय प्राप्त करती हैं। एक तो हिस्सेदारोंका धन और दूसरा ऋणका धन। शुरू २ में राज्योंने यहां पर भी साधारण संपत्ति करके सिद्धान्तको लगाया परन्तु सफल न हो सके व्यक्तियोंके सदृश ही कम्पनियोंने भी अपने धनका पूरे तौर पर पता नहीं दिया। परिणाम इसका यह हुआ है कि इन पर भी आजकल आय कर सिद्धान्तके द्वारा ही राज्य कर लगाया जाता है इसके ऊपर विशेष तौर पर हम आगे चल कर लिखेंगे अतः यहां पर हम इसको छोड़ते हैं।

(४) व्यावसायिक तथा व्यापारिककरः—कारखानों पर जो राज्य कर लगाया जाता है वह व्यावसायिक कर (एक्साइज ड्यूटी) कहलाता है। चुंगी कर व्यापारीय कर तथा व्यावसायिक करोंको व्ययी कर (कंजंशन टैक्स) के नामसे भी पुकारा जाता है। क्योंकि इन करोंका प्रभाव पदार्थोंकी कीमतोंको चढ़ा कर करभारको व्ययियों पर फेंक देना है। यह घटना कब होती है

और कब नहीं होती है। इस पर हमने कर प्रक्षेपणके प्रकरणमें विस्तृत तौर पर लिखा है अतः यहां पर फिर दुहराना निरर्थक प्रतीत होता है।

यापारिक करके भेद

व्यापार पर जो राज्य कर लिया जाता है वह व्यापारीय कर कहाता है। चुंगी कर आयात कर (इम्पोर्ट ड्यूटी) निर्यात कर (एक्सपोर्ट ड्यूटी) यान कर (ट्रांस्पोर्ट ड्यूटी) आदि अनेक प्रकारके कर व्यापारीय करके ही भेद हैं।

व्यवसायिक कर और व्यापारिक करमें भेद

व्यावसायिक कर जहां व्यवसायियोंसे एकत्रित किया जाता है वहां व्यापारिक कर एक मात्र व्यापारियोंसे ही एकत्रित किया जाता है। इन करोंका प्रयोग अति प्राचीन है।

चाणक्यके समयमें इनका प्रयोग

चाणक्यके समयमें इन करोंकी मात्रा किस प्रकार अधिक थी इसका ज्ञान कौटिलीय अर्थ शास्त्रसे उत्तम विधि पर प्राप्त किया जा सकता है।

तीन परिणाम

इस परिच्छेदमें दिये हुए राज्यकर प्राप्तिके स्थानोंके अध्ययनसे निम्न लिखित तीन परिणाम निकलते हैं जिनको कभी न भुलाना चाहिए।

व्यक्तियोंसे आयकर

(क) वैयक्तिक सेवाओं तथा श्रमोंसे जो आय हो उस पर एक मात्र आय कर ही लेना चाहिये। आयकर लेनेमें आवश्यकीय आयको छोड़ देना चाहिये।

(ख) संपत्ति करका प्रयोग एक मात्र भूमि

पर ही होना चाहिए। और प्रकारकी संपत्ति पर इसका प्रयोग न करना चाहिए।

भूमिपर मम्प- त्तिकर

(ग) व्यापारीय तथा व्यावसायिक करों पर ही राज्यको यथा शक्ति भरोसा करना चाहिए।*

व्यापारिक व्यावसायिक करोंपर भरोसा करना चाहिए

४—एकाकी कर या सिंगल टैक्स

यथा सम्भव भिन्न २ स्थानोंसे (राज्य कर) को प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिए। किसी एक ही स्थानसे राज्यकरका ग्रहण करना ठीक नहीं है। ऊपर दिखाया जा चुका है कि निम्नलिखित स्थानोंसे ही राज्य-कर प्राप्त किया जा सकता है।

(१) साधारण संपत्ति तथा आय कर।

(२) व्यापारीय तथा व्यावसायिक कर।

(३) भूमि कर।

इनमेंसे यदि एकमात्र एक स्थानपर कर लगाया जावे तो क्या परिणाम होगा इसको दिखानेका अब यत्न किया जायगा।

(१) साधारण संपत्ति तथा आयपर एकाकी करः—संपूर्ण करोंको हटाकर एक मात्र संपत्ति वा आयपर एकाकी कर लगाना किसी भी विचारकको पसन्द नहीं है। पौरुषेय करों (परसनल टैक्स) के एकत्रित करने तथा लगानेमें जो कठि-

केवल आयकर तथा सम्पत्ति-करका प्रयोग बुरा है

* महाशय आडम रचित फाइनान्स पृ—३७७—३८६

गई है वह स्पष्ट है। संपूर्ण आयोंका वर्गीकरण करना और उनपर इस प्रकार राज्यकर लगाना और समानता नियमका भंग न होने देना बहुत ही कठिन है।

केवल व्यापारिक व्यावसायिक करोंके लगानेका प्रभाव

(२) व्यापार तथा व्यवसायपर एकाकी कर.– इसके पक्षमें चिरकालसे विचारक लोग हैं। १८ वीं सदीके राज्य-कर सम्बन्धी झगड़ोंका केन्द्र यही राज्य-कर था। यह पूर्व ही दिखाया जा चुका है कि इस करके लगानेमें कुछ भी कठिनाई नहीं है और इसकी उत्तमता यह है कि यह प्रायः व्ययियों पर पड़ता है। इन करोंसे कोई भी व्यक्ति नहीं बच सकता। क्योंकि पदार्थोंके बिना मनुष्योंका जीवन-निर्वाह बहुत ही कठिन है। जो कर पदार्थोंपर जाकर पड़ता है वह एक प्रकारसे सारे मनुष्योंपर पड़ता है ऊपरि लिखित विचारमें जो कुछ हेत्वाभास है वह यह है कि पदार्थोंका प्रयोग आयके बढ़नेके साथ बढ़ता है और आयके घटनेके साथ घटता है। यही नहीं, सब पदार्थ एक सदृश भी नहीं होते। कई पदार्थ जीवनोपयोगी होते हैं और कई पदार्थ भोग-विलासके लिए होते हैं। यदि सब पदार्थोंपर एक सदृश राज्य-कर लगा दिया जाय तो इससे समानताका नियम टूट जाता है। यदि पदार्थोंका उपयोगके अनुसार वर्गीकरण करके राज्य-कर लगाया जाय तो इस करकी

सरलता नष्ट हो जायगी और आयव्यय सचिव-
को बहुतसे विघ्नोंका सामना करना पड़ेगा।

हालैण्ड और प्रशियामें इसका प्रभाव

व्यापार व्यवसाय पर एकाकी करका यूरोपीय देशोंमें प्रयोग हो चुका है और उसके परिणामोंका ज्ञान भी हमको हो गया है। हालैण्डके ऐसे ही करके विषयमें १७२६ वि० में विलियम टैम्पल ने कहा था कि हालैण्डके अन्दर एक तस्तरी भर मछली खानेके लिये भिन्न भिन्न प्रकारके तीस राज्य कर देने पड़ते हैं। इसी प्रकार १७७४ वि० में प्रशियाके अन्दर २७७५ पदार्थों पर भिन्न भिन्न प्रकारके ५७ कर थे। व्यापार व्यवसायके एकाकी करका इतिहास इसी बातको प्रगट करता है कि यह राज्य कर बहुत ही झमेलोंसे भरा हुआ है और इसमें वह सरलता तथा समानता नहीं है जो शुरू शुरूमें समझी जाती थी।

झमेलोंकी अधिकता

इन करोंसे व्यक्तियोंका खर्च बढ़ता है

सबसे बड़ी बात तो यह है कि राज्यको जहां तक हो सके यह यत्न करना चाहिए कि व्यक्तियोंके पास रुपया बचे। क्योंकि यही रुपया व्यापार व्यवसायमें लगता है। व्यय योग्य पदार्थों-पर लगा हुआ राज्य कर लोगोंके खर्चोंको बढ़ा देता है। इससे लोगोंके पास बहुत कम धन बचता है जो कि अन्तमें देशकी व्यापारीय तथा व्यावसायिक उन्नतिको धक्का पहुँचाता है। इंग्लैण्डमें अन्न विधानको हटाने तथा करके

मालको स्वतन्त्र तौर पर देशमें आने देनेका रहस्य भी इसीमें है। *

(३) एकाकी भूमिकरः—आज कल भूमिपर एकाकी करके लगने के पक्षमें बहुतसे विचारक हैं। इस पर विस्तृत विचारकी आवश्यकता है अतः—हम इस पर भी अगले परिच्छेदमें ही प्रकाश डालेंगे। यहां पर हमको इतना ही कहना है कि राज्यको भिन्न भिन्न स्थानोंसे कर प्राप्त करनेका

राज्यको एक ही स्थानसे कर पानेका यत्न नहीं करना चाहिए

यत्न करना चाहिये। किसी एक ही स्थानसे संपूर्ण करोंको ग्रहण करनेकी आशा करना दुराशा मात्र है।†

५—कर मात्रा टैक्स रेट का नियम

नियमोंकी विभिन्नता

राज्यकर लगाने के लिये कर मात्राका नियम जानना नितान्त आवश्यक है। पहिले आय या संपत्तिको आधार बना कर प्रत्यक्ष राज्य कर लगाना हो तो उसका कर मात्रा सम्बन्धी और नियम है और यदि मूल्यको आधार बना करके अप्रत्यक्ष कर लगाना हो तो उसका कर मात्रा सम्बन्धी और नियम है। दृष्टान्त तौर परः—

---

* देखो लेखकका "सपत्ति शास्त्रका उपक्रम" (इग्लैण्टका आर्थिक इतिहास),

* आडम रचित फाइनान्स (१८९८) पृ० ४२१—४२६ बास्टेबूल रचित पब्लिक फायनन्स "पृष्ठ ४७२ ३२३ कोह" "दी माइन्स आफ फायनन्स" पृष्ठ ४०६।

किन किन स्थानोंसे राज्य-कर प्राप्त किया जा सकता है ?

(१) <u>प्रत्यक्ष कर सम्बन्धी कर मात्राका नियम</u>:—करद संपत्ति या आयको निश्चित करकी राशिसे भाग देने पर कर मात्राका पता लग जाता है। अमेरिकामें साधारण संपत्ति करकी कर मात्राको इसी प्रकारसे निश्चित किया जाता है। आय करकी कर मात्राके निश्चयमें भी बहुत बार इसी तरीकेसे काम लिया जाता है।

निश्चित कर की राशिमें आयका भाग देनेपर मात्रा निकलता है

(२) <u>अप्रत्यक्ष कर सम्बन्धी कर मात्राका नियम</u>.—आयात कर, व्यापारीय व्यावसायिक कर तथा समिति कर आदि अप्रत्यक्ष करोंमें कर मात्राका निश्चय करना बहुत ही कठिन है। यह क्यों? यह इसी लिए कि इनमें कर मात्राकी अधिकतासे देशके व्यापार तथा व्यवसायको नुकसान पहुँच सकता है। भारतमें भौमिक लगानके बढ़नेसे किसानोंकी हालत बिगड़ गयी है और १८६४ के ३½% व्यावसायिक करसे भारतीय कारखानोंको बड़ा भारी नुकसान पहुँचा है और वह मैनचेस्टरके कारखानोंसे मुकाबला करनेमें बहुत ही दुर्बल हो गये हैं। इन करोंकी कर मात्राके निश्चय करते समय राजकीय कोषको समाज तथा शासनके हितोंको सामने रख <u>लेना चाहिये</u>।*

राजकोषके समान और शासनके ध्यान रखकर मात्रा ठीक करना चाहिए

* आयात कर कहा लगाना चाहिये और कहा न लगाना चाहिये और उसकी मात्रा किस स्थानमें और किस पदार्थके लिये कितनी होनी चाहिये इसके लिये देखो लेखकका सम्पत्ति शास्त्र (पु० विनिमय खण्ड आयात तथा निर्यात कर)

अप्रत्यक्ष कर कीं सीमा कम हो

(क) राजकीय कोषका हितः—राजकीय कोषका हित सामने रखते हुए और व्यवसाय व्यापारके हितको न भुलाते हुए राज्यको अप्रत्यक्ष करकी मात्रा अधिक न रखनी चाहिये। यहीं पर बस नहीं, जीवनोपयोगी पदार्थोंकी करमात्रा भोग विलासके पदार्थोंकी कर मात्रासे अधिक होनी चाहिये। विलासी पदार्थोंसे जीवनोपयोगी पदार्थों तक कर मात्राका झुकाव उनकी उपयोगिताके अनुसार क्रमशः—बढ़ावकी ओर होना चाहिये। सारांश यह है कि माँगकी स्थिरताके अनुसार पदार्थों पर राज्य कर मात्राकी अधिकता होनी चाहिये।

मांगकी स्थिरताके अनुसार करकी आवश्कता

उपरि लिखित नियमके भिन्न भिन्न देश अपवाद भी हो सकते हैं। भारतमें गरीबोंकी मांग बहुत अस्थिर है और अमीरोंकी मांग उनसे जादा स्थिर है अतः यहां जीवनोपयोगी पदार्थों पर राज्य कर कम होना चाहिये और विदेशके आये हुए भोग विलासके पदार्थों पर राज्य करका मात्रा अधिक होनी चाहिये।

देशकालमें नियम वैपरीत्य

(ख) समाजका हित—राज्य करकी मात्राके निश्चय करते समय समाजका हित अवश्य ही सन्मुख रखना चाहिए। यही कारण है कि हमारे देश-भक्त लोग सरकारसे बीसों बार प्रार्थना कर चुके हैं कि विदेशीय मालको भारतमें आनेसे रोका जाय और उसपर भारीसे भारी आयात-

सामाजिक हितका ध्यान रखना राज्य का कर्तव्य है

कर लगाया जाय। क्योंकि भारतीय समाजका हित इसीमें है। लगानकी मात्रा भी इसीलिए कम तथा स्थिर होनी चाहिए। विदेशीय तथा स्वदेशीय शराब, अफीम, गाँजा आदिपर राज्य-करकी मात्रा अधिक होनी चाहिए। क्योंकि इन चीज़ोंके प्रयोगके बढ़नेसे समाजको नुकसान पहुँच रहा है।

चोरी या कुभ्र-दाचारका बढ़ना।

(ग) शासन सम्बन्धी हित—राज्य-कर लगाते समय इस बातको ख्यालमें रखना चाहिए कि कर मात्रा इतनी अधिक न हो कि लोग चोरी चोरी माल एक स्थानसे दूसरे स्थानमें ले जावें या साधारण संपत्ति करके सदृश लोगोंके आचार व्यवहारको बिगाड़ने वाला हो।*

---

* आदम्सरचित "फायनन्स" (१८९८) पृष्ठ ४२९–४३४।
बैस्टेबुल 'पब्लिक फाइनन्स (१८९७) पृष्ठ ३३८–३५९।

सप्तम परिच्छेद

भिन्न भिन्न प्रकारके राज्यकरों पर विचार

१–एकाकी राज्यकर या सिंगल टैक्स

समाज तथा राज्य-करके सुधारके लिए विचारक लोग एकाकी करको अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि एकाकी करके विषयमें लोगोंका बहुत ही भ्रम है। कई तो एकाकी कर पक्षपातियोंकी मीठी मीठी बातोंको सुनकर और कई इसपर गम्भीर विचार न कर इसके पक्षमें हो गये हैं। एकाकी करके विषयमें कुछ भी सम्मति बनानेसे पूर्व उसका स्वरूप जानना अत्यन्त आवश्यक है।

एकाकी करका स्वरूप

पदार्थोंकी किसी एक विशेष श्रेणीपर एक मात्र कर लगाना ही एकाकी करका मुख्य स्वरूप है। इसका पक्ष पोषण चिरकालसे किया जा रहा है। १७वीं तथा १८वीं सदीके अन्दर बहुतसे संपत्तिशास्त्रज्ञोंने 'व्यय' एक्सपेन्स पर एकाकी करका प्रयोग उचित ठहराया (1) यह क्यों? यह इसीलिए कि बड़े बड़े धनाढ्य तथा प्रभावशाली लोग अपने

एकाकी करका व्ययपर प्रयोग

आपको राज्य-करसे बचा लेते थे। व्ययपर एकाकी करके पोषणका मुख्य आधार यह था कि (जनता वह समझती थी) यह सबपर समान रूपसे पड़ता है। एक ही पीढ़ीके बाद बहुतसे आंग्लोंने मकानोंपर एकाकर पुष्ट किया (ii) यहीं पर बस न करके १६वीं सदीके शुरूमें १८ सदीमें आयपर एकाकी कर योरूपमें प्रचलित हुआ। सबसे पहले पहले इसका प्रयोग इङ्गलैण्डने ही किया। (iii) इसी सदीके मध्यमें फ्रान्सने पूँजी-पर एकाकी करका प्रयोग करना चाहा। आज कल समष्टिवादी तथा संकुचित विचारके समाज संशोधक इसके पक्षमें हैं (iv)।

शुद्ध आयपर एकाकी करका प्रयोग

पूँजीपर एकाकी करका प्रयोग

भौमिक मूल्य (Land Values) पर एकाकी कर लगाना चाहिए इसपर योरूपीय राजनीतिज्ञों-का आजकल भयङ्कर विवाद चल रहा है। विचित्र बात तो यह कि इसका पक्ष पोषण परस्पर विरो-धिनी दो युक्तियोंसे किया जाता है। अभी एक पीढ़ी कि बात है कि महाशय ईसाक् शर्मन (Issac Sharman) ने एक प्रस्ताव जनताके सन्मुख रखा जिसके अनुसार राष्ट्रीय तथा स्थानीय राज्य-कर स्थिर संपत्ति (real state) पर ही लगते थे। इसका विचार था कि राज्य-कर सब पर समान रूपसे पड़ना चाहिए। भौमिक मूल्यपर लगे हुए राज्य-करमें यही विशेषता है कि वह व्यवियोंपर जा करके पड़ता है। चूँकि

भौमिक मूल्य पर एकाकी करका प्रयोग

सम्पूर्ण समाज कृषिजन्य पदार्थकी व्ययी है अतः यह राज्य-कर सब पर पड़ेगा। इस करमें एक सौन्दर्य यह है कि यह सरल तथा सुगम भी है। परन्तु महाशय जार्ज इस राज्य करका पोषण इससे विपरीत आधारपर करते हैं। उनका विचार है कि भौमिक मूल्य पर लगा हुआ एकाकी कर एक मात्र जिमींदारोंपर ही पड़ता है अतः उचित है। सम्पत्ति शास्त्रज्ञ लोग प्रायः जार्जके पक्षमें हैं। रिकार्डोके समयसे अबतक यह विचार रहा है कि आर्थिक लगानपर लगा हुआ राज्य-कर ज़िमींदार पर ही जा करके पड़ता है इसमें कितनी सत्यता है 'आर्थिक लगानपर कर प्रक्षेपण' दिखाते समय हम प्रकट कर चुके हैं।

आर्थिक लगानपर एकाकी करके लगाने में न्याय्यता

इस स्थलमें एक बातपर विशेषतः ध्यान रखना चाहिए और वह यह है कि आर्थिक लगान पर लगा हुआ राज्य-कर आवश्यक नहीं है कि एकाकी ही होवे। एकाकी करका मुख्य रूप उसका अकेलापन है। अन्य करोंके साथ साथ आर्थिक लगान पर कर लगाना और बात है और उस पर एकाकी कर लगाना भिन्न बात है। जिन देशोंमें आय, कम्पनी व्यवसाय आदियोंके साथ साथ आर्थिक लगानपर भी राज्य-कर हो उन

१ सेलिगमेन, "दी इनकमटैक्स" (१९११) पृष्ठ २२४-२३६।

२ उपरोक्त पुस्तक पृष्ठ २१०।

देशोंको एकाकी कर वाला देश नहीं कहा जा सकता है।

आर्थिक लगानपर एकाकी करका पक्ष पोषण प्रायः इस आधार पर किया जाता है कि भूमि ईश्वरने दी है। वही उसको उत्पन्न करनेवाला है। भूमि मनुष्यके श्रमका परिणाम नहीं है अत भूमिपर किसी व्यक्तिका स्वत्व नहीं है। भौमिक मूल्यका बढ़ना जातीय समृद्धिपर निर्भर करता है। इस प्रकारकी अनर्जित आयपर जातिका स्वत्व होना चाहिए। भूमिपर वैयक्तिक स्वत्व संपूर्ण सामाजिक बुराइयोंकी जड़ है। अत जाति-के प्रतिनिधि राज्यका यह मुख्य कर्तव्य है कि वह भूमिपर जातिका स्वत्व प्रकट करे। एकाकी करके पक्ष पोषक इतने ही पर बस न करके यह दिखाते हैं कि भूमिपर जातिका स्वत्व होने से 'श्रम सम्बन्धी विकट समस्या' हल हो जायगी संपूर्ण पेशोंमें भृति बढ़ जायगी। आवश्यकतासे अधिक पदार्थोंकी उत्पत्ति न होगी। धनका समान विभाग हो जायगा इत्यादि इत्यादि।" इस प्रकारके दिलको लुभानेवाले फलोंको दिखा कर अपने पक्षकी ओर किसीको भी खींचना उचित नहीं कहा जा सकता है। समाज सुधारका यह उचित ढंग नहीं है। अस्तु जो कुछ भी हो। सत्यके निर्णयके लिए यह सोचना आवश्यक ही प्रतीत होता है कि उपरि लिखित विचारका

आधार किस सिद्धान्तपर है। सोचनेसे मालूम पड़ा है कि उसका आधार दो सिद्धान्तों पर है जो कि इस प्रकार है।

(१) सम्पत्तिपर स्वत्व किसका है?

(२) वैयक्तिक सम्पत्तिका जातीय सम्पत्तिसे क्या सम्बन्ध है?

सम्पत्तिपर स्वत्व किसका ?

१ सम्पत्तिपर स्वत्व किसका है? इस प्रश्नका उत्तर बहुतसे विचारक 'श्रम' द्वारा देते हैं। शुरू शुरूमें इस प्रकारसे उत्तर दिया जाता था। रोमन लोग प्राथमिक स्वत्व (The occupation theory) के पक्षपाती थे। जिसने भूमिको सबसे पहले पहल प्राप्त किया उसीकी वह भूमि है। परन्तु इस सिद्धान्तने मध्य कालमें श्रमसिद्धान्त (The labor theory) का रूप धारण किया। इसका स्वाभाविक अधिकारके साथ घनिष्ट सम्बन्ध हो गया। अर्थात् जिन्होंने उस भूमिपर परिश्रम किया है और इसका सुधारा है उसीका भूमिपर स्वाभाविक अधिकार है। अब ज़माना बदल गया है। विचारक लोग अब भूमिपर स्वत्वके प्रश्नको किसी स्थिर नियमोंके द्वारा हल न करके सामाजिक उपयोगिताके द्वारा हल करते हैं। सारांश यह है कि 'स्वत्व' का नियम समाजकी भिन्न भिन्न परिस्थितिपर निर्भर करता है। भारतमें जनताको आर्थिक स्वराज्य नहीं है और राज्य कृषकोंसे अधिक लगान लेता है। इस बुराईको दूर करनेके

लिये भारतीय राज-नीतिज्ञ भूमिपर जिमींदारका स्वत्व पुष्ट कर रहे हैं और राज्यके स्वत्वको अनुचित ठहरा रहे हैं। समय आ सकता है जब कि आर्थिक स्वराज्य मिलनेके कुछ ही वर्षोंके अनन्तर राज-नीतिज्ञ लोग इससे विपरीत सिद्धान्तका अवलम्बन करें। सामाजिक उपयोगिता-सिद्धान्त संपत्तिपर वैयक्तिक स्वत्वको सामाजिक विकासका परिणाम समझता है। योरूपीय देशोंमें सामाजिक विकासकी वर्तमान कालीन गति सम्पत्तिपर वैयक्तिक स्वत्व हटा कर सामाजिक स्वत्वको लाना है। यदि हम स्वाभाविक अधिकार सिद्धान्तको ही सत्य मान लें तौ भी एकाकी करको पुष्ट करना कठिन है। क्योंकि भूमिका सुधार तथा निर्माण एक मात्र समाजने संघटित रूपसे नहीं किया है। यही कारण है कि महाशय आर्ज अन्य पदार्थोंपर ही श्रम सिद्धान्त या स्वाभाविक अधिकार सिद्धान्तको लगाते हैं। वह भूमिपर इसका प्रयोग नहीं करते हैं। इस स्थानपर यह कहा जा सकता है कि अन्य पदार्थों पर भी श्रम सिद्धान्तको लगाना कठिन है। कल्पना करो कि एक बढ़ई एक कुर्सी बनाता है। यहाँपर प्रश्न यह है कि क्या कुर्सीकी लकड़ी बढ़ईके श्रमका परिणाम है? इसको सभी जानते हैं कि लकड़ी प्रकृति देती है। कुर्सी बनानेके औज़ार अन्य मनुष्योंके श्रमका परिणाम है। सारांश यह है कि लकड़ीपर श्रम करनेके सिवाय भोजन गृह औजार शिक्षा आदि संपूर्ण बातें

सामाजिक हैं। यहीं नहीं, चोरी डाके आदि अन्तरीय विक्षोभोंसे भी समाज ही उसको बचाती है। इस दशामें यह कैसे कहा जा सकता है कि एक छोटी सी भी वस्तु किसी मनुष्यके एक मात्र श्रमका परिणाम है। यदि इस स्थान पर यह कहा जावे कि प्रत्येक मनुष्य सामाजिक वस्तुके उपयोगके लिये दाम देता है तो प्रश्न यह है कि भूमिके प्रयोगके बदले जिमींदार भी दाम दे देता है। इस दशामें यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि अन्य पदार्थों पर तो वैयक्तिक स्वत्व उचित है परन्तु एक मात्र भूमि पर ही समाजका स्वत्व होना चाहिये। समष्टिवादी लोगोंने बहुत उत्तम विधि पर विचार किया है और यही कारण है कि उन्होंने उत्पत्तिके संपूर्ण साधनों पर सामाजिक स्वत्वका पोषण किया है। यहा पर हमको जो कुछ कहना है वह यही है कि महाशय जार्ज तथा समष्टिवादियोंका श्रमसिद्धान्त द्वारा स्वत्वके प्रश्नको हल करना ठीक नहीं है। इसको सामाजिक उपयोगिता सिद्धान्तके द्वारा ही हल किया जा सकता है।

वैयक्तिक संपत्तिका जातीय संपत्तिमे सम्बन्ध

II वैयक्तिक संपत्तिका जातीय संपत्तिसे क्या सम्बन्ध है? कई एक विचारकोंका मत है कि अपने अपने लाभोंके अनुपातसे व्यक्तियोंको राज्यको सहायता पहुँचाना चाहिये। लोगोंको राज्यके कारण अनर्जित आय होती है अतः उनको

उसका कुछ भाग करके तौर पर राज्यको दे देना चाहिये। इस विचारसे हम सहमत नहीं हैं। क्योंकि एक तो यह सिद्धान्त अपूर्ण है और दूसरा यह एकाकी करको उचित ठहरानेमें सर्वथा असमर्थ है। इस सिद्धान्तकी अपूर्णताका मुख्य कारण यह है कि राज्यको व्यक्तियोंके द्वारा भिन्न भिन्न प्रकारके राज्य कर मिलते हैं। अनेकों बार राज्य व्यक्तियोंके सदृश ही नागरिकोंके हितमें कुछ एक काम करता है। इन कामोंका बदला राज्य कर न कहा कर फीस या शुल्क कहाता है। शुल्कके लेनेमें राज्यको लाभ सिद्धान्त द्वारा सहायता मिल सकती है। परन्तु जब राष्ट्र शरीरीके हितमें राज्य काम करता है और किसी भी व्यक्तिको पृथक तौर पर प्रत्यक्ष लाभ नहीं पहुँचाता है, अर्थात् जब राज्य युद्धकी उद्घोषणा करता है उस दशामें वह शक्ति सिद्धान्त या स्वार्थ त्याग सिद्धान्त या प्रभुत्व शक्ति सिद्धान्तके आधार पर राज्य कर ले सकता है। ऐसे स्थानोंमें लाभ सिद्धान्तके द्वारा उसको कुछ भी सहायता नहीं प्राप्त हो सकती है। दो सदी पूर्वकी बात है और भारतमें अब तक यह विद्यमान है कि देशके शासक प्रजासे राज्य करके तौर पर धन लेते थे और उस धनको प्रजाके हितमें न खर्च करते थे। परिणाम इसका यह हुआ कि लाभ सिद्धान्तके अर्थोंमें परिवर्तन किये गये और इसको वह रूप दे दिया गया

राष्ट्रहित संबंध कार्य

लाभसिद्धान्तकी असफलता

जिसके अनुसार प्रत्येकको समान कर देना पड़ता था। इन पिछले तीस वर्षोंसे विचारकोंने लाभ सिद्धान्तका सर्वथा ही परित्याग कर दिया है। राज्य कर देनेमें आज कल विचारकोंका यह मत है कि जनता राज्यको कर इसलिये देती है कि राज्य जनताका ही एक अंग है। जनता राज्यको अपना जीवन समझती है और इसी लिये तन मन धनसे उसको सहायता करना अपना परम कर्त्तव्य समझती है। वर्तमान कालीन भारतीय राज्य भारतीय जनताका प्रतिनिधि नहीं है। वह उनके जीवनका भाग नहीं है। जबतक वह उनका प्रतिनिधि न हो तबतक वह उनके जीवनका भाग कैसे बन सकता है? और उसको सहायता पहुँचाना भारतीय अपना कर्त्तव्य कैसे मान सकता है?

लाभ सिद्धान्त से एकाकी करको पुष्टि नहीं हो सकती

अभी लिखा जा चुका है कि लाभ सिद्धान्त एकाकी करको पुष्ट करनेमें असमर्थ है। लाभ सिद्धान्तके अनुसार यह परिणाम निकलता है कि बालकों तथा वृद्धोंको अधिक कर देना चाहिए और धनिकों तथा जमींदारोंको कम कर देना चाहिए। इस पर पूर्व प्रकरणमें प्रकाश डाला जा चुका है अतः यहाँ पर कुछ भी लिखना वृथा प्रतीत होता है। सारांश यह है कि लाभ सिद्धान्त के अनुसार जमींदारों पर एकाकी कर कभी नहीं लगाया जा सकता।

आजकल जन समाज शक्ति सिद्धान्तको राज्य

करका आधार बना रही है। प्रतिनिधि सभाएँ समृद्धों तथा कम्पनियों पर इसीलिए राज्य कर लगाती हैं चूँकि वह अधिकसे अधिक राज्य कर दे सकते हैं। जमींदारों पर राज्य कर लगानेका भी मुख्य कारण यही है।

एकाकी करका क्रियात्मक दोष * ।

किसी हद तक एकाकी कर काममें लाया जा सकता है। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि प्रत्येक गम्भीर विचारक इस बातके पक्षमें होगा कि पौरुषेय सांपत्तिक कर † साधारण सांपत्तिक कर ‡ का भाग कभी नहीं हो सकता। रही यह बात कि इसके स्थान पर किस करका प्रयोग किया जाय तो इसका उत्तर यही है कि यह विषय कठिन है। अतः इसपर आगे चलकर ही विचार किया जायगा। एकाकी करके मुख्यतः चार दोष हैं:—

एकाकी करके मुख्य चार दोष

(१) राजकीय आयव्यय सम्बन्धी दोष।

(२) राजनैतिक दोष।

(३) आचारसम्बन्धी दोष।

(४) आर्थिक दोष।

---

* देखो एस्सेज इन टैक्सेशन महाशय सेलिग्मैन रचित (१९१५) पृ० ७५—९७

† पौरुषेय सांपत्तिक कर = पर्सनल प्रापर्टी टैक्स।

‡ साधारण सांपत्तिक कर = जनरल प्रापर्टी टैक्स।

राजकीय आयव्ययसम्बन्धी दोष।

आयव्ययकी उत्तमता सन्तुलनमें है

राज्यकरमें लचक

राजकीय आयव्ययकी उत्तमता उसके संतुलन * में है अर्थात् आय व्ययसे और व्यय आयसे न बढ़ने पावे। इस उत्तमताको लानेके लिये राज्य करमें लचक † का होना आवश्यक है। जरूरतके साथ ही राज्य-कर बढ़ाया जा सके और जरूरत न होने पर राज्य कर घटाया जा सके। राज्य करमें लचक होनेके लिये दो बातोंका होना आवश्यक है। एक तो राज्य-कर ऐसे स्थानों पर लगाना चाहिए जहां करकी मात्रा बढ़ाते ही सुगमता से कर बढ़ जाय और दूसरे राज्य-कर बहुतसे भिन्न भिन्न श्रेणीके पदार्थों तथा स्थानोंसे प्राप्त करना चाहिये, जिससे यदि एक स्थानसे किसी कारणसे राज्य कर कम आवे तो इसकी कमी दूसरे स्थानों से पूरी की जासके। लचकीले राजकरोंका सबसे उत्तम उदाहरण आय कर है। आंग्ल बजटका

आयकरोंमें लचकीलापन

संतुलन किस प्रकार आंग्ल आय कर द्वारा होता है, आय व्यय शास्त्रज्ञ इसको अच्छी तरहसे जानते हैं। भौमिक मूल्य पर लगा हुआ राज्यकर सर्वथा ही लचकरहित है। क्योंकि आर्थिक लगानके राज्यकरके तौर पर लिये जाने पर राज्यकरको जरूरत पड़ने पर और अधिक बढ़ाना देशको

* सतुलन = इक्विलिब्रियम।

† लचक = इलेस्टिसिटी।

उत्पादक शक्ति और उत्पत्तिमें जनताकी रुचिको घटाना है। इसका भयंकर रूप भारतवर्षमें देखा जा सकता है। विदेशीय राज्य जनताके कष्टों पर तथा देशकी समृद्धि और शक्ति पर कुछ भी ध्यान न कर प्रत्येक बन्दोबस्तमें राज्य कर बढ़ाता जाता है। परिणाम इसका यह है कि भारतीय भूमियों-की उत्पादकशक्ति घटती जा रही है और किसान दरिद्र होते जा रहे हैं। देशमें दुर्भिक्ष तथा दरि-द्रताजन्य रोगोंने अड्डा बना लिया है। सारांश यह है कि भौमिक मूल्य पर लगा हुआ राज्यकर नहीं बढ़ाया जा सकता। यह एक बडा भारी दोष है जिसको कि भुलाया नहीं जा सकता है।

भारतकी दुर-वस्था

इसके सदृश ही एक और दोष एकाकी करमें यह है कि इससे करका समानतानियम भंग होता है। एक साथ जुड़े हुए दो खेतों पर भी राज्यकर सर्वथा भिन्न होता है। सन् १८६३ की इवोआ रेवेन्यू कमीशन की रिपोर्टसे पता लगा है कि भौमिक मूल्य पर १७ से ६० प्रति शतक राज्यकर भिन्न भिन्न जमींदारोंको देना पड़ता है। यह क्यों? यह इसी लिये कि आर्थिक लगानका ज्ञान लेना बहुत ही कठिन है। लखनऊके आसपासकी ज़मीन अधिक दामकी है। परन्तु आंग्ल राज्य यह कैसे जान सकता है कि उस ज़मीनके दामकी अधिकतामें किसानका श्रम कितना कारण है और नगरकी वृद्धि कितना कारण है। इस कठिनाईका

करकी समानता

आर्थिक लगान के ज्ञानकी क-ठिनता

परिणाम यह है कि भारतमें आंग्ल राज्यने लगान इस सीमा तक अधिक ले लिया है कि इससे किसान तबाह हो गये हैं। भौमिक मूल्य पर कर लगानेमें यही कठिनता है। भारतमें आंग्ल राज्यने किसानोंको तबाह कर देनेकी बदनामी से बचनेके लिये भौमिक करको लगानका नाम दे दिया है और भारतकी सारीकी सारी भूमिका अपने आपको बड़ा जमींदार कहना शुरू किया है। जो कुछ हो। इस प्रकारकी युक्तियोंसे भारतीय जनता वशमें नहीं की जा सकती और न आंग्ल राज्यकी (लगान अधिक लेनेके कारण उत्पन्न हुई) बदनामी ही हट सकती है। *

भौमिक करका नाम लगान

राजनैतिक दोष।

एकाकी करका दूसरा तात्पर्य यह है कि संपूर्ण सामुद्रिक चुंगीघरोंको हटा दिया जाय और जातीय व्यवसायोंके संरक्षणके लिए आयात तथा निर्यात करका प्रयोग न किया जाय इस दोषके होते हुए भी किसी देशकी व्यावसायिक उन्नतिसे निरपेक्ष राज्य इसको अपनी कूटनीतिका साधन बना सकते हैं। भारतमें आंग्ल राज्य स्वतन्त्र व्यापारकी नीतिको भारतीयों पर लगानेके

* महाशय मैलिग्मैन लिखित एस्सेज इन टैक्सेशन (१९१५) पृ० ७५—९७।

लिए एकाकी करके इसी दोषको गुणकी तरह पेश कर सकता है। परन्तु संसारके अन्य उत्तरदायी राज्य ऐसा करनेमें असमर्थ हैं। उनको जातीय समृद्धि तथा उन्नति अपने सामने मुख्य रखना है अतः वह ऐसा कैसे कर सकते हैं और एकाकी-करका कैसे पक्ष ले सकते हैं? यही नहीं, एकाकी करके अवलम्बनसे राज्योंकी कर सम्बन्धी शक्ति कम हो जायगी। अमेरिकन राज्य अफीम पर भयंकर कर लगाता है। यह इसी लिये कि अमेरिकन जनतामें अफीम खानेका दुर्व्यसन प्रबल न हो जाय। एकाकी करकी नीतिके अवलम्बन करनेसे राज्य इस प्रकारके सुधारोंको न कर सकेगा। सबसे बड़ा दोष इस करका यह है कि जनताकी राज्यके आर्थिक मामलोंमें रुचि घट जायगी। संसारकी सभ्य जातियां अधिक कर लगाने आदिमें राज्यसे झगड़ती रहती हैं और इस प्रकार राज्यके स्वेच्छाचारित्वको रोकती रहती हैं। एकाकी करके लगनेसे राज्यकरकी लचक दूर हो जायगी और करकी वृद्धिका प्रश्न जनताके सम्मुख उपस्थित न होगा। परिणाम इसका यह होगा कि जनता राजकीय कार्योंसे निरपेक्ष हो जायगी और जिस हद तक वह निरपेक्ष होगी उस हद तक उनका स्वातंत्र्य कम होगा और राज्योंका स्वेच्छाचारित्व बढ़ेगा। भारतमें कर वृद्धिका प्रश्न दिन पर दिन पेचीदा होता जाता है। परिणाम इसका

एकाकी करका पक्ष उत्तरदायी राज्य नहीं ले सकते

राज्योंकी कर सम्बन्धी शक्ति में ह्रास

निरंकुशता

यह है कि भारतीय जनता स्वातन्त्र्यकी ओर पग धर रही है और राज्यकी कर वृद्धिकी शक्ति पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहती है। *

सदाचारीय दोष।

एकाकी करके पक्षपाती न्यायके आधार पर इसकी पुष्टि करते हैं। परन्तु हमको इसीमें सन्देह है। क्योंकि एकाकी कर न्यायके आधाररूप समानता-सिद्धान्तके अनुकूल कभी नहीं हो सकता। आजकल राज्यको सहायता पहुँचाना प्रत्येक व्यक्तिका कर्त्तव्य समझा जाता है अतः प्रत्येक व्यक्तिको राज्यको समान तौर पर सहायता देनी चाहिए। शुरू शुरूमें प्रकृतिवादियों† ने भूमि पर एकाकी करका पक्ष समर्थन किया परन्तु वाल्टेयरने इसका विरोध किया। वाल्टेयरने फरांसीसी किसानोंकी दरिद्रता तथा निर्धनताको जनताके सम्मुख रखा और स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि भूमि पर एकाकी कर लगाना दरिद्र किसानों पर अत्याचार करना है। यही अत्याचार आजकल लगानके कुछरूपमें भारतीय किसानों पर किया जा रहा है। प्रकृतिवादियोंके समयसे अबतक भौमिक लगान विषयक अन्धविचार संपत्तिशास्त्र-

समानता सिद्धान्तकी हत्या

प्रकृतिवादियोंका भूमि कर समर्थन

वाल्टेयरका विरोध

भारतमें इसका प्रयोग

---

* मैलिग्मैन लिखित ऐसेज इन टैक्सेशन। आठवाँ संस्करण। (१८१५) पृ० ७५—७७।

† प्रकृतिवादी = फिजियोक्रैट्स।

ओंमें प्रचलित है। यह लोग भूमिमें तो अनर्जित आय या आर्थिक लगान मानते हैं परन्तु उत्पत्तिके अन्य साधनोंमें इस प्रकारकी घटनाको सर्वथा नहीं देखते। लगानके प्रकरणमें हमने विस्तृत तौर पर प्रगट किया है कि भूमिमें आर्थिक लगान के सदृश ही पूँजी तथा श्रममें भी आर्थिक लगान * है। इस दशामें भूमीय आर्थिक लगान पर एकाकी कर समर्थन करते समय पूँजीय तथा श्रमीय, लगान पर किस प्रकारसे एकाकी करकी उपेक्षा की जा सकती है? यदि ज़मींदार कुछ अमीर हैं तो व्यवसायपति तथा रेलवे या लोहकिंग उनसे कुछ कम अमीर हैं जिस कारण उनको करसे मुक्त कर दिया जाय? यदि भूमिमें प्रकृति सहायक है तो व्यवसायोंमें भी राज्य तथा भाग्य सहायक है। सारांश यह है कि संपत्ति तथा धन वैयक्तिक घटनाओंके साथ साथ सामाजिक घटनायें हैं। यदि एक सामाजिक परिस्थितिसे भूमिका मूल्य बढ़ जाता है तो दूसरी सामाजिक परिस्थितिसे पदार्थोंकी माँग बढ़कर व्यवसाय लाभ पर चलने लगते हैं। यदि भारतमें राज्यने ऐसी परिस्थिति बना दी है कि वस्त्रादिके कारखाने

भूमिकी तरह पूँजी और श्रम में भी आर्थिक लगान है

पूँजी और श्रम की उपेक्षा करें

सम्पत्ति उत्पत्तिमे सामाजिक परिस्थिति का भाग

* आर्थिक लगान = इकानामिकरन्ट। पूँजी तथा श्रममें भी आर्थिक लगान है इसके लिये देखो महाशय हाब्सनका "इकानामिक्स आव् डिस्टब्यूशन" या प० प्राणनाथ लिखित सपत्तिशास्त्र। (जब्बलपुर की श्री शारदा ग्रन्थमाला में प्रकाशित)

लाभ पर न चल सकें और लोगोंको कृषिमें जाना पड़े तो इंग्लैण्डमें राज्यने ही इससे विपरीत परिस्थिति उत्पन्न कर वहाँके व्यवसायोंको लाभ पर पर चला दिया है। सारांश यह है कि उत्पत्तिके साधन भूमि श्रम पूंजी आदि बहुत कुछ परस्पर समान हैं। कब कौन अधिक उत्पादक होगा यह भिन्न भिन्न समाजोंकी परिस्थिति पर निर्भर है। ऐसी हालतमें एकमात्र भूमि पर एकाकी कर लगाना तथा पूंजी और श्रमको करसे मुक्त कर देना कभी भी न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता। करमें समानता होनी चाहिये। एकाकी करमें यही गुण नहीं है। *

आर्थिक दोष।

एकाकी करके आर्थिक दोषको निम्नलिखित प्रकार दिखानेका यत्न किया जायगा।

(१) एकाकी करका दरिद्र जनता पर प्रभाव।

(२) एकाकी करका किसानके हितों तथा स्वार्थों पर प्रभाव।

(३) एकाकी करका समृद्धजनता पर प्रभाव।

(१) एकाकी करका दरिद्रजनता पर प्रभाव—
दरिद्र जनतामें व्यक्तियोंकी संपत्ति प्रायः पशु,

* सैलिग्मैन लिखित एसेज इन टैक्सेशन। आठवाँ संस्करण। (१९१५) पृ० ७९—८३।

कृषिके औजार हल मकान तथा रुपया पैसा होता है। ऐसे जनसमाजमें राज्य सडकों, पुलों, रेलों, स्कूल कालिजों आदिका खर्चा किस प्रकार संभाले? कहाँसे धन प्राप्त करे कि इन कामोंको करनेमें समर्थ हो सके। ऐसे देशमें भूमिका मूल्य तथा आर्थिक लगान भी इतना अधिक नहीं होता है कि राज्य उसपर कर लगा सके। समृद्ध देशोंके दरिद्र भागमें भी यही कठिनाई उपस्थित होती है। एकाकी कर पक्षपाती स्वयं भी ऐसे स्थानों पर किसी प्रकारके करका समर्थन नहीं करते हैं। यदि यह कहा जाय कि ऐसे स्थानोंके लिए देशके समृद्ध भाग पर अधिक कर लगाया जाय और दरिद्रभाग पर खर्च किया जाय तो यह कुछ भी युक्तियुक्त नहीं मालूम पड़ता। विशेषतः अमेरिकन लोग तो ऐसे करोंके देनेमें कभी भी तैयार नहीं हैं। इसमें सन्देह भी नहीं है कि आजकल यूरोपीय देशोंके लोग अपने आपको राष्ट्रशरीरीका अंग मानने लगे हैं और इसी लिये दरिद्र भागों, दुर्बल व्यवसायों, अवनत जनोंको सहायता देनेके लिये दिन पर दिन तैयार होते जाते हैं परन्तु प्रश्न तो यह है कि एकाकी कर इस समस्याको कहां तक हल कर सकता है? वास्तविक बात तो यह है कि ऐसे मामलोंमें एकाकी करसे रत्तीभर भी सहायता नहीं मिल सकती है।

दरिद्र राष्ट्रोंमें एकाकी कर लगानेकी कठिनता

देशके दरिद्र भागके लिये समृद्ध भागपर अधिक कर का लगाना

(२) एकाकी करका किसानके हितों तथा

किसान और एकाकी कर

स्वार्थों पर प्रभाव—एकाकी कर का मुख्य प्रभाव यह है कि किसानों पर करका भार बढ़ जाता है * महाशय सैलिग्मैने अमेरिकाकी कुछ एक रियासतों-के द्वारा इसी सत्यको प्रगट किया है † जिन देशोंमें व्यावसायिक उन्नति नहीं होती और जनता प्रायः कृषिसे जीवन निर्वाह करती है उन देशोंमें कर भार प्रायः किसानों पर ही अधिक होता है।

किसानों पर करकी अधिकता

भारतकी यही दशा है। भारत जैसे दरिद्र किसान शायद ही किसी देशमें हों। यहाँ इन किसानोंकी दरिद्रताका मुख्य कारण यह है कि आंग्ल राज्य लगान अपेक्षासे अधिक लेता है और किसानोंको कर्जे पर तथा एक समय रोटी खाकर जीवन निर्वाह करना पड़ता है।

(२) एकाकी करका समृद्ध जनता पर प्रभावः—एकाकी करके लगनेसे बहुत स्थानों परसे राज्य करका हट जाना स्वाभाविक ही है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है जहाँ जहाँ से राज्यकर हटेगा वहाँ अवश्य ही उन्नति हो जायगी। क्योंकि यह तभी संभव हो सकता है जब कि राज्यकर किसी स्थानकी उन्नतिका बाधक हो। यदि ऐसी हालत न हो तो एकाकी करके लगने पर और अन्य स्थानों परसे करके हटनेसे किसी प्रकारकी उन्नतिकी

एकाकी करके लाभ तथा हानि

* महाशय सैलिग्मैन रचित ऐस्सेज इन टैक्सेशन। आठवाँ संस्करण १९१५। पृ० ८३—८६)

† उक्त पुस्तक पृ० ८६—८८।

आशा करना वृथा है। आस्ट्रेलिया तथा कनाडामें कई एक नगरोंमें गृह कर हटा दिया गया, परन्तु हुआ क्या? कर हटने पर भी मकानोंका किराया कुछ भी कम न हुआ। क्योंकि नगरकी उन्नतिमें अन्य आर्थिक कारण इतने प्रबल थे कि राज्यकर उसको उन्नतिमें किसी प्रकारकी भी बाधा न डालता था। सारांश यह है कि एकाकी करकी जितनी हानियाँ हैं उतने लाभ नहीं हैं। *

६—द्विगुण कर (Duble Texation)

द्विगुण करका साधारणसे साधारण तथा सरलसे सरल अर्थ एकही मनुष्य या एकही पदार्थ पर दो बार करका लगाना है। यह घटना अति प्राचीन होते हुए भी अति नवीन है। प्राचीन कालमें राजा लोग लोभमें आ कर तथा कर भार का कुछ भी ख्याल न कर विशेष विशेष व्यक्तियों से धन खींचनेके लिये द्विगुण करका प्रयोग करते थे। यह उन दिनोंमें संभव भी था क्योंकि राज्यका आधार शक्ति सिद्धान्त पर निर्भर था। भारतवर्ष आर्थिक स्वराज्यसे वञ्चित देश है। यहाँ पर भी शक्ति सिद्धान्त ही द्विगुण करके प्रयोगमें काम कर सकता है। परन्तु संसारके अन्य सभ्य देशों-में उत्तरदायी राज्य है और जनताको आर्थिक

द्विगुण करका तात्पर्य

प्राचीन कालमें द्विगुण करका प्रयोग

---

* महाशय सेलिग्मैन रचित एस्सेज इन टैक्सेशन। पृ० ८६–६७

स्वराज्य मिला हुआ है। जिसकी सहायतासे उन्होंने कृषिके सदृश व्यापार व्यवसायमें भी विशेष उन्नति की है और इस प्रकार उनके कर देनेके मार्ग बहुत ही अधिक होगये हैं। आरम्भमें इन देशोंमें भी भौमिक संपत्ति ही मुख्य संपत्ति समझी जाती थी और सारेके सारे राज्यकर भूमि ही पर केन्द्रित होते थे। भारतमें अबतक बहुत कुछ ऐसी ही दशा है। परन्तु अब ये देश स्वराज्य से शक्ति प्राप्त कर अपनी अपनी शक्ति तथा कर्म

वर्तमान कालमें द्विगुण करकी समस्या

एयताओंके अनुपातसे व्यवसायिक तथा व्यापारिक देश बन गये हैं। इनमें पूँजी तथा श्रमका भ्रमण अत्यन्त शीघ्रताले होता है और यही कारण है कि पूँजी पति रहते कहीं है और उनकी पूँजीका विनियोग कहीं और ही होता है। इस अवस्थामें इन सभ्य देशोंमें द्विगुण करका प्रश्न उठ खड़ा हुआ है और उसके सरल करनेमें कई ढंगकी कठिनाइयाँ उपस्थित हो गई हैं। सभ्य देशमें व्यक्तियोंके व्यवसायिक सम्बन्ध जितने ही अधिक पेचीदे हैं, उनमें उतने ही अधिक द्विगुण करके प्रश्न बिकट हैं। यही कारण है कि इस पर गंभीर विचार करनेके लिये इसको निम्नाङ्कित दो भागोंमें विभक्त करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है—

(१) एक ही राज्याधिकारीके द्वारा द्विगुण करका प्रयोग।

(२) भिन्न भिन्न स्पर्धालु राज्याधिकारियोंके द्वारा द्विगुण करका प्रयोग।

द्विगुण करमें भौगोलिक तथा राजनैतिक कारण

इनमेंसे द्वितीय भौगोलिक है। यदि एक मनुष्य रहता एक स्थान पर है और उसकी संपत्ति किसी दूसरे स्थान पर है तो दोनों ही स्थानके राज्याधिकारी उसको अपना नागरिक बनानेके लिये उसकी संपत्ति पर राज्य कर लगाते हैं। यह घटना जहाँ भिन्न भिन्न विदेशीय राष्ट्रोंमें किसी व्यक्तिकी संपत्तिके होने पर उत्पन्न होती है वहाँ राष्ट्र-संगठनात्मक देशोंके भिन्न भिन्न अन्तरीय राष्ट्रों में किसी व्यक्तिकी संपत्तिके होने पर भी उत्पन्न हो जाती है। बहुधा एक ही व्यक्तिकी संपत्ति कई राष्ट्रोंमें होनेसे उस पर द्विगुण कर त्रिगुण तथा चतुर्गुण करका रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार एक ही राष्ट्रमें भी द्विगुण करका प्रश्न व्यक्तियोंके भिन्न भिन्न व्यावसायिक सम्बन्धोंके कारण प्रत्यक्ष हो जाता है। यदि एक मनुष्य किसी एक भूमिके टुकड़ेको खरीद ले और ऐसा करनेमें कुछ रुपया कर्जसे प्राप्त करे तो उसको ऐसी दशामें द्विगुण कर देना पड़ता है जब कि राज्य भौमिक संपत्ति तथा कर्जके धनपर पृथक कर लगाता है। इसी प्रकार यदि एक मनुष्य किसी कंपनीका हिस्सेदार हो और राज्य हिस्सों तथा कंपनी पर पृथक पृथक कर लगाता हो तो उस पर द्विगुण करका लगाना स्वाभाविक ही है। इस विषयको स्पष्ट

द्विगुण करके स्वरूप

करनेके लिये अब हम इस प्रश्नके प्रत्येक भागपर पृथक पृथक विचार करना प्रारम्भ करते हैं। *

व्यवसाय पर द्विगुण कर उदाहरण

(१) एकही राज्याधिकारीके द्वारा द्विगुण कर-का प्रयोग *—द्विगुण करका साधारणसे साधारण रूप वह है जब कि राज्य वैयक्तिक आय लाभ या संपत्ति पर राज्य कर लगाता हुआ उस व्यवसाय पर भी राज्य कर लगा दे जिसमें कि वह हिस्सेदार हो। सभ्य देशोंमें इस प्रकारका द्विगुण कर आजकल नहीं लगाया जाता है क्योंकि ऐसी दशामें वैयक्तिक आय तथा व्यावसायिक आय एकही हो जाती है। जब एक पर राज्य कर लगानेसे इष्ट सिद्धि होती हो तो द्विगुण करका प्रयोग निरर्थक ही है। यही कारण है कि आज कल द्विगुण करका प्रश्न उस दशामें उत्पन्न होता है जब कि संपत्ति तथा आय पर पृथक पृथक राज्य कर लगा दिया जाय। यदि समाजके संपूर्ण सम्बन्धों पर एक सदृश समान तौर पर ही द्विगुण कर लगाया जाय तब तो कुछ भी हानि नहीं है

द्विगुण कर लगाते समय सावधानीकी जरूरत

परन्तु यदि ऐसा न होकर भिन्न भिन्न स्थानों पर असमान तौर पर द्विगुण कर लगे तो इससे बढ़ कर हानिकर और कोई दूसरी बात नहीं है। यहीं नहीं,

* महाशय सेलिग्मैन रचित एस्सेज इन टैक्सेशन (१९१५) पृ० ९८—१००।

† महाशय सेलिग्मैन रचित एस्सेज इन टैक्सेशन (१९१५) पृ० १००—११०।

द्विगुण कर लगाते समय जनताके आमदनीके स्थानोंको देखना भी अत्यन्त आवश्यक है। क्यों कि बहुत बार भिन्न भिन्न करोंके देते हुए भी समानता नियम भंग नहीं होता है और बहुतबार एक सदृश राज्य कर देते हुए भी समानता नियम टूट जाता है। शक्ति सिद्धान्तमें इस विषय पर विस्तृत तौरपर प्रकाश डाला जा चुका है। यही कारण है कि आजकल सभी सभ्य देशोंमें राज्य कर लगाते समय कर प्राप्तिके स्थानोंको देख लिया जाता है। अनर्जित आय तथा अर्जित आय, सांपत्तिक आय तथा श्रमीय आयमें कर लगाते समय भेद भी इसी लिये किया जाता है। श्रमीय आय पर सांपत्तिक आयकी अपेक्षा राज्य कर कम लगाया जाता है। नार्थ करोलिनामें इसकी सत्यता देखी जा सकती है। जिन देशोंमें इस प्रकारके भेदको कर लगाते समय सन्मुख नहीं रखा जाता है वहाँ पर भी आय तथा संपत्ति पर पृथक् पृथक् राज्य कर लगाते समय यदि आय संपत्ति जन्य ही हो तो पुनः संपत्ति पर कर नहीं लगाया जाता है। यही बात व्यवसायोंके साथ है। यह प्रश्न चिरकालसे उठ रहा है कि क्या व्यावसायिक संपत्ति पर राज्य कर लगानेके अनन्तर व्यावसायिक लाभ पर पुनः कर लगाना चाहिये या नहीं? यह क्यों? यह इसी लिये कि व्यावसायिक लाभका आधार जहाँ व्यवसाय पतिकी प्रवीणता

राज्य कर तथा कर प्राप्ति के स्थान

व्यावसायिक लाभ पर राज्य कर

तथा चतुरता पर निर्भर करता है वहाँ व्यावसायिक संपत्तिका आधार हिस्सेदारों पर है। अतः आधारके भिन्न भिन्न होने पर कर भी भिन्न भिन्न होना चाहिये। अमरिकाकी मैसाचैसट्सकी रियासतमें यही प्रश्न उठा हुआ है। हमारी सम्मतिमें यह उचित नहीं है क्योंकि इससे राज्य करमें असमानता उत्पन्न हो जाती है। भूमि पतियों पर यदि संपत्ति तथा लाभका ख्याल कर पृथक् पृथक् कर नहीं लगाया जाता है तो व्यवसायपतियों पर ही ऐसा कर क्यों लगाया जाय। यही कारण है कि संसारके भिन्न भिन्न सभ्य देशोंमें ६ सैकड़े लाभ तक व्यावसायिक पूँजीको राज्य करसे मुक्त कर दिया है। यदि इससे अधिक लाभ हो तो उस अधिक लाभ पर राज्य कर लगा दिया जाता है। स्विट्जरलैण्डमें तो कर लगाते समय राज्य इसी बातका संपूर्ण कार्योंमें ध्यान रखते हैं। वहाँ ४ से ५ प्रति शतक लाभ तक पूँजी पर राज्य कर नहीं लगाया जाता है।

द्विगुण करमे कर भार का कम होना

द्विगुण करने कर भार को हलका करके प्रत्येक व्यक्ति का बहुत ही उपकार किया। एक ही स्थान पर यदि राज्य कर लगता तो उस स्थान पर करका भार अधिक हो जाता। द्विगुण कर के द्वारा यही कर भार दो भागों में बांट दिया जाता है। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है। द्विगुण कर के द्वारा बहुत बड़ी २ बुराइयां भी आ सकती हैं।

आर्थिक स्वराज्य रहित देशोंमें राज्य इसी को धन खींचने का साधन बना सकते हैं और जनता को उन्नति करनेसे रोक सकते हैं। व्यावसायिक देशों में बहुत सा धन उधार पर लिया जाता है और उसके द्वारा बहुत लाभ प्राप्त किया जाता है। इस दशा में अधमर्ण या उत्तमर्णमें किस पर राज्य कर लगाना चाहिये ? इस प्रश्न का उत्तर देनेसे पूर्व यह लिख देना आवश्यक ही प्रतीत होता है कि उस अधमर्ण की उधार ली हुई पूँजी पर राज्य कर कभी भी न लगना चाहिये जो कि विपत्तिमें पड़ा हो या जिसने कि पूँजी घरेलू खर्चोंके लिये उधार पर ली हुई हो। क्योंकि ऐसे व्यक्ति पर कर लगाना उसको और तकलीफ़में डालना होवेगा, जो कि कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता है। परन्तु जो पूंजी उधार पर इसलिये ली जाती है कि उसके द्वारा व्यापार व्यवसाय करनेके लाभ प्राप्ति किया जावें, ऐसी पूंजी पर राज्य कर अवश्य ही लगना चाहिये। कई एक विचारकों का मत है कि उत्तमर्ण पर ही एक मात्र राज्य कर लगाना चाहिये, वह कर प्रक्षेपणके नियमके अनुसार अधमर्ण पर राज्य कर फेंक देवेगा। द्विगुण करसे बचने की यह बहुत ही उत्तम विधि है। कई एक अमेरिकन रियासतोंने इस पर सफलतासे काम भी किया है। इसमें सन्देह नहीं है कि कई एक अमेरिकन रियासतोंने ऐसा न कर

द्विगुण कर धन खींचने का साधन बन सकता है

पूंजी पर द्विगुण कर

अधमर्ण तथा उत्तमर्ण दोनों पर ही पृथक् पृथक् और कइयोंने संपूर्ण लेन देन पर एक अत्यन्त न्यून कर लगा दिया है। इस प्रकारके करको सफलतासे एकत्रित करनेके लिये प्रत्येक रियासतने अपनी २ परिस्थितिके अनुसार कुछ एक सुधार किये हैं जिनका यहाँ पर देना निरर्थक प्रतीत होता है।

द्विगुण कर की नवीनता

(२) भिन्न २ स्पर्धालु राज्याधिकारियों के द्वारा द्विगुण करका प्रयोग*—इस प्रकारका द्विगुण कर सर्वथा नवीन है। प्राचीन कालमें निम्नलिखित तीन कारणोंसे इस प्रकारका द्विगुण कर प्रचलित न था।

(१) प्राचीनकालमें व्यापार व्यवसाय अन्तर्जातीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय न था। कारखाने स्थानीय थे और पूंजी पति भी उन कारखानोंके पास ही रहता था।

(२) प्राचीनकालमें विदेशियों को शत्रु समझा जाता था।

(३) राज्य कर लगाते समय समानता आदि सिद्धान्तोंका ख्याल न किया जाता था। परन्तु अब यह बात नहीं रही है। एक मनुष्य रहता किसी एक राष्ट्रमें है, उसकी पूँजी किसी दूसरे राष्ट्रमें लगी होती है और वह व्यापार किसी

* महाशय सेलिगमेन रचित एस्सेज इन टेक्सेसन (१९१५) पृ० ११० ११६।

तीसरे राष्ट्रमें करता है। वह जहांसे धन कमाता है वहां उस धनको खर्च नहीं करता है। बहुत बार वह किसी एक ऐसी समिति या कम्पनीका सभ्य होता है जिसका व्यापार सैकड़ों स्थानोंमें होता है। इस विचित्र सामाजिक घटनाका परिणाम यह है कि ऐसे मनुष्यों पर राज्य कर लगाना बहुत ही कठिन हो गया है। प्रश्न यह है कि ऐसे मनुष्य पर कहां राज्य कर लगाया जावे? यदि तो सभी राष्ट्रों की राज्य कर विधि एक सदृश हो तब तो यह कठिनता किसी हद तक दूर हो सकती है। परन्तु यह उत्तमव्यवस्था आजकल विद्यमान नहीं है। जितने राष्ट्र हैं उतने ही राज्य कर लगानेके तरीके हैं! यह होते हुए भी राज्य कर लगाते समय निम्नलिखित चार बातों का ध्यान करना अत्यन्त आवश्यक है।

राज्य कर लगाने में ध्यान देने योग्य चार बातें

(१) प्राचीनकालमें नागरिक पर ही राज्यकर लगाया जाता था परन्तु अब अवस्थाओंके बदल आनेके कारण इस नियमको काममें लाना कठिन है। आजकल परराष्ट्रीयोंके साथ राष्ट्रके राजनैतिक सम्बन्ध बहुत ही शिथिल हैं। क्योंकि पर-राष्ट्रीय पूंजीपति जहाँ रहता है वहां धन नहीं कमाता है और जहां धन कमाता है वहां रहता नहीं है। बहुत बार यह भी देखा गया है कि पूंजी पति लोग स्थिर तौर पर किसी अन्य राष्ट्रमें रहते हुए भी अपने राजनैतिक सम्बन्ध उस राष्ट्रके

विदेशीय पूँजीपतियों की स्थिति

साथ नहीं बनाते हैं और अपने आपको पहिले राष्ट्रका ही नागरिक प्रगट करते हैं।—

राष्ट्रीय यात्रियों का राज्य कर से मुक्त होना

(२) नगरोंमें पर राष्ट्रीय यात्री लोग भी कुछ दिनोंके लिये आकर रहते हैं। ऐसे यात्रियों पर राज्य करका लगना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा करनेसे उनका यात्रा करना कठिन हो जायगा। जिस नगरमें वह जावें वहांही यदि उनपर राज्य कर लग जावे तो उनके लिये यात्रा करना सर्वथा असम्भव ही हो जाय।

नगर के स्थिर निवासियों पर राज्य कर

(३) बहुतोंका विचार है कि नगरके स्थिर निवासियों पर राज्य कर अवश्य ही लगना चाहिये, चाहे वह स्वराष्ट्रीय होवें और चाहे वह परराष्ट्रीय होवें। परन्तु इसमें निम्नलिखित बातों-पर ध्यान देना आवश्यक है।

(i) हो सकता है कि नगरमें समृद्ध लोग पर राष्ट्रीय व्यापारी व्यवसायी होवें। इस दशामें उनको करसे मुक्त कर देना कहां तक उचित होगा।

(ii) हो सकता है कि नगरके स्थिर निवासियोंको परराष्ट्रसे आय प्राप्त होती हो। इस दशामें परराष्ट्रके धनसे किसी भी नगरका लाभ उठाना कहां तक उचित है?

(iii) आयर्लैण्डके प्रवासियों तथा अमेरिकन रेल्वे कम्पनियोंके समृद्ध हिस्सेदारों परउन स्थानों

में अवश्य ही कर लगना चाहिये जहांसे कि वह लाभ प्राप्त करते हैं।

(४) राज्य कर लगाते समय इस बात का भी अवश्य ही ख्याल करना चाहिये कि पूंजीपति स्थिर तौर पर कहां रहते हैं, अपनी संपत्तिका उपभोग कहां करते हैं और संपत्ति को प्राप्त कहांसे करते हैं। यदि अंग्रेज लोग भारतसे धन कमाते हैं और लण्डनमें खर्च करते हैं तो उन पर दोनों ही स्थानोंमें राज्य कर लगाया जाना चाहिये।

अन्तरा ट्रीय राज्यों में रा ज्य कर ल गाने मे आ थिक मम्बन्ध की मुख्यता

आज कल उपरिलिखित चारों कठिनाइयोंको दूर करनेके लिये जातियोंने राजनैतिक सम्बन्धों के अनुसार व्यक्तियों पर राज्य कर न लगा कर आर्थिक सम्बन्धोंके अनुसार राज्य कर लगाना शुरू किया है। स्पर्धालु राज्याधिकारी अपने २ राष्ट्रमें व्यक्तियोंके आर्थिक स्वार्थोंको ध्यानमें रख कर ही राज्य कर लगाते हैं। अर्थात् जिस राष्ट्रमें किसी व्यक्तिका जो आर्थिक स्वार्थ हो उसीके अनुसार उस पर राज्य कर लगाया जाता है। ऐसा करनेमें 'आर्थिक स्वार्थको' धन की उत्पत्ति तथा धम का व्यय इन दो भागोंमें विभक्त कर दिया जाता है। जिन जिन राष्ट्रोंमें कोई मनुष्य धन की उत्पत्ति करता हो तो प्रत्येक राष्ट्र उस पर उतना २ राज्य कर लगादेता है जितना २ कि वह वहां धम उत्पन्न करता हो। इसी प्रकार धनके व्यय पर भी राज्य कर

लगाया जाता है। यहाँ पर एक बात स्मरणमें हो रखना चाहिये कि व्यय पर जितना कम कर लगे उतनाही उत्तम है। स्थानीय या राष्ट्रीय राज्यके लिये तो इसका प्रयोग सर्वथा ही बुरा है।

अन्तर्जातीय राज्यों में राज्य कर लगाने में राजनैतिक सम्बन्ध की मुख्यता

आजकल अन्तर्राष्ट्रीय राज्योंमें कर लगाते समय आर्थिकस्वार्थको सामने रख लिया जाता है परन्तु अन्तर्जातीय राज्योंमें अभी तक राजनैतिक सम्बन्धको ही मुख्य रखा जाता है। परिणाम इसका यह है कि व्यक्तियों पर अन्याय युक्त द्विगुण कर लगा जाता है और भारत जैसे पराधीन देशमें आंग्ल पूंजीपति राज्य करसे प्रायः सर्वथा ही मुक्त हो जाते हैं। आर्थिक स्वार्थ सिद्धान्तके द्वारा यह समस्या भी हल कीजा सकती है। अधिक कर वहां लगाना चाहिये जहां से धन प्राप्त किया जाता हो और न्यून कर वहा लगना चाहिये जहां कि वह धनको खर्च करता हो। भारतवर्षसे आंग्ल कारखाने वाले अपना सस्ता माल बेच करके धन प्राप्त करते हैं अतः बाधककर के रूपमें धन प्राप्त करना न्याययुक्त है। यदि इससे आंग्ल कारखानोंको नुकसान पहुँचे तथा बाधककर भारतीयों पर आकरके पड़े तो यह भी एक उत्तम घटना है क्योंकि इस से स्वदेशीय व्यवसायोंको उठनेका अवसर मिल जायगा। यही नहीं, बहुतसे आंग्ल पूंजीपति

भारतमें रेलोंके अन्दर रुपया लगा कर धन कमा रहे हैं, इन पर भारी राज्य कर लगना चाहिये। परन्तु इन बातोंके लिये भारतको आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करने की नितान्त आवश्यकता है। राष्ट्रात्मक शासन पद्धतिवाले देशोंमें प्रायः राष्ट्रोंके अन्दर राज्य कर सम्बन्धी झगड़े खड़े हो जाते हैं। इसका मुख्य उपाय यह है कि राज्य कर सम्बन्धी नियमोंका बनाना मुख्य राज्यके हाथमें होना चाहिये। जर्मनीमें १८७०से इसी प्रकारके राज्य नियम बनने शुरू हुए थे और १६०६ में समाप्त हुए। एक जर्मन पर प्रत्यक्ष कर वहां पर ही लगता है जहां पर वह रहता हो। इसी प्रकार उसकी स्थिर सपत्ति तथा व्यवसाय पर उन्हीं स्थानोंमें कर लगाया जाता है जहां कि वह विद्यमान हो। यदि उसका कई स्थानोंमें व्यापार हो तो प्रत्येक स्थानमें उसके सापेक्षिक व्यापारके अनुसार थोड़ा २ कर उस पर पड़ जाता है। जर्मनीमें इस प्रकारके नियम राष्ट्रोंके विषयमें ही है। स्थानीय राज्यमें उसका कोई भी कर सम्बन्धी नियम नहीं लगता है। परन्तु स्विट्ज़र्लैण्डने इस कमीको भी पूर्ण कर दिया है। वहां मुख्य राज्यही स्थानीयराज्यके लिये कर सम्बन्धी नियम बनाता है। इस विषय पर विस्तृत तौर पर विचार करने के लिये अब हम उन भिन्न अवस्थाओंको दिखावेंगे जिन पर कि राज्य करका प्रश्न कुछ कुछ पेचीदा हो जाता है।

भिन्न भिन्न २ अवस्थाओं मे द्विगुण कर का स्वरूप

विदेश में गये नागरिक पर राज्य कर

(१) स्वदेशमें रहते हुए नागरिककी उस संपत्ति तथा आय पर करलगाना कहां तक उचित है जो कि विदेशमें है ? इस प्रश्नका उत्तर यही है कि जातियोंके अन्दर अभी तक राजनैतिक सम्बन्ध ही मुख्य है और यही कारण है कि इङ्गलैण्ड तथा अमेरिकामें स्वनागरिककी उस संपत्ति तथा आय पर कर लगा दिया जाता है जो कि विदेशमें होती है। विचित्रता तो यह है कि ऐसे ही कर उस नागरिकको विदेशमें भी देने पड़ते हैं। यह द्विगुण करका एक दूषित रूप है जिसको कि दूर कर देना चाहिये। खुशी की बात है कि राष्ट्रीय राज्यों तथा स्थानीय राज्योंमें अब यह बात बहुत कम हो गयी है। वहां आर्थिक स्वार्थ सिद्धान्त ही काम करता है।

प्रवासी नागरिक की सपत्ति तथा आय पर राज्य कर

(२) प्रवासी नागरिककी उस संपत्ति तथा आय पर कर लगाना कहां तक उचित है जो कि विदेशमें है ? यहां पर भी जातियोंमें राजनैतिक सम्बन्ध ही काम करता है। दृष्टान्त तौर पर १८९४ में अमेरिकाके अन्दर प्रवासी अमेरिकन की उस संपूर्ण संपत्ति तथा आय पर भी राज्य कर लगा दिया गया था जो कि विदेशमें थी। इङ्गलैण्ड तथा आष्ट्रियामें नागरिकताके भावको यहां तक नहीं खींचा जाता है और इसीलिये ऐसे राज्य कर भी नहीं लगाये जाते हैं। इस मामलेमें भी

राष्ट्रीय राज्यों तथा स्थानीय राज्योंमें आर्थिक स्वार्थसिद्धान्त काम करने लगा है।

(३) प्रवासी नागरिककी उस संपत्ति तथा आय पर कर लगाना कहां तक उचित है जो कि स्वदेश-में है ? ऐसे अवसर पर स्वदेशीय राज्योंको पूरा कर न लगाना चाहिये। यह इसीलिये कि विदेशीय राज्य उसपर कुछ राज्य कर लगा सकें अथवा यही बात यों भी की जा सकती है, कि स्वदेशीय राज्य पूरा कर लगा देवें और विदेशियों-को उस पर कर लगानेसे रोक देवें। जो कुछ भी हो आजकल स्वदेशीय राज्य ऐसे नागरिकों पर पूरा कर ही लगाते हैं।

प्रवासी नागरिक से सपत्ति तथा आय पर राज्य कर

(४) स्वदेशमें रहते हुए परराष्ट्रीय (alien) नागरिककी उस संपत्ति तथा आय पर कर लगाना कहां तक उचित है जो कि वहां पर ही है जहां कि वह रहता है ? इसका उत्तर यह है कि स्वराष्ट्रीय नागरिकके सदृश ही परराष्ट्रीय नागरिकके साथ व्यवहार होना चाहिये। यदि स्वनागरिककी संपत्ति तथा आय पर राज्य कर है तो परराष्ट्रीय नागरिककी संपत्ति तथा आयको करसे क्यों मुक्त कर दिया जाय ? परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं है कि परराष्ट्रीय नागरिक पर स्वनागरिककी अपेक्षा अधिक कर लगाना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता है।

परराष्ट्रीय नागरिक की सपत्ति तथा आय पर राज्य कर

विदेश में स्थित सपत्ति तथा आय पर राज्य कर

(५) स्वदेशमें रहते हुए परराष्ट्रीय नागरिक की उस संपत्ति तथा आय पर कर लगाना कहां तक उचित है जो कि विदेशमें है? यहां पर आर्थिक स्वार्थ सिद्धान्त पूर्ण तौर पर काम नहीं कर सकता है। अतः राज्य कर किसी न किसी हद तक लगना चाहिये। इङ्गलैण्ड तथा जर्मनीमें संपूर्ण नागरिकोंकी आय पर चाहे वह स्वराष्ट्रीय हो चाहे वह परराष्ट्रीय हो—एक सदृश राज्य कर लगता है और आयके स्थानोंका भी ख्याल नहीं किया जाता है।

प्रवासी परराष्ट्रीय नागरिक की सपत्ति तथा आय पर राज्य कर

(६) प्रवासी परराष्ट्रीय नागरिककी उस संपत्ति तथा आय पर कर लगाना कहां तक उचित है जो कि स्वराष्ट्रमें ही हो? आज कल सभी राज्य उस संपत्ति तथा आय पर कर लगा देते हैं जो कि स्वराष्ट्रमें ही हो। इस बातका वह कभी भी ख्याल नहीं करते हैं कि नागरिक स्वराष्ट्रीय है या परराष्ट्रीय है और कहां रहता है। १८४४ का अमेरिकन राज्य नियम भी इसी बातको प्रगट करता है *।

अमेरिका में द्विगुण कर की समस्या

अमेरिकामें कुछ एक वर्षोंसे द्विगुण करका प्रश्न बहुत ही विकट रूप धारण कर रहा है। एक ही संपत्ति पर भिन्न २ राष्ट्रोंके कर लगनेसे कई बार पाँच गुना तक कर एक ही मनुष्यको देना पड़ता

---

* महाशय सेलिगमेन रचित एसेज इन टैक्सेशन (पृष्ठ ११६–१२०)

है। इस बुराईको देख करके कुछ एक रियासतोंने सीधे मार्ग की ओर पग धरा है। आजकल इङ्गलैण्डमें जायदाद कर पर बड़ा भारी विवाद है। इङ्गलैण्डके भयंकर जायदाद करोंके विरुद्ध पिछली इम्पीरियल कान्फरन्समें न्यूज़ीलैण्डने आवाज उठायी थी। अन्य आंग्ल उपनिवेश भी इसी बात को अनुभव कर रहे हैं। यही कारण है कि, जायदाद कर पर पृथक् विचार करना हम आवश्यक समझते हैं।

३–जायदाद प्राप्ति कर *

The inheritance Tax.

प्राचीन काल मे जायदाद प्राप्ति कर

आजकल जायदाद प्राप्ति करका प्रचार प्रायः लोकतन्त्र राज्योंमें ही है। प्राचीनकालमें भी लोगों को इस प्रकारके कर प्रायः देने पड़ते थे। रोममें वृद्ध सैनिकोंको पैन्शनें देनेके लिये जायदाद ग्रहण करनेवालोंसे कुल जायदादका १/२० भाग करके तौर पर ले लिया जाता था। मध्यकालमें भी ऐसे करका अभाव न था। इसमें सन्देह भी नहीं है कि उन दिनोंमें इसको करका नाम न दे कर राज्य

* महाराय सेलिगमेन रचित एस्सेज़ इन टेक्शेशन (१६१५) पृ० १२६,१४१।

महाशन सेलिगमेन रचित प्रोग्रेषिव टेक्सेशन (१६०८) पृ० ३१६–३२२।

की उस आयसे उपमा दी जाती थी जो कि उसको संपत्ति या जायदाद पर व्यक्तियोंको स्वत्व देनेके कारण मिलती थी। अभी लिखा जा चुका है कि आजकल जायदाद प्राप्ति करका प्रचार प्रायः लोकतन्त्र राज्यमें ही है। इङ्गलैण्ड, स्विट्जर्लैण्ड, आष्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशोंमें जनता को यह कर देना पड़ता है। प्रश्न उत्पन्न होता है लोकतन्त्र राज्य ही इसको विशेषतः क्यों पसन्द करते हैं? इसका उत्तर दो तरीकेसे दिया जाता है।

लोकतन्त्र राज्यों का दो कारणों से जायदाद प्राप्ति कर मे प्रेम

(i) कुछ एक विद्वान् यह समझते हैं कि आधुनिक लोकतन्त्र राज्योंका झुकाव समष्टिवाद की ओर है। वह व्यक्तियोंके पास पृथक् २ बहुत धन या संपत्तिका होना पसन्द नहीं करते हैं और यही कारण है कि वह जायदाद प्राप्ति कर लगाते हैं और उसको भी क्रमवृद्ध रखते हैं।

(ii) कुछ एक विद्वान् यह समझते हैं जायदाद प्राप्ति कर समानता तथा शक्ति सिद्धान्तके सर्वथा अनुकूल है अतः उसका लगना उचित ही है। इस पर 'राज्य करके नियम' नामक परिच्छेदमें प्रकाश डाला जा चुका है अतः इसको यहां पर पुनः न दुहराया जावेगा।

जायदाद प्राप्ति करके सिद्धान्त

आयदाद प्राप्ति करको कई एक सिद्धान्तोंके द्वारा पुष्ट किया जाता है। जिनमेंसे जहां कुछ एक हेत्वाभाससे परिपूर्ण हैं वहां कुछ एक सत्य भी है।

(1)

राष्ट्र दायादभागी सिद्धान्त ।

(The theory of State co-heirship) *

शुरु शुरुमें जायदाद प्राप्ति करके विषयमें यह कहा जाता था कि दूरके सम्बन्धियोंको जायदाद प्राप्तिका अधिकार देनेके बदलेमें राज्यको उनसे कर लेना चाहिये। महाशय वैन्थम तो इससे भी कुछ और आगे बढ़ गये और उन्होंने कह दिया कि दूरके सम्बन्धियोंको जायदाद मिलना ही न चाहिये। जायदाद देनेका अधिकार भी किसी हद तक है। जो चाहे जिसको अपनी जायदाद दे यह ठीक नहीं है। हमारे विचारमें वैन्थम का यह कथन किसी हद तक ठीक है क्योंकि आजकल योरुपीय देशोंमें प्राचीन पारिवारिक सम्बन्ध शिथिल पड़ गया है। इस दशामें दूरसे दूर सम्बन्धीको जायदाद देना निरर्थक है। महाशय ब्लन्श्लीके भी यही विचार हैं। परन्तु उनके विचारोंका आधार वैन्थमसे सर्वथा भिन्न है। वह राष्ट्रके ऐन्द्रिय सिद्धान्तके पक्षपाती हैं अतः राष्ट्रको भी वह वैयक्तिक जायदादका हिस्सेदार तथा दायादभागी समझते हैं। आजकल महाशय एन्ड्रू कार्नेगी (Andrew cornegie) इसी विचार

वैन्थम का मत

ब्लन्श्ली की सम्मति

एन्ड्रू कार्नेगी

* महाशय सेलिगमेन रचित एसेज इन टेक्सेशन (१९१५) पृ० १२७–१३०।

के प्रसिद्धपोषक हैं। यहां पर हमको जो कुछ कहना है वह यही है कि प्राचीन कालसे अब तक जायदाद् प्राप्ति तथा सम्बन्धीका विचार पारिवारिक खूनके साथ जुड़ा हुआ है। राष्ट्रका व्यक्तियोंसे इस प्रकारका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इस दशामें 'सम्बन्ध' शब्दके अर्थको राष्ट्र तक खींच लेना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता है।

(11)

समष्टिवादी सिद्धान्त।

(The theory of socialism) *

धन का समान विभाग करना राज्य का काम है

इस सिद्धान्तके पृष्ठपोषक राज्यको धनके समान विभाग करनेका एक मुख्य साधन समझते हैं। शुरू २ में यह सिद्धान्त समष्टिवादी न था। मिलनेही सबसे पहिले पहिल यह लिखा कि मृत्युके अनन्तर संपत्तिको ग्रहण करनेवाला नियत करना व्यक्तियोंका काम नहीं है। यह अधिकार राज्यका ही है। जो कुछ भी हो। अब तक योरूपीय जन समाजको यह विचार स्वीकृत नहीं है। भारत तथा योरुपमें तो अभी तक यह कानून है कि पितृपितामहोंकी स्थिर संपत्ति पर पुत्रोंका अधिकार है। पिता बिना

* महाशय सेलिगमैन रचित एसेज इन टेक्सेशन (१९१५) पृ० १३०–१३१।

पुत्रोंकी सम्मतिके उस संपत्तिको किसीको भी नहीं दे सकता है। आजकल विचारक लोग मिल-की सम्मतिको समष्टिवादके आधार पर पुष्ट करते हैं। समष्टिवादके खण्डमें ही हम इस पर प्रकाश डाल चुके हैं। अतः इसको अब यहां पर छोड़ देना ही उचित समझते हैं।

(iii)

सेवाव्यय सिद्धान्त।

(Cost of Service Theory)*

जायदाद प्राप्ति कर तथा शुल्क

बहुतसे विद्वान् जायदाद प्राप्ति करको कर न समझ करके शुल्क समझते हैं। उनका विचार है कि दीवानी अदालतोंका खर्चा निकालनेके लिये राज्य जायदाद प्राप्ति करको लेता है। क्यों कि दीवानी अदालतोंसे अमीरोंको ही जादा लाभ है। हमारे विचारमें इस सिद्धान्तमें दो दोष हैं जिनके कारण इस सिद्धान्तको स्वीकृत करना कठिन है।

जायदाद प्राप्ति कर की मात्रा कम होनी चाहिये

(क) इस सिद्धान्तके अनुसार जायदाद प्राप्ति कर की मात्रा बहुत थोड़ी होनी चाहिये। क्योंकि बहुतसे देशोंमें जायदाद प्राप्ति कर दीवानी अदालतोंके खर्चोंसे किसी हद तक अधिक लिया जाता है। इङ्गलैण्डमें देरसे यह कर राज्यकीय

* महाशय सेलिगमेन रचित ऐस्सेम इन टेक्सेशन (१९१५) पृ० १३२।

आयका साधन है। यदि सेवाव्यय सिद्धान्त सत्य हो तो यह न होना चाहिये।

जायदाद प्राप्ति कर क्रमागत ह्रासशील होना चाहिये

(ख) सबसे बड़ी बात तो यह है कि सेवाव्यय सिद्धान्तके अनुसार जायदाद प्राप्ति कर क्रमवृद्ध न होकर क्रमागत ह्रास शील होना चाहिये। अर्थात् बड़े२ अमीरोंसे यह कर कम लिया जाना चाहिये और दरिद्रोंसे ज्यादा। यह क्यों? यह इसी लिये कि संख्यामें अमीरोंके झगड़े दरिद्रों की अपेक्षा कम होते हैं और उनका फैसला भी शीघ्र ही किया जा सकता है। अमेरिका की विस्कौसिन रियासतने १८८६ में एक बार ऐसा ही कर लगाया था और उसको क्रमागत ह्रास शील रखा था। परन्तु अभी तक अन्य किसी भी देशमें यह बात नहीं है। जब तक यह बात न हो तब तक सेवाव्यय सिद्धान्त कैसे ठीक कहा जा सकता है।

(iv)

स्वत्व मूल्य सिद्धान्त।

(Price of privilege theory) *

राजकीय अधिकार प्राप्ति कर

बहुतसे विचारकोंका मत है कि चूंकि राज्य व्यक्तियोंको अपनी संपत्ति एक दूसरेको देनेको अधिकार देता है अतः इस अधिकार देनेके बदले-

* महाशय सेलिगमेन रचित परसेज इन टैक्सेशन पृ० १३२-१३३।

में वह जायदाद प्राप्ति करको लेता है। सारांश यह है कि जायदाद प्राप्ति कर स्वत्व देनेका मूल्य है। इसको शुल्क नहीं पुकारा जा सकता है क्यों कि यह अदालतके खर्चोंको पूरा करनेके लिये ही एकमात्र नहीं लिया जाता है। परन्तु यह विचार कभी भी स्वीकृत नहीं किया जा सकता है। क्योंकि आज कल लोग दिन पर दिन अधिक स्वतन्त्रता की ओर जा रहे हैं। 'संपत्तिका एक दूसरेको देना' यह वैयक्तिक अधिकार है। यह वह वस्तु नहीं है जोकि राज्यकी कृपासे व्यक्तियोंको मिली हो। इस दशामें स्वत्व मूल्य सिद्धान्त कभी भी माना नहीं जा सकता है क्योंकि वह 'संपत्ति दान तथा संपत्ति परिवर्त्तन' सम्बन्धी वैयक्तिक अधिकार का घातक है। यहीं नहीं। यदि साधारण संपत्ति करके साथ साथ किसी राज्यमें यह भी कर लग जावे तो कइयों पर यह द्विगुण करका रूप धारण कर सकता है और इस प्रकार असमान तथा अन्याययुक्त हो सकता है।

इस सिद्धान्त में दोष

(v)

आय कर सिद्धान्त।

(Income tax Theory)*

कुछ एक विद्वान् जायदाद प्राप्ति करको एक प्रकारका आय कर ही समझते हैं। इनकी सम्मति

जायदाद प्राप्ति कर एक प्रकार का आय कर है

* महाशय सेलिगमेन रचित एस्सेज इन टैक्सेशन पृ० १३३—१३४।

है कि आयदादके मिलनेसे व्यक्तियोंकी कर देने-की योग्यता बढ़ जाती है और उनकी आय भी पूर्वापेक्षा अधिक हो जाती है अतः इसको आय कर ही समझना चाहिये। हमारी सम्मतिमें इस विचारको सत्य माननेसे पूर्व एक दो बातोंका अवश्य ही ख्याल कर लेना चाहिये। जायदाद प्राप्ति करको साधारण आयसे उपमा न दे कर सट्टेकी आयसे उपमा देनी चाहिये। निःसन्देह इससे कर देने की शक्ति बढ़ जाती है परन्तु इस-से राज्यको स्थिर आय नहीं हो सकती है। साधारण आय करका मुख्य गुण स्थिरता है जब कि जायदाद प्राप्ति करमें यही बात नहीं है। बहुत बार यह भी देखा गया है कि जायदाद प्राप्तिसे व्यक्तियोंको कर देनेकी शक्ति नहीं भी बढ़ती है।

विधवाओं का जायदाद प्राप्त करना

विधवा स्त्रियोंको जब जायदाद मिलती है तो वह प्रायः उससे अपने खर्चे ही निकालती हैं। यह बहुत कम देखा गया है कि स्त्रियां उस जाय-दादको अधिक धन कमानेका साधन बनावें। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है मनुष्योंके रहते खर्चा भी बहुत होता है। वही जायदाद जब स्त्रियों को मिलती है तो खर्चे के कम होनेसे एक तरीकेसे-प्रायः आयका साधन भी बन जाती है और इससे उनकी कर देने की शक्ति भी बढ़ जाती है। सारांश यह है कि जायदाद प्राप्ति कर एक प्रकारसे साधारण आय कर का सहायक कर है।

(vi)

पृष्ठकर सिद्धान्त।

(Back Tax Theory)*

कई एक विचारकोंका मत है कि लोग जीते जी संपत्ति करसे प्रायः बच जाते हैं अतः उनके मरनेके बाद उनकी संपत्ति पर राज्य कर लगना चाहिये। इस विचारको मानना कठिन है क्योंकि मनुष्य जीते जी संपत्ति करसे न बच करके एक मात्र पौरुषेयकरसे ही बचते हैं। यदि इसको सच भी मान लिया जावे तो यह कौन बता सकता है कि कौन मनुष्य अपने जीवनमें राज्य करकी कितनी राशिसे बचा है। बहुतसे मनुष्य अपनी संपत्तिके अनुसार राज्य करको दे भी देते हैं। इस दशामें जायदाद् प्राप्ति कर किस प्रकार न्याययुक्त ठहराया जा सकता है जब कि वह व्यक्तियोंको न देख करके संपत्ति पर ही लगाया जाता हो। यह कौन सूत्र बना सकता है कि जो अधिक संपत्तिवाला है वही सबसे अधिक राज्य करोंसे बचा है। सारांश यह है कि समानतातथा न्यायको भंग करनेके कारण पृष्ठ कर सिद्धान्त कभी भी नहीं माना जा सकता है!

मृत्यु पर राज्य कर

पृष्ठ कर सिद्धान्त में असमानता नियम का दोष

* महाशय सेलिगमेन रचित एस्सेज़ इन टैक्सेसन पृ० १३५।

(vii)

संचित पूंजी आय कर सिद्धान्त।*

आयदाद प्राप्ति कर का संचित पूंजी से संबंध

बहुतसे विचारकोंकी सम्मति है कि जायदाद प्राप्ति कर इसलिये उचित है कि वह संचित पूंजी पर एक बारी ही पड़ता है और थोड़ा २ करके बारंबार नहीं लिया जाता है। हमारे विचार में यह बात ठीक नहीं है। प्रश्न तो यह है कि क्या आधुनिक आय या पूंजीकर व्यक्तियोंको देना पड़ता है वा नहीं? यदि देना पड़ता है तो जायदाद प्राप्ति कर द्विगुण कर हो जावेगा और यदि नहीं देना पड़ता है तो जायदाद प्राप्ति कर असमान हो जावेगा। दृष्टान्त तौर पर यदि भिन्न २ आयु वाले एक जैसे दो अमीर आदमी मरें तो उनको जायदाद प्राप्ति कर तो समान देना पड़ेगा जब कि वह लोग भिन्न २ अनुपातसे राजकीय करोंसे बचे हैं। यदि संचित पूंजी आय कर सिद्धान्त सत्य हो तो जायदाद प्राप्ति कर संपत्तिके स्थान पर आयुके अनुसार क्रमवृद्ध होना चाहिये, जो कि किसी देशमें भी नहीं है।

आयकर सिद्धान्त की उत्तमता तथा दोष

सारांश यह है कि जायदाद प्राप्ति करके संपूर्ण सिद्धान्तोंमें आय कर सिद्धान्त ही सचाई

---

* महाशय सेलिगमेन रचित एसेज इन टेक्सेशन पृ० (१९१५) १३५–१४१।

पबलिक फाइनन्स बाई बोस्टेबटल पृ० ५२६।

के कुछ २ पास पहुँचता है। कठिनता जो कुछ है वह यह है कि इस सिद्धान्तके अनुसार यह कर क्रमवृद्ध न होना चाहिये। परन्तु सभी राज्य इसको क्रमवृद्ध ही देखते हैं। बड़ी संपत्ति पर जिस अनुपातसे राज्य कर लगाया जाता है उसी अनुपातसे अल्प संपत्ति पर कर नहीं लगाया जाता है। इंग्लैण्डमें इस करको लगाते समय संपत्तिको दो भागोंमें विभक्त कर दिया जाता है। भिन्न२ कम्पनियोंके हिस्से तथा प्रामेसरी नोट्स आदि पर जायदाद प्राप्तिकर और भौमिक संपत्ति पर राष्ट्रीय कर लगाया जाता है।

प्रश्न तो यह है जायदाद प्राप्ति कर क्रमवृद्ध होना चाहिये वा नहीं? दूरके सम्बन्धियोंके अनुसार क्रमवृद्ध होना चाहिये इसको तो सभी विचारक मानते हैं। संपत्तिकी अधिकताके अनुसार क्रमवृद्ध होना चाहिये इसपर अभी तक विचारकोंका मत भेद है। वास्तविक बात तो यह है कि राज्य परिस्थितिके अनुसार काम करते हैं। धनकी आवश्यकता है और जायदाद प्राप्ति कर उनको मिल सकता है अतः वह उसको लगाते हैं जनता समष्टिवादकी ओर जा रही है अतः वह उस करको क्रमवृद्ध कर रहे हैं। किसी एक सिद्धान्तके द्वारा जायदाद प्राप्ति करकी घटनाको हल करना कठिन है।

राज्य परिस्थिति के अनुसार काम करते हैं

४—साधारण संपत्ति कर।

(The General property tax)

साधारण संपत्ति कर का प्रयोग

साधारण संपत्ति कर लगाते समय इस बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है कि संपत्ति उत्पादक है वा अनुत्पादक है, व्यवसायिक है वा स्थिर है। प्रत्येक मनुष्य की संपूर्ण संपत्तिका आनुमानिक मूल्य लगा लिया जाता है और उस पर राज्य करकी मात्रा निश्चित कर दी जाती है। इस करका सब से बड़ा दोष यह है कि यह अन्याययुक्त है। संपत्ति भिन्न २ प्रकार की होती है। बहुत सी संपत्ति आयका साधन होती है और बहुत सी सपत्ति एक मात्र घर या शरीर-को ही सजाती है। इस दशामें संपत्ति को एक सदृश मान करके राज्य कर लगाना अनुत्पादक संपत्तिवाले मनुष्यों पर भयंकर अत्याचार करना है। यदि संपत्तिका अनुत्पादक तथा उत्पादकके विचारसे वर्गीकरण करके राज्य कर लगाया जावे तो इसमें बहुत कठिनाइयां उपस्थित हो सकती हैं और करका सुगमतागुण नष्ट हो सकता है। इसको समझनेके लिये यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि इस करको किस प्रकार लगाया जाता है।

साधारण संपत्ति करके प्रयोग की विधि

अमेरिकामें भिन्न २ नगरोंके कराध्यक्ष एक रजिष्टरमें प्रत्येक नागरिककी संपत्ति लिखते हैं और उसका आनुमानिक मूल्य लगाते हैं। इस

मूल्यके अनुसार ही प्रत्येक नागरिक पर राज्य-कर लगता है। इसमें कठिनता यह है कि संपत्ति दो प्रकारकी होती है। स्थिर संपत्ति तथा पौरुषेय अस्थिर संपत्ति। यदि एकमात्र स्थिर संपत्ति ही होती तब तो इस करमें किसी प्रकारका भी दोष नहीं होता। सारी गड़बड़ अस्थिर संपत्तिके कारण मच गई है। लोग अस्थिर संपत्तिका ठीक ढंग पर राज्यको पता नहीं देते हैं और सैकड़ों कसमें खाकरके भी अपनी अस्थिर संपत्तिको राज्य करसे बचा लेते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि लोगोंमें इस करके कारण बेईमानी छल कपट बढ़ता जाता है और स्थिर संपत्तिवाले पुरुषोंपर साराका सारा राज्यकर पड़ जाता है।

साधारण संपत्ति करका अमेरिकामें ही बहुत प्रचार है। इस करके अवलम्बन करनेका एक यह भी कारण है कि राज्यके खर्चे बहुत बढ़ गये हैं जब कि इसको आमदनी उतनी होती नहीं है। जो कुछ भी हो। यह कर बहुत ही हानिकर है। इसके निम्नलिखित बड़े २ दोष हैं जिनको कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। *

---

* दी साइन्स आफ फाइनान्स। हेनरी कार्टर आदम लिखित (१८९८) पृ० ४३४-४३६।

१—साधारण संपत्ति करके दोष।

अक्तियां पर असमान तौर पर पड़ता है

१—(क) **साधारण सम्पत्ति कर एक सदृश नहीं होता है:**—आजकल राज्य अपने खर्चोंको अपने सामने रख लेता है और फिर उन खर्चोंके अनुपातसे भिन्न २ विभागों पर राज्यकर बांट देता है। यह बड़ा भारी दोष है। क्योंकि इससे करका भारी हो जाना बहुत संभव है। उचित तो यह है कि राज्य पहिले पहिल यह देख लेवे कि उसको किन २ स्थानोंसे कितना २ धन मिल सकता है और इसके देखनेके अनन्तर फिर भिन्न २ स्थानों पर उनकी शक्तिके अनुसार राज्य कर लगा देवे। यदि कोई राज्य ऐसा न करे और अपने खर्चोंके अनुपातसे कर लगा देवे तो करका बढ़ जाना स्वाभाविक ही है और लोग ऐसे भारी करसे बचनेका यत्न करें तो आश्चर्य करना वृथा है। अमेरिकाकी करप्रणाली दोषमय है। भिन्न २ रियासतोंके राज्य कर सम्बन्धी नियमोंके भिन्न २ होनेका परिणाम यह है एक रियासतमें रेलवे लाइन पर प्रतिमाइल करकी मात्रा बहुत ही अधिक है और दूसरी रियासतमें उसको घास चरानेवाली भूमिके सदृश करसे मुक्त कर दिया गया है *

---

* एस्सेज इन टेक्शेशन इन अमरीकन इस्टेट्स एन्ड सीटीज पृ० १६२।

साधारण संपत्ति कर लगानेके लिये नागरिकोंसे उनकी अपनी २ संपत्ति पूछी जाती है। प्रत्येक नागरिकको संपत्ति बताते समय कसम खाना पड़ता है कि वह सच बोल रहा है। अमेरिका की ज्यार्जिया रियासतमें प्रत्येक नागरिकको यह कसम खानी पड़ती है कि "मैंने राज्य करको सूची ठीक ढंग पर पढ़ ली है तथा समझली है। मैं अपनी संपत्तिको छिपाऊंगा नहीं। राज्य कर लगानेके लिये मैं अपनी संपत्ति बता दूँगा। इत्यादि २" * इन कसमोंके खाते हुए भी प्रायः नागरिक लोग अपनी संपत्ति का पूर्ण तौर पर राज्यको पता नहीं देते हैं। परिणाम इसका यह है कि झूठे छली कपटी नागरिक तो राज्य करसे बच जाते हैं और सत्यवादी तथा स्थिर संपत्ति वाले नागरिकोंको संपूर्ण राज्य कर देना पड़ता है। यही कारण है कि यह कर सबको एक सदृश तौर पर नहीं देना पड़ता है। †

नागरिकों से उनकी संपत्ति का पता लेना

झूठी कसमें

(ख) यह स्पष्ट ही है कि कराध्यक्ष साधारण संपत्ति पता लगाते समय स्थिर संपत्तिको शीघ्र ही जान सकते हैं जब कि पौरुषेय संपत्तिका

* एमेज इन टैक्शेशन बाइ सेलिगमेन (१९१५) पृ० २०–२२

† दी माइन्स आफ फाइनान्स बाइ हेनरी कार्टर आदम (१८९८) पृ० ४३६–४३८।

स्थिर सपत्ति तथा पौरुषेय सपत्ति पर असमान तौर पर कर पड़ता है

जानना उनके लिये कठिन होता है। इसका परिणाम यह है कि समानसे समान राज्यकर असमान करका रूप धारण कर रहा है। महाशय सैलिग्मैनका कथन है कि "पौरुषेय संपत्ति पर करका भार कभी भी पूरे तौर पर नहीं पड़ता है। यही कारण है कि पौरुषेय संपत्ति जिस अनुपातमें बढ़ती है कर भार उसपर उसी अनुपातमें कम हो जाता है। अर्थात् कि किसी पुरुषकी जितनी यह संपत्ति बढ़ती है* उसपर उतना हो कर कम

* अमेरिका का १०वीं गणनापत्रमें लिखा है कि १८६०मे १८८० तक स्थिर सपत्तिका मूल्य ६९६३मे १३०३६ दशलाखडालर्जजा पहुचा परन्तु अस्थिर सपत्तिका मूल्य ५१११ मे ३८६६ डालर्ज तक घट गया। यह क्या? यह इसीलिये लोगोंने अपनी चलतू पूजीयाम पत्तिका ठीक ढग पर पता नहीं दिया। वास्तवमें स्थिर सपत्तिकी भी अमेरिकामें वृद्धि हुई थी। परन्तु सपत्ति करके भयमे लोगोंने अस्थिर सपत्तिका राज्यको ठीक ढग पर पता नहीं दिया। परिणाम इसका यह हुआ कि सारा राज्य कर स्थिरसपत्ति वालों पर आ पड़ा न्यूयार्क का सची भी यही प्रगट करता है दृष्टान्त तौर पर —

सन्	स्थिर सपत्ति डालर्ज	पौरुषेय चलतू सपत्ति डालर्ज
१८४३	४७६ ८९९०००	११८ ६०२०००
१८५९	१०६७ ५६४०००	३०७३४९०००
१८७१	१५९९ ९३००००	४५२ ६०७०००
१८८८	३ १२२ ५८८०००	३४६ ६११०००
१८९२	३६२६ ६४५०००	४११ ४१३०००
१९११	८६३९००१८६८	४८२४९९१९३

हो जाता है इस घटनासे शिक्षा लेकरके आजकल राज्याधिकारियोंने समितियों तथा कम्पनियों पर राज्य कर लगाना प्रारम्भ किया है। यह क्यों? यह इसलिये कि इनको अपने लेन देनको ठीक ढंग पर करनेके लिये हिसाब किताब रखना पड़ता है। पुरुषोंकी जो संपत्ति हिस्से ऋणों आदिके रूपमें इनमें लगी होती है, उसका ज्ञान राज्यको हो जाता है और वह समितियों तथा कम्पनियोंके द्वारा पौरुषेय सपत्ति पर कर लगा देता है। निस्सन्देह कुछ ऐसी भी पौरुषेय संपत्ति है जिसका ज्ञान इनके द्वारा राजाको नहीं होता है। दृष्टान्त तौर पर नोट्स, हुण्डियां तथा निक्षेप धनको पता लगाना राज्यके लिये बहुत कठिन है। यह होते हुए भी भिन्न २ राज्योंका नियम है कि निक्षेप धन तथा निक्षेपग्राही इन दोनों पर ही राज्य कर लगाना चाहिये। परन्तु प्रश्न तो यह है कि निक्षेपधनका पता कैसे लगे? इसको पता लगानेके लिये राज्योंने सिर तोड़ यत्न किया और नये २ नियमों तथा तरीकोंका सहारा लिया परन्तु उनको कुछ भी सफलता न मिली। क्योंकि लोगों-ने भी राज्य करसे बचनेके नये २ तरीकोंको निकाल लिया।

महाशय मेलिगमेन रचित एस्सेज इन टैक्सेशन (१६१८) पृ० २४।

भिन्न २ रियासतों पर असमान तौर पर पड़ता है

(ग) अमेरिकामें राज्य कर लगानेके मामले-में रियासतोंको स्वतन्त्रता है। प्रत्येक रियासत समृद्ध होना चाहती थी और अमीरोंको अपने यहां बसाना चाहती थी। इसका परिणाम यह है कि पौरुषेय संपत्ति पर कर लगाते समय सब रियासतोंमें एक सदृश सख्ती नहीं की जाती है। दरिद्र रियासतें जहां बहुत हो नर्मीसे काम लेती हैं वहां समृद्ध रियासतोंमें यह बात नहीं है। इसी प्रकारकी स्पर्धा ग्राम तथा नगरोंके कराध्यक्षोंके बीचमें काम कर रही है। क्योंकि कराध्यक्ष जिस-का प्रतिनिधि होगा उसीके हितको सोचेगा। इसीसे कइयोंका यह विचार भी होगया है कि कराध्यक्ष ग्रामीण या नागरिक प्रतिनिधि न होकरके राष्ट्रका नौकर होना चाहिये। परन्तु इससे कई अन्य प्रकारके झगड़े खड़े हो सकते हैं। राष्ट्रका नौकर यदि कराध्यक्ष होवे तो उसको यह पता लगाना ही कठिन हो जायगा कि किस ग्रामीण तथा नागरिक के पास कितनी संपत्ति है। ऐसे राष्ट्रीय नौकरोंसे कितनी गलतियां होती हैं तथा किस प्रकार भौमिक लगान तथा कर बढ़ जाते हैं। इसका ज्ञान भारतीयोंको पूर्ण तौर पर है। प्रति-निधि तन्त्र देश इसकी बुराइयोंका अनुभव नहीं कर सकते हैं *

---

* दी साइन्स आफ फ़ीनेन्स बाई हेनरी कारटर अदम (१८९८) पृ० ४३६-४४१।

(२) साधारण संपत्ति कर जनतामें छल कपट-को बढ़ाता है। साधारण संपत्ति करका सबसे बड़ा दोष यह है इससे बचनेके लिये लोग दिन पर दिन छली कपटी तथा बेईमान बनते जाते हैं। कसमें खा खा करके झूठ बोलते हैं। भिन्न २ अमेरिकन रियासतोंकी कर सम्बन्धी विवरण पत्रिका इसी बातको प्रकट कर रही है।

लोगों का बेई-मान बनना

दृष्टान्त तौर पर एक अमेरिकन रियासतकी॰ विवरण पत्रिकाके शब्द हैं कि वैयक्तिक संपत्ति पर तो राज्य कर क्या है? वास्तवमें यह अज्ञानता तथा सत्य परायणता पर एक प्रकारका राज्य कर है" इसी प्रकार न्यू हैम्प शायर् की रिपोर्टके शब्द हैं कि लोगोंमें इस करके कारण बेईमानी तथा छलकपट बढ़ता जाता है और इलिनायसके शब्द हैं कि "यह राज्यकर आत्मघात सिखाने तथा आचार बिगाड़नेका एक स्कूल है। इसमें जाल-साजी तथा राज्यनियम तोड़नेकी विद्या सिखायी जाती है" न्यूयार्क भी इस स्थान पर चुप्प नहीं है। उसकी रिपोर्टमें लिखा है कि 'यह राज्य कर सचाई पर दण्ड है और जालसाजीपर इनाम है॰

अमरीका की राजकीय स-म्मति

महाशय सेलिगमेन रचित इसेज इन टेक्जेशनसे पृ० ११११ २२-२६।

॰ न्यूयार्क फर्स्ट रिपोर्ट, १८७१, (पृ० ६०-६१, ७१-७१।

,, फर्स्ट ऐन्युवल रिपोर्ट आफ दी स्टेट असेसर्स, १८८० पृ० १२।

साधारण संपत्ति कर बहुत बार अत्याचार पूर्ण हो जाता है

(३) साधारण संपत्ति कर जनता पर एक प्रकारका अत्याचार करता है। राज्य कर उस समय क्रमवृद्ध होते हैं जब कि वह आयकी वृद्धि-के साथ साथ बढ़ते जावें। परन्तु वही कर अत्याचार करनेवाले हो जाते हैं जब कि कर मात्रा बढ़ती जावे और लोगोंकी आय घटती जावे। दृष्टान्त तौर भारतका भौमिक लगान या भौमिक कर इसी प्रकार है। भारतीय किसान दिन पर दिन दरिद्र होते जाते हैं, दुर्भिक्ष दिन पर दिन बढ़ता जाता है, भूमिकी उत्पादक शक्ति लगातार घट रही है, परन्तु सरकारी भौमिक कर हर बन्दोबस्तके समयमें बढ़ ही जाता है। महाशय बालपोलने आजसे बहुत समय पूर्व ठीक कहा था कि गरीब किसान तो वह भेड़ हैं जोकि सबसे अधिक राज्यके द्वारा मूंड़े जाते हैं और व्यापारी लोग सुअर हैं जोकि ज़रासे भी कर भारसे सारेके सारे प्रान्तको अपनी आवाजसे गुंजा देते हैं।

(४) साधारण संपत्ति कर बहुत बार द्विगुण करका रूप धारण कर लेता है। अमेरिकामें अधमर्ण तथा उत्तमर्ण दोनोंकी ही उधारमें लगी तथा प्राप्त पूंजी पर पद कर लगा दिया जाता है। इससे यह द्विगुणकरका रूप धारण करके अन्याययुक्त हो जाता है *

---

* महाशय मलिगमेन रचित इसेज इन टेक्सेशन से पृ० १६–६२।

५—समिति कर।

समिति कर पर विचार करते ही निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं।

(१) किन किन व्यवसायिक समितियों तथा कंपनियों पर राज्य कर लगाया जाय?

समिति कर सबन्धि प्रश्न

(२) समिति कर लगानेका उचित आधार क्या है?

(३) समिति करकी राशि या कर मात्रा को किस प्रकारसे निश्चित किया जाय?

अब हम क्रमशः इन प्रश्नों पर विचार करना प्रारम्भ करते हैं।

I

किन किन व्यवसायिक समितियों तथा कंपनियों पर राज्य कर लगाया जाय?

योरूपीय देशोंके राज्य यदि शुरू ही से व्यवसायोंके संगठन पर ध्यान रखते तो करके लगानेमें उनको बहुत सी सुगमतायें हुई होतीं। यह क्यों? यह इसी लिये कि सब व्यवसाय एक सदृश नहीं होते। कई व्यवसाय कंपनियोंके द्वारा चलाये जाते हैं और कई व्यवसाय पूंजी पतियों-के द्वारा। इनमें भी कई व्यवसाय एकाधिकारी होते हैं और कई व्यवसाय एक मात्र साधारण लाभ प्राप्त कर काम करते हैं ऐसी दशामें व्यवसायों पर कर लगानेमें बड़ी सावधानीकी

व्यावसायिक करमें सावधानी की जरूरत

ज़रूरत है। आंखें मूंद कर सभी व्यवसायों पर एक सदृश राज्य कर लगा देने से देशकी उत्पादकशक्ति नष्ट हो सकती है और जनताकी पदार्थोंके उत्पत्तिमें रुचि घट सकती है। १८८२ में भारतीयों पर जो ३$\frac{1}{2}$% व्यावसायिक कर लगा वहभी कारण भयंकर है। क्योंकि वह भारतीय व्यवसायोंकी जड़ोंको खोखला करता है और जनताकी पदार्थोंके उत्पत्तिमें रुचि तथा उत्पादक शक्ति को नष्ट करता है। सारांश यह है कि समिति कर लगानेसे पूर्व व्यवसायोंकी वास्तविक दशाका देख लेना अत्यन्त आवश्यक है।

३$\frac{1}{2}$ प्रतिशतक व्यावसायिक कर का भय करना

(१) योरुपीय देशोंमें रेल्वे व्यवसाय लाभका व्यवसाय है। अमेरिकामें कंपनियां ही रेल्वे व्यवसाय को चलाती हैं। इनके हिस्सोंका बाजारमें क्रय विक्रय होता है अतः राज्यको यह पता ही नहीं चलता कि इन कंपनियोंका कौन मालिक है। इनके स्वामियोंने किरायेको घटा बढ़ा कर भिन्न भिन्न व्यापारियोंको बड़ा भारी नुकसान पहुँचाया है।* यही कारण है कि आजकल यूरोपीय राजनीतिज्ञ इस व्यवसाय पर अपना ही

रेल्वे कंपनियां

---

* लेखक का संपत्ति शास्त्र "पु० संपत्तिका विनिमय, परि० एकाधिकार" या महाशय रिचर्ड टी. एली. कृत मानोपोलीज एंड ट्रस्टस, वा टासिग कृत प्रिन्सिपल्स आफ इकोनामीक्स भाग २

'रेल्वे"—

प्रभुत्व रखना चाहते हैं। इसका व्यक्तियोंके द्वारा सञ्चालन बहुत ही बुरा है।

टैलीफोन तथा और सबधी कपनियां

रेल्वेके सदृश ही टैलिफोन तथा तार भेजनेका व्यवसाय है। बहुतोंके विचारमें टैलिफोनके व्यवसायमें क्रमागत ह्रास नियम लगता है अतः इसको रेल्वे तथा तार व्यवसाय की श्रेणीमें न रखना चाहिये। उपरिलिखित व्यवसाय स्वभाव से ही एकाधिकारी व्यवसाय हैं अतः इन पर राज्य कर, बिना किसी प्रकारके संकोचके लगाना चाहिये। भारतमें ऐसे व्यवसाय प्रायः राज्यके हाथ में हैं और जो जो रेल्वे लाइन इसके हाथ में नहीं है उनको भी वह खरीद रहा है अतः यहां इस श्रेणीके व्यवसायों पर राज्य करका प्रश्न बहुत पेचीदा नहीं है।

बैंक तथा बीमा कपनिया

(२) बैंक तथा बीमा कराईका व्यवसाय रेल्वे व्यवसायसे सर्वथा भिन्न है। इनमें भी क्रमागत वृद्धि नियम लगता है। अतः राज्यको इनसे कर लेना चाहिये। भारतमें अभी तक जातीय बैंक्स बहुत सफलतासे नहीं चले हैं अतः यहां राज्यको इस प्रकारके कार्य करनेवालों को सहायता देना चाहिये। यहां पर राज्य कर लगानेका प्रश्न इतना मुख्य नहीं है जितना कि सहायता देने का।

खान आदि का व्यवसाय

(३) तृतीय प्रकारके व्यवसाय खान आदि खोदनेके हैं। बंगालमें जमीन पर प्रभुत्व ज़मींदारों का है अतः उनसे राज्य रायलिटीके तौर

पर धन लेती ही हैं। अन्य प्रान्तोंमें कानों पर राज्यने अपना अधिकार प्रगट कर दिया है अतः इस श्रेणीके व्यवसाय भी राज्य करके प्रश्नसे बाहर हो गये हैं।

नागरिक व्यवसाय

(४) चौथे प्रकारके व्यवसाय नागरिक व्यवसाय हैं। दिल्ली, कानपुर, कलकत्ता, बाम्बे आदि नगरोंमें जो कंपनियां ट्राम चला कर तथा बिजली की रोशनी कर लाभ उठाती हैं उन पर राज्य कर लगना चाहिये।

इन उपरिलिखित एकाधिकारीय व्यवसायों पर राज्य कर लगानेके लिये राज्यको उनके हिसाब किताब का उचित विधि पर निरीक्षण करना चाहिये। जिन जिन व्यवसायों में विशेष लाभ हो उनसे राज्य कर लेना चाहिये।

II

समिति कर लगानेका उचित आधार क्या है?

किन किन व्यवसायों पर राज्य कर लगना चाहिये इस पर प्रकाश डाला जा चुका है। अब केवल यही लिखना है कि समिति कर लगाने का उचित आधार क्या है? इस विषय पर विचार करनेके लिये हम भार संवाहक व्यवसायों (Transporation Industries) को ही अपने सामने रखेंगे। ऐसा करनेसे विचारमें सुगमता रहेगी। समिति कर चार प्रकारसे लगाया जा सकता है।

समिति कर का आधार

(१) कंपनीकी संपत्ति पर राज्य कर लगाया जा सकता है।

(२) कंपनीके कारोबार तथा काम धन्धे पर राज्य कर लगाया जा सकता है।

(३) कंपनीकी आमदनी पर राज्य कर लगाया जा सकता है।

(४) विशेष विशेष व्यवसायों पर राज्य कर।

अब क्रमशः एक एक पर प्रकाश डाला जायगा।

रेल्वे कंपनियों की संपत्ति पर कर लगाने के तीन प्रकार

(१) कंपनीकी संपत्ति पर राज्यकर लगाया जा सकता है:—रेल्वे कंपनियोंकी संपत्ति पर आजकल कई एक सभ्य देशोंमें राज्य कर लगाया जाता है। इस करके लगानेके तीन प्रकार हैं।

(अ) संपूर्ण खर्चोंका कल्पित मूल्य लगा कर उस पर राज्य कर लगा दिया जाय।

(ब) रेल्वेकी संपूर्ण संपत्तिपर व्याजकी बाजारी दरसे राज्य कर लगा दिया जाब।

(स) रेल्वे कंपनीकी संपत्तिको जाननेके लिये उसके हिस्सों तथा ऋण पत्रोंकी पूंजी को देख लिया जाय और उसका कुल मूल्य का पता लगा लिया जाय। इनमें से पहले (अ) को ही लोः—

खर्चे को सामने रख कर राज्य कर नहीं लग सकता

(अ) रेल्वे कम्पनियोंके कुल खर्चोंका राज्य कर लगाते समय ध्यान रखना कठिन है। क्यों कि उसके संपूर्ण खर्चों का जानना किसी एक मनुष्यकी शक्तिमें नहीं है। अमेरिकामें रेल्वे

कंपनियोंके पास प्रायः कुल खर्चोंका हिसाब नहीं है। अब उनके पुराने खर्चोंका अनुमान करना भी सुगम नहीं हो सकता। सारांश यह है कि एकाधिकारीय व्यवसायों पर राज्य कर लगाते समय राज्योंको उनके खर्चोंको सामने रखना व्यर्थ है। ऐसी दशामें ऐसे व्यवसायों पर राज्यकर लगाने का पहिला तरीका ठीक नहीं है।

ब्याज की बाजारी दर को सामने रख कर भी रेल्वे की संपत्ति पर राज्यकर नहीं लगाया जा सकता।

(ख) रेल्वेकी संपूर्ण संपत्ति पर ब्याजकी बाजारी दरसे राज्यकर लगाना भी कठिन है। क्योंकि रेल्वेमें आय न होते हुए भी प्रायः सट्टेके कारण उसकी संपत्तिका दाम चढ़ जाता है। बहुतसे अमेरिकन रेल्वे हिस्सोंको खरीदनेमें इस लिये भी पूंजी लगाते हैं क्योंकि उससे उनको शक्ति प्राप्त होती है। उनको उस रेल्वे कम्पनीके द्वारा अपना व्यापारीय सामान भेजने तथा उपयुक्त समय पर गाड़ियोंके प्राप्त करनेमें सुविधायें होती हैं। भारतमें रेल्वे व्यवसाय प्रायः घाटेका व्यवसाय है तौ भी भारतीय राज्य उसको अपनी राजनीतिक शक्तिका साधन समझते हुए खरीद रहा है। सारांश यह है कि रेल्वे व्यवसायके हानि लाभका उसकी संपत्तिके दामोंके चढ़ाव उतरावसे प्रायः घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है अतः इस चढ़ाव उतरावका विचार करके ऐसे व्यवसाय पर राज्य कर लगाना गलती करना होगा।

(ख) यह लिखा जा चुका है कि रेल्वे व्यवसाय की संपत्ति तथा खर्चोंका ध्यान करके राज्य कर लगाना कठिन है। बहुत सी अमेरिकन रियासतें उनके हिस्सों तथा ऋण पत्रोंकी पूंजी देख कर उस पर राज्य कर लगाती हैं। जिस प्रकार ऋण पत्रोंकी आय व्याज कहाती है उसी प्रकार हिस्सोंकी आमदनी लाभ कहाती है। इस दशामें यदि ऋण पत्रों पर राज्य कर लगा दिया जाय तो उनका बाजारमें दाम गिर जायगा और हिस्सोंका दाम स्वयं ही चढ़ जायगा। यह कोई अच्छी घटना नहीं है। सबसे बड़ी कठिनता यह है कि ऋण पत्रोंके बाजारी मूल्यसे रेल्वे व्यवसायके वास्तविक लाभ तथा घाटेका पता नहीं चलता क्योंकि इनका मूल्य सट्टेके कारण नकली मूल्य होता है। यदि इनके हिस्सों तथा ऋणपत्रोंके वास्तविक मूल्य पर राज्यकर लगाया जावे तो हो सकता है कि यह व्यवसाय अपनी कमाईके अनुपातमें राज्य कर न देते हों। इस प्रकार स्पष्ट है कि कंपनीकी संपत्तिको राज्य करका आधार नहीं बनाया जा सकता।

पूंजी तथा हिस्सों को मानके रख कर के भी राज्यकर नहीं लग सकता

(२) <u>कंपनीके कारोबार तथा काम धन्धे पर राज्य कर लगाया जा सकता है।</u> रेल्वे आदि कंपनियोंके कारोबार तथा काम धन्धेको राज्य करका आधार बनाना ठीक नहीं है। क्योंकि यह

कंपनी के कारोबार पर राज्यकर

उनकी आयका ठीक मापक नहीं है। हो सकता है कि एक रेल्वे लाइनसे (कोयला आदि) कम दाम-का माल बहुत राशिमें जाता है जब कि दूसरी रेल्वे लाइनसे (रेशमी, कपड़ा, दवाई, सोना, चांदी आदि) बहुत दामका माल कम राशिमें जाता हो। ऐसी दशामें कारोबारसे आय कैसे मापी जा सकती है। कारोबारके कम होते हुए भी बहुमूल्य माल ले जाने वाली रेल्वे लाइनको अधिक लाभ हो सकता है और कारोबारके अधिक होते हुए भी कम मूल्यका माल अधिक राशिमें भी ले जाने वाली रेल्वे लाइनको बहुत कम लाभ हो सकता है अतः कारोबारको राज्य करका आधार बनाना ठीक नहीं है।

कम्पनी की आमदनी पर राज्यकर

(३) कम्पनीकी आमदनी पर राज्य कर लगाया जा सकता है:—आय कर सबसे उत्तम कर है इसमें सन्देह करना वृथा है। इस करके लगानेमें सबसे बड़ी कठिनता यह है कि कम्प-नियोंकी शुद्ध आयको कैसे जाना जावे? क्योंकि कंपनियाँ बीसों प्रकारके पुराने तथा नये खर्चोंको दिखा कर अपनी शुद्ध आयको छिपा लेती हैं। अशुद्ध या प्राप्त आय पर कर लगाना उचित नहीं है। क्योंकि इससे कंपनियां तबाह हो सकती हैं। जो कुछ भी हो, कंपनियों पर राज्य कर लगानेका उचित आधार उनको शुद्ध तथा वास्तविक आम-

दनी ही है। राज्यको कंपनियोंके हिसाब किताब-का ठीक ढंग पर निरीक्षण करना चाहिये और यदि कंपनीने किन्हीं स्थानोंमें अपेक्षासे अधिक खर्चा दिखाया हो या वास्तवमें अधिक खर्चा किया हो तो उसको इन खर्चोंको कम करनेके लिये राज्य को बाधित करना चाहिये। कठिनाइयोंके होते हुए भी शुद्ध आय ही राज्य करका उचित आधार है।

(४) विशेष विशेष व्यवसायों पर राज्य कर। बैंक, ट्रस्ट, प्राकृतिक एकाधिकारीय व्यवसाय तथा नागरिकके एकाधिकारीय व्यवसायों (Municipal monopalies) पर राज्यकर लगानेमें रेल्वेसे भिन्न तरीकेको अख्तियार करना चाहिये। बैंकों पर यदि राज्यकर लगाना हो तो उनके कारोबार पर ही राज्य• कर लगाना चाहिये क्योंकि इस काममें रेल्वेके सदृश खर्चोंका भाग बहुत अधिक नहीं है। बैंकों तथा ट्रस्टोंपर राज्य कर लगाते समय इस बातका ख्याल रखना चाहिये कि कहीं राज्यकर दो बार न लग जावे। बैंकोंके सदृश ही प्राकृतिक एकाधिकारीय (खान खोदना आदि) व्यवसायोंमें जिमींदारकी रायल्टी पर राज्यकर लगाना चाहिये। नागरिक एकाधिकारीय (पानीके नल बिजली की रोशनी, ट्रस्ट आदि आदि) व्यवसायोंपर रेल्वेके सदृश ही राज्य कर लगाना चाहिये।

विशेष विशेष व्यवसायों पर राज्यकर

द्विगुण कर बैंकों तथा ट्रस्टों पर न लगना चाहिये

III.

समिति करकी राशि या कर मात्राको किस प्रकारसे निश्चित किया जाय ?

समिति कर लगानेसे पूर्व राज्यको आमदनीके विचारसे भिन्न भिन्न कंपनियों तथा व्यवसायोंका वर्गीकरण कर लेना चाहिये। वर्गीकरणके हिसाबसे ही भिन्न भिन्न कंपनियोंकी आर्थिक स्थितिको देख कर उन पर राज्यकर लगाना चाहिये। जिस कंपनीकी आमदनी अधिक हो, उस पर राज्य कर अधिक अनुपातसे तथा जिस कंपनीकी आमदनी कम हो उस पर राज्य कर कम अनुपात से लगाना चाहिये। सारांश यह है कि राज्यकर लगानेमें क्रमवृद्धकर की नीतिका अवलम्बन करना चाहिये।

राज्य कर में क्रम वृद्धि की नीति

कंपनियों पर राज्य कर लगाते समय राज्यों-को अपनी ज़रूरतके अनुसार ही राज्यकर लगाना चाहिये और ज़रूरत होने पर भी दुर्बल कंपनियों पर राज्य कर कभी भी न लगाना चाहिये। यही कारण है कि १८८२ का ३½ प्रतिशतक व्यावसायिक कर भारतीय राज्यको भारतीय व्यवसायों परसे हटा देना चाहिये। क्योंकि इस करसे व्यावसायिक कार्योंकी ओर जनताकी रुचि घट

आवश्यकतानुसार राज्यका कर लगाना चाहिये परन्तु दुर्बल कंपनियों को कर से मुक्त करना चाहिये

रही है और दुर्बल व्यवसायोंकी जड़ खोखली होती जा रही है *

४—व्यापारीय तथा व्यावसायिककर

व्यापारीय तथा व्यावसायिक कर

व्यापार व्यवसायकी उन्नतिका ख्याल करके व्यापारीय तथा व्यावसायिक करका प्रयोग करना चाहिये। इस करके लगानेमें कराध्यक्षकी चतुरता तथा बुद्धिमत्ता उसी समय समझी जाती है जब कि कर व्ययियों पर समान रूपसे पड़े। आयात कर तथा व्यावसायिक करके विचारसे यह कर दो प्रकारसे लगाया जाता है अतः इस पर पृथक पृथक विचार करना ही उत्तम प्रतीत होता है।

आयात कर

(१) आयात करके लिये पदार्थों का चुनावः—किन किन पदार्थों पर आयातकर लगाना चाहिये? और किन किन पदार्थों पर आयात कर न लगाना चाहिये इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि यह अवश्यक नहीं है पदार्थोंकी संख्याके बढ़ानेसे आयातकर अवश्य ही बढ़ जावे। इग्लैण्डमें १८४२से १८६२ तक आयात करके लिये पदार्थों की संख्या प्रतिवर्ष घटायी गयी परन्तु इससे आयातकर पूर्वापेक्षासे भी अधिक बढ़ गया। दृष्टान्त और पर—

आयत कर में पदार्थोंकी संख्या

---

* महाशय सेलिगमेन रचित एसेस इन टेक्शेशन पृ०१४२–२२० (१९१८)

आदम का फाइनान्स (१९१८) पृ० ४४९–४४६।

वैजहाट् लिखित लवार्ड स्ट्रीट पृ० २१।

सन्	पदार्थोंकी संख्या	व्यापारीय करसे प्राप्त आय
		डालर्स
१८४१	११६३	२१८६८८४५
१८४५	१०५२	+
१८५१	+	२२३७३६६२
१८५३	४६६	+
१८६१	+	२३५१६८२१
१८६२	४४	२४०३६०००

इस प्रकार स्पष्ट है कि ११६३ से ४४ तक पदार्थोंकी संख्या कम करते हुए भी राज्य कर बढ़ ही गया। इससे यह परिणाम निकलता है कि व्यापारीय कर लगाते समय पदार्थोंके चुनाव-में चतुरताकी जरूरत है। प्रश्न उपस्थित होता है कि किस प्रकार पदार्थों पर व्यापारीयकर लगना चाहिये? इसके उत्तर देनेसे पूर्व इस पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है कि भिन्न भिन्न पदार्थों पर आयात कर लगानेका स्वदेशीय व्यवसायों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यदि किसी राज्यको स्वदेशीय व्यवसायोंकी उन्नतिका ध्यान हो तो उसको ऐसे पदार्थों पर आयातकर लगाना चाहिये जिनके कारखाने स्वदेशमें मौजूद हों और विदेशीय स्पर्धाके कारण ठीक ढंग पर न चलते हों। दृष्टान्तके तौर पर भारतीय सरकारको आयात कर

व्यापारीय कर किस प्रकार लगे

* आदमका फाइनान्स (१८६८) पृ० ४६७–४६८।

रुईके कपड़े, लोहेके सामान शक्कर आदि पर लगाना चाहिये क्योंकि इससे जहाँ सरकारको आयात करसे लाभ होगा वहां भारतीय कारखानों की नींव स्थिर हो जावेगी। परन्तु भारतीय सरकार ऐसा क्यों करेगी? इस महायुद्धमें उसने कुछ आयात कर रुईके वस्त्रों पर बढ़ाया है और इससे उसकी आय भी अधिक हुई है। परन्तु उसको या तो आयात कर घटाना पड़ेगा या भारतीय व्यवसायों पर व्यवसायिककर लगाना पड़ेगा, क्योंकि आयात कर लङ्काशायरके कारखानोंके मालिकोंको पसन्द नहीं है।

भारतमें आयात कर कहां लगे

प्रायः यह भी देखा गया है कि इंग्लैन्ड जैसे व्यावसायिक देश निर्भय होकर अन्य देशोंके पदार्थोंको अपने देशमें स्वतन्त्रता पूर्वक आने देते हैं। क्योंकि उनके स्वदेशीय व्यवसाय इतने उन्नत हो चुके हैं कि उनको स्वदेशीय व्यवसायोंकी स्पर्धासे कुछ भी भय नहीं है। इस दशामें ऐसे देशोंके राज्योंको आयात कर उन पदार्थों पर लगाना चाहिये जिनका प्रयोग सारी जनता करती हो। और जो वहां जल वायु तथा भौगोलिक परिस्थितिके कारण उत्पन्न न हो सकते हों। उदाहरणतः इङ्गलैण्डमें चाय, काफी; तथा गरम मसाले आदि ऊष्ण कटिबन्धके पदार्थ उत्पन्न नहीं होते हैं और बाहरसे आते हैं अतः इन पर आयात कर लगाना चाहिये। भारतमें आंग्ल

स्वतन्त्र व्यापार

भारतमें सरकारकी नीति

राज्यकी नीति भारतीय व्यवसायोंकी उन्नतिमें नहीं है। आंग्ल भारतको कृषि प्रधान देश बनाना चाहते हैं। यही कारण है कि आयात करके लिये उन्होंने शराब, शक्कर, सोना, चांदी आदि पदार्थ ही चुने हैं। विदेशीय वस्त्रों पर भी आयात कर लगता है परन्तु वह बहुत थोड़ा है। इस महायुद्धके समयमें इस पर भी कुछ आयात कर बढ़ा दिया गया है परन्तु देखें यह कब तक बढ़ा रहता है।

स्वदेशीय व्यावसायिक कर तथा आयात कर

आयात कर लगाते समय स्वदेशके व्यावसायिक करोंका भी निरीक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है। जिन जिन पदार्थोंके लिये स्वदेशीय व्यवसायों पर व्यावसायिक कर हो उन उन पदार्थों पर आयात कर अवश्य ही लगना चाहिये। यदि कोई राज्य भूलसे ऐसा न करे तो उसका प्रभाव यह होगा कि बहुतसे पदार्थोंके कारखाने टूट जावेंगे। 'आयात कर' एक प्रकारकी महाशक्ति है। इस शक्तिको किसी विदेशीय जातिके हाथमें देना ठीक नहीं है। संसारकी अन्य सभ्य जातियोंने तो इस शक्तिको अपनेही हाथमें रक्खा हुआ है। देखें, भारत कब जागता है।

व्यावसायिक कर सार्वत्रिक प्रयोगमें आनेवाले पदार्थों पर लगना चाहिये

(२) व्यावसायिक करके लिये पदार्थोंका चुनना:—प्रश्न उठता है कि व्यावसायिक करके लिये किन किन पदार्थोंको चुना जावे? व्यावसायिक करके लिये उन्हीं पदार्थोंको चुनना चा-

हिये जिनका प्रयोग सारेके सारे मनुष्य करते हों। इस नियमके निम्नलिखित तीन अपवाद हैं जिनको कि कभी न भुलाना चाहिये।

विनियम तथा व्यापारके साधनोंको राज्य कर से मुक्त करना चाहिये

(i) विनिमय तथा व्यापारके साधनों पर व्यावसायिक कर न लगना चाहिये। जहां तक हो सके इस करको व्यावसायिक पदार्थों तक ही परिमित रखना चाहिये। जिन देशोंमें छोटेसे छोटे लेन देनमें बैंकों, साहुकारों तथा दूकानदारोंको अपनी हुण्डियों तथा चेकों पर स्टाम्प लगाना पड़ता है, उन देशोंमें यदि नक़दीका व्यवहार बढ़ जावे और साखका प्रयोग घट जावे तो आश्चर्य करना वृथा है। जहां तक हो सके राज्यको ऐसे कर न लगाने चाहिये। भारतमें २०)से ऊपर धनकी हुण्डी तथा रसीद देनेमें एक आनेका स्टाम्प लगाना पड़ता है। यह न होना चाहिये। क्योंकि ऐसे राज्य नियमों तथा राज्य करोंसे क्या लाभ है जो कि देशमें साखको घटावें।

दरिद्रोंके जीवनोपयोगी पदार्थोंको राज्य करसे मुक्त करना चाहिये

(ii) कराध्यक्ष तथा आय व्यय सचिवको उन पदार्थोंपर राज्य कर कभी भी न लगाना चाहिये जो कि श्रमियों तथा दरिद्र जनोंके जीवनोपयोगी तथा जीवन निर्वाहके होवें। दृष्टान्त तौर पर भारतवर्षमें नमक पर कर लगा हुआ है और जंगलों पर राजकीय प्रभुत्व हो जानेसे एक प्रकारसे लकड़ी पर भी राजकर है। इससे भारतीय श्रमियों तथा किसानों को बहुत ही तकलीफ़ है। आय व्यय

शास्त्रके सिद्धान्तोंके अनुसार इन करोंका हटाना नितान्त आवश्यक है।

(iii) ऐसे पदार्थों पर भी राज्यकर न लगाना चाहिये जिन पर कि करका लगाना जनता के धार्मिक विचारोंके अनुकूल न होवे। भारतीय जनता नमकके राज्य करको पसन्द नहीं करती है। क्योंकि यह कर भारतीयोंके विचार तथा स्वभावके प्रतिकूल है। जहां तक हो सके राज्य-को मादक द्रव्योंके प्रयोगको घटानेके लिये व्याव-सायिक करका प्रयोग करना चाहिये। भोग विलासके पदार्थों पर व्यावसायिक करका लगना उचित ही है। चाय, काफी, शराब आदि पर यदि यह कर लगा दिया जाय तो इस-में भारतीयोंका कुछ भी नुकसान नहीं है।

भारतमें नमक कर

प्रायः व्यापारीय तथा व्यावसायिक करोंका भार निर्धन किसानों तथा श्रमियों ही पर जाकर पड़ता है। अमीरों तथा मध्यम श्रेणीके लोगोंको इन करोंका कुछ भी भार अनुभव नहीं करना पड़ता। विचारे किसान तथा श्रमी इन करोंके कारण बहुत तकलीफमें हैं। अतः स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि किस युक्तिसे ऐसे कर न्याय-युक्त तथा समान कहे जा सकते हैं? इसका उत्तर यही है कि योरुपीय देशोंके लोग समृद्ध हैं वहां दरिद्र श्रमियोंकी दशा भी भारतके अच्छेसे अच्छे मज़दूरोंसे अच्छी है। अतः वहां वे लोग इसको

भारमें दरिद्रों पर करका भार

विशेष कर अन्याययुक्त नहीं समझते परन्तु भारतकी दशा विचित्र है। यहां तो दरिद्रताकी पराकाष्ठा है। नमकका दो पैसा दाम चढ़ते ही नमकको मांगमें फरक पड़ जाता है और लोग नमकका खाना कम कर देते हैं। इसलिये ऐसे दरिद्र देशमें तो नमक लकड़ी आदिके कर भयंकर तौर पर असमान हैं और इसी लिये अन्याययुक्त हैं।*

---

* लीयोनार्ड एलस्टन लिखित एलिमन्ट्स आफ टेक्शेसन (१९१०) परि० ३।

हैनरी कार्टर आदमरचित फाइनान्स पृ० ४६७—४६६।

वी० जी० केल लिखित इंडियन इकानामिक्स। (१९१८) पृ० ४३८-४६०।

अष्टम परिच्छेद ।

भारतवर्षमें राज्यकी अप्रत्यक्ष आय

भारतमें भौमिक कर

भारतमें भूमियों पर प्रभुत्व सरकारका नहीं है इस पर आगे चलकर प्रकाश डाला जायगा। यह होते हुए भी सरकार भारतीय भूमि पर अपनाही स्वत्व प्रगट करती है और उससे प्राप्त आयको अप्रत्यक्ष आयमें न रख कर प्रत्यक्ष आयमें ही रखती हैं। वास्तवमें भौमिक लगानको भौमिक कर ही समझना चाहिये। १९१८-१९ के बजटमें भौमिक कर २२ ३५८ ५०० पाउन्डज़ था। हम कर सम्भारके परिच्छेदमें इस विषय पर प्रकाश डाल चुके हैं कि यह कर बहुत ही अधिक है। उसकी अधिकताका परिणाम यह हुआ हैं कि गरीब किसान ऋणी हो गये हैं और उन्होंने भूमियोंको उन्नत करना छोड़ दिया है। दुर्भिक्षोंकी वृद्धिका भी मुख्य कारण भौमिक करका अधिक होना ही है।

भारतमें व्यापारीय तथा व्यावसायिक कर

भौमिक करके अनन्तर राज्यको अप्रत्यक्ष आय व्यापारीय तथा व्यावसायिक करसे होता है। फ्रान्स जर्मनी आदिमें व्यापारीय कर तथा व्यावसायिक करके द्वारा राज्यको बहुत ही अधिक धन प्राप्त होता है। परन्तु भारत की दशा विचित्र है। भारतमें उत्तरदायी राज्य नहीं है। भारतको दूसरेके हितोंके अनुसार अपनी आर्थिक

नीति रखनी पड़ती है। विदेशसे आनेवाले व्यावसायिक पदार्थों पर यदि भारी सामुद्रिक कर लगाया जाता और स्वदेशीय व्यवसायोंको राज्य की ओरसे सहायता दी जाती तो भारतकी आर्थिक दशा सुधर जाती और भारतके आयके स्थान बढ़ जाते। परन्तु होता क्या है। विदेशसे आनेवाले संपूर्ण व्यावसायिक पदार्थ (६ या ७ पदार्थोंको छोड़ करके जिन पर बहुत ही थोड़ा सा आयात कर है) भारतमें स्वतन्त्र तौर पर आते हैं और भारतीय व्यवसायोंको धक्का पहुंचाते हैं। विचित्रता तो यह है कि भारत में वस्त्रादि व्यवसायों पर सरकार ने ३॥) सैकड़े का व्यावसायिक इस लिये लगाया है चूंकि इंग्लैंडके कपड़ेके माल पर भी सरकारको कुछ आयात कर लगाना पड़ा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारतके कपड़ेके कारखानोंको बड़ा भारी धक्का पहुँचा है और विदेशीय व्यवसायोंका मुकाबला करनेमें असमर्थ होगये हैं। १६१८—१६में राज्यको १० ३६३९०० पाउन्डज व्यावसायिक कर तथा १०७१४५०० व्यापारीय कर प्राप्त हुआ था। जर्मनी आदि योरूपीय देशोंको इससे कई गुणा अधिक धन एक मात्र व्यापारीय करसे ही प्राप्त होता है। बुद्धिमान् विचारकोंका कथन है कि भारत को भी व्यापारीय आयात करके द्वारा ही अधिक आय प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये। १६१६में

महायुद्धके कारण राज्यका खर्चा बढ़ गया और यही कारण है कि शक्कर, जूट तथा रूईके कपड़ों पर आयात तथा निर्यातकर बढ़ा दिया गया। लङ्काशायरके कारखानेके कपड़ों पर ३½ से ११ प्रतिशतक आयात कर लगने ही लंकाशायर वालोंने शोर मचा दिया और भारतीय व्यवसायों पर भी ३½% व्यावसायिक कर लगानेका बल दिया। उनके संपूर्ण विवादों तथा विचारोंको पढ़नेसे जो कुछ मालूम पड़ता है वह यही है कि आंग्ल राज्यमें भारतके अन्दर स्वदेशीय व्यवसायों की उन्नति होनी कितनी कठिन है।

भारतीय व्यवसायों पर आंग्ल राज्यमें व्यावसायिक कर लगाया है। इससे भारतीय व्यवसायोंकी उन्नति किस प्रकार रुक गयी है इसपर प्रकाश डाला जा चुका है। शोकसे कहना पड़ता है कि भारतीय सरकारको प्रतिवर्ष व्यावसायिक करसे अधिक २ आमदनी होती जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि व्यावसायिक करके लेनेमें सख्तीसे काम लिया जाता है और व्यावसायिक करकी मात्रा भी पूर्वापेक्षा बढ़ा दी गयी है। सबसे बड़े दुःख की बात तो यह है कि हमारे इस अभागे

भारतमें राज्यकी मादक द्रव्योंसे आय और उसकी वार्षिक वृद्धि

देशमें मादक द्रव्योंका प्रयोग दिन परद बढ़ रहा है वायसरायकी काउन्सिलमें महाशय शर्माने एक प्रस्ताव रखा कि सरकारको अपनी यह नीति बना लेना चाहिये कि वह मादक द्रव्योंके प्रयोग-

को न बढ़ने देगी। परन्तु यह प्रस्ताव न पास किया गया। इस सारी घटनासे जो कुछ परिणाम निकलता है वह यही है कि सरकार मादक द्रव्यों-के प्रयोगको भारतमें नहीं रोकना चाहती है। सरकारको १८१८—१६ में एक मात्र अफीमसे ही ३१८१८०० पाउण्डज़ की आय थी। आश्चर्य तो यह है कि ५ साल पहिले सरकारको अफीमसे केवल १६१४८५८ पाउन्डज़की ही आय थी। अर्थात् ५ सालोंमें लोगोंके अन्दर प्रति वर्ष १५७६-६२२ पाउन्डज़की अफीम और खपने लगी। इससे बढ़ करके हमारे लिये और क्या दुःख-दायक घटना हो सकती है। अल्कोहल तथा सिगरैटका प्रयोग भी इसी प्रकार भारतवर्षमें बढ़ा है।

भारतमें नमक कर

आय व्यय शास्त्रका यह मुख्य सिद्धान्त है कि गरीबोंके जीवनापयोगी पदार्थ पर राज्य कर न लगना चाहिये। जिन पदार्थों पर राज्य कर का लगना लोगोंको न पसन्द होवे उन पर भी राज्य कर न लगना चाहिये। परन्तु भारतमें राज्यने इन दोनों बातोंका ही ख्याल नहीं किया है। नमक करमें उपरिलिखित दोनोंही बातें हैं। नमक करको भारतके लोग बुरा समझते हैं और यह गरीबोंके लिये एक अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। शोकसे कहना पड़ता है कि सरकार नमक करसे खूब आमदनी प्राप्त करती है। १८८२ में नमकके

प्रतिमन पर सरकारने २ रुपया कर लगाया था। १८०३ में बहुत कहने सुनने पर सरकारने नमक करको घटाया और प्रतिमन पर एक ही रुपया कर रहने दिया। १८१६ में सरकारने नमक पर कर बढ़ा दिया और प्रतिमन १ रुपयेके स्थान १½ रुपयाका राज्य कर दिया। १८१८—१९ में सरकारको नमकसे आनुमानिक आय ३४५२२०० पाउन्ड्ज थी।

भारतमें आय कर

भारतमें लोग आंगलराज्यके अन्दर बहुतही गरीब होगये हैं। देशका साराका सारा व्यापार व्यवसाय विदेशियोंके हाथमें चलाया गया है। लोग अमीर हो ही कैसे सकते हैं। यही कारण है कि भारतमें आय करसे राज्यको बहुत आमदनी कभी भी नहीं हुई है। १८१६ से पूर्वपूर्व राज्यको आय कर से ३ करोड़ रुपयोंसे अधिक आय न थी। १८१६ में आय करको क्रमवृद्ध कर कर दिया गया और उसकी मात्रा भी बढ़ा दी गयी है। १८१६-१७ की बजट्में आयकर की मात्रा इस प्रकार निश्चित की गयी है।

रुपये	आयकर की मात्रा—
५००० रुपयों की आय से ९९९९ रु० की आयतक	छः पाई प्रति रुपया या ७½ पैन्स प्रति पाउन्ड आयकर
१०००० „ २४९९९तक	९ पाई प्रति रुपया या १०½ पैन्स प्रति पाउन्ड आयकर

रुपये	आयकरकी मात्रा—
२५००० से आगे ५०००० तक	१२ पाई प्रति रुपया १ शि० ३ पैन्स प्रति-पाउन्ड पर आय कर
५०००० से १ लाख रुपयों की आय तक	१ आना प्रति रुपया
१ लाख से १½ लाख तक	१½ " "

५०००० रुपयोंके अगले ५०००० रुपयों पर २आना प्रति रुपया क्रमवृद्ध आय कर।

एक लाख रुपयोंके अगले ५०००० रुपयों पर २½ आना प्रति रुपया क्रमवृद्ध आय कर।

२½ लाखसे अगले अधिक रुपयों पर ३ आनाप्रति रुपया क्रमवृद्ध आय कर।

अभी तक यह आय कर महायुद्धके कारण ही समझा जाता है। परन्तु यह महायुद्धके बाद भी प्रचलित रहेगा क्योंकि धनाढ्यों पर राज्य कर अधिक लगाना ही चाहिये।*

———

* वी० जे० काले। इनडियन इकानामिक्‌स (१९१८). पृ० ४८६ ४४८। ४५७—४६५।

लिओनार्ड एलस्टन। ऐलिमेन्ट्‌स आफ इडिअन टेक्शेसन(१९१०) अ० २—३.

इंपीरियल गजेटिअर आफ इंडिआ भाग २

आर० सी० दत्त लिखित इंडिआ अण्डर बृटिश रूल एण्ड इंडिआ इन्‌ दि विक्टोरियन एज

गोखलेज स्पीचिअस—एन्नुअल फाइनान्सियल एसटेटमेण्ट।

द्वितीय खण्ड ।

कल्पित आय ।

राज्य जातीय ऋण तथा सरकारी नोटोंके द्वारा जो धन ग्रहण करता है वह कल्पित आय के नामसे पुकारा जाता है। कल्पित आयका आधार राष्ट्रीय साख (public credit) ही है। विपत्तिके समयमें ही राज्य इसका सहारा लेते हैं। इसका देशके व्यापार व्यवसाय पर बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ता है। यह बहुत ही महत्व-पूर्ण विषय है। यही कारण है कि अब इस पर विस्तृत तौर पर प्रकाश डाला जायगा।

———

प्रथम परिच्छेद।

राजकीय साख।

राष्ट्रीय आयव्यय शास्त्रमें राजकीय साख *का एक महत्वपूर्ण स्थान है। राजकीय साखका प्रयोग राज्योंको विपत्तिमें पड़कर करना पड़ता है। जो राज्य आमदनीके लिये साखका प्रयोग करते हैं और ऋणके व्याजको ऋणके धनसे ही अदा करते हैं वह बहुत बुरा काम करते हैं। क्योंकि इससे आर्थिक दुर्घटनाओंका उत्पन्न हो जाना बहुत ही अधिक सम्भव है।

राजकीय साख

१—राजकीय ऋणपत्रका व्यापारीय कागज़ बन जाना।

राज्य राष्ट्रीय साखसे धनको ग्रहण करता है। इसीको इस प्रकार भी प्रगट किया जा सकता है कि राज्य जातीय ऋणको लेता है। साधारण साहूकारों तथा बैंकर्ज़के सदृश ही राज्य अपना ऋण पत्र निकालता है। इसी ऋणपत्रमें सम्पूर्ण

जातीय ऋण

* राजकीय साखके सदृश ही राष्ट्रीय साख तथा जातीय साख शब्द का भी हमने स्वेच्छापूर्वक प्रयोग किया है। आर्थिक स्वराज्य-युक्त उत्तरदायी राज्यवाली जातियोंमें तीनों ही शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। भारतमें राजकीय साखका ही एकमात्र प्रयोग होना चाहिये क्योंकि भारतीय राज्य भारतीय जनताका अंग नहीं है (लेखक)।

शर्तें लिखी होती हैं। ब्याज, कीमत, समय आदि का लेख ऋणपत्रमें स्पष्ट तौरपर कर दिया जाता है। राष्ट्रीय साख तथा वैयक्तिक साखमें कोई विशेष भेद न होते हुए भी दोनोंका समय तथा स्वरूप भिन्न २ होता है। वैयक्तिक संव्यवहार के सदृश ही राजकीय ऋणपत्रका संव्यवहार होने पर भी यह स्पष्ट हो है कि एक जहां प्रभुत्व शक्ति संपन्न है वहां दूसरेको एक मात्र वैयक्तिक संपत्ति सम्बन्धी अधिकार ही प्राप्त होते हैं। सारांश यह है कि राजकीय ऋणपत्र की सुरक्षितता वैयक्तिक व्यापारीय ऋणपत्र की सुरक्षिततासे सर्वथा भिन्न है। वैयक्तिक ऋण पत्र निक्षेपके धन, नोट् या हुण्डीके सदृश होता है क्योंकि यदि कोई व्यक्ति उसका रुपया न दे तो उत्तमर्ण उसकी संपत्ति छीन सकता है। राजकीय ऋणपत्रमें ऐसी कोई भी बात नहीं है। यह क्यों? यह इसी-लिये कि राज्य स्वयं प्रभुत्व शक्ति सपन्न है। यदि वह जातीय ऋणका रुपया न अदा करे तो कोई उस का क्या बिगाड़ सकता है। यह होते हुए भी राज्य आजकल राष्ट्रीयसाखका नाश नहीं करते हैं क्योंकि इससे उनका जनता पर दबदबा कम हो जाता है। इस दबदबेका महत्व इसीसे जाना जा सकता है कि जो राज्य प्रबल होते हैं वह अधिकसे अधिक धन उधार पर ले सकते हैं और जो राज्य दुर्बल होते हैं उनको अधिक धन

वैयक्तिक साख तथा राष्ट्रीय साखमें भेद

सिक्युरिटीमें भेद

उधार पर नहीं मिलता है। यही कारण है कि सेना जहाज आदि सब कुछ नष्ट हो जाने पर भी राज्य अपने प्रभावको नष्ट नहीं होने देते हैं। राजकीय ऋणको लेते समय आयव्यय सचिव बाजारकी दशाको देख लेता है और उस दशाके अनुसार ही जनतासे धनको खींचनेका प्रयत्न करता है।**

राज्यका अपने भावको बचाना

———o———

२–राजकीय ऋणका व्यावसायिक प्रभाव

जातिके पास पूंजी परिमित है। राज्य द्वारा उस पूंजीके खींचे जाने पर जनताकी उत्पादक शक्तिको धक्का पहुंचना स्वाभाविक ही है। क्योंकि यदि राज्य उस पूंजीको युद्धादिक व्यावसायिक कामोंके लिये न खींच लेता तो बंकोंके द्वारा उसका व्यावसायिक तथा व्यापारीय कामोंमें लगना आवश्यक ही था। इससे जातिकी उत्पादक शक्ति कैसे बढ़ती है? इसी विषयको स्पष्ट करनेके लिये अब हम कुछ एक घटनाओंको देते हैं।

जातीय ऋणमे देशकी उत्पादक शक्ति घटती है

(क) व्याजकी बाजारी दर पर लिया हुआ जातीय ऋण:—व्याजकी बाजारी दर पर लिया हुआ जातीय ऋण स्वदेशीय व्यवसायों पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालता है। क्योंकि ऐसे समयमें राज्यको भोग विलास जैसे अनुत्पादक कार्योंमें लगी हुई पूंजी जातीय ऋणके तौर पर मिल जाती है। व्याजके बाजारी भाव पर जातीय ऋण लेनेसे

व्याजकी बाजारीदर पर लिया हुआ राज्य ऋण हानिकर नहीं होता

* महाशय एडम रचित फाइनान्स (१८९८). पृ. ५१७–५२०.

और बैंकों तथा व्यवसायोंके साथ स्पर्धा करनेसे जातिकी उत्पादक शक्ति पर कुछ भी प्रभाव नहीं पडता है। यहीं पर बस नहीं, ऐसा जातीय ऋण बहुत लाभदायक होता है। क्योंकि इससे जनतामें मितव्ययताकी आदत बढ़ती है। परन्तु एक बात यहां पर भुलाना न चाहिये और वह यह है कि यह लाभ उन्हीं देशोंको तथा उन्हीं जातियोंको होता है जिनमें वैयक्तिक साख तथा बैंक बहुत कम होते हैं और जिनमें ताल्लुकेदार लोग रण्डियों तथा शराबमें धन फूंकते हैं।

राज्य ऋणका मुद्रा बाजार पर प्रभाव

आम तौर पर कहा जाता है कि व्याजको बाजारी दर पर जातीय ऋण लेते हुए भी जाति की उत्पादक शक्तिको धक्का पहुंचता है। क्योंकि जातीय ऋणके लेते ही देशमें पूंजीकी मांग अधिक हो जाती है और इस प्रकार स्वयं ही उसका मूल्य चढ़ जाता है और व्याज की दर चढ़ जाती है। ठीक है। परन्तु यह घटना तभी उपस्थित होती है जब कि राज्य व्यावसायिक कार्योंके लिये धन लेता है। इसी बातको विचार कर तथा कुछ एक अन्य लाभोंको सोच कर आय व्यय शास्त्रज्ञोंका मत है कि व्यावसायिक कामोंको प्रायः आर्थिक दुर्घटनाके समयमें ही अपने हाथमें ले लेनेका यत्न करना चाहिये। प्रुशियन रेलवेको राज्यने ऐसे ही अवसर पर खरीद करके खूब लाभ उठाया था।

ब्याजकी बाजारी दरपर युद्धादिके लिये भी लिया हुआ जातीय ऋण जातिकी उत्पादक शक्ति पर बहुत बुरा प्रभाव नहीं डालता है। क्योंकि यह प्रायः देखा गया है कि युद्धके समयमें जनतामें नये २ व्यावसायिक कामोंके लिये जोश कम हो जाता है और उनके पास पूंजी सुलभ तथा निरर्थक पड़ी रहती है। यदि राज्य ठीक ढंग पर युद्ध कर रहा हो तो उसको जनता अपनी पूँजी शीघ्र ही दे देती है। सारांश यह है कि ब्याजकी बाजारी दर पर लिया हुआ जातीय ऋण देशकी उत्पादक शक्ति पर कुछ भी बुरा प्रभाव नहीं डालता है।

युद्धके लिये राज्य ऋण

(ख) बाजारी दर से अधिक ब्याज पर लिया हुआ जातीय ऋण:—बहुत बार राज्य अधिक धन की जरूरत होने पर बाजारी दरसे अधिक ब्याज पर जातीयऋण लेना आरम्भ करते हैं। जैसा कि भारतीय राज्यने इस महायुद्धमें किया है। परन्तु इस प्रकारके जातीयऋणका देशके व्यवसायों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। दृष्टान्त तौर पर—

बाजारी दरसे अधिक ब्याज पर लिये हुए राज्य ऋण का दोष

(१) यदि लोग जातीयऋणके अधिक ब्याजको देख करके अधिक मितव्ययी हो जावें, अपने घरेलू खर्चे कम कर देवें और भिन्न २ प्रकारके पदार्थोंका खाना छोड़ देवें तो उन २ पदार्थोंके व्यवसायोंको धक्का पहुँचना स्वाभाविक ही है जिन २ पदार्थोंका प्रयोग जनतामें कम हो जावे। इस महायुद्धमें

उत्पादक शक्तिका कम होना।

शराब पीना बन्द करना

राज्योंने जनतामें शराबका प्रयोग इसीलिये रोक दिया कि यहाँसे जनताका जो रुपया बचे वह राज्यको मिल जावे। इससे शराबके कारखानोंको धक्का पहुँचा ही है। इन कारखानोंके बन्द हो जानेसे जो आदमी बेकार हो गये उनको सेनामें नौकरी दे दी गई। आधीन राज्योंमें तो राज्य प्रायः देशके अन्दर रेलोंके द्वारा इधर उधर सामान भेजना बन्द करके कई देशोंमें दुर्भिक्ष डालते हैं और कई देशोंमें अनाजको सस्ता कर देते हैं। जहाँ अनाज सस्ता होता है वहाँसे राज्य अनाजको खरीद लेते हैं और जहाँ दुर्भिक्ष होता है वहाँसे लड़ाईके लिये आदमियोंको प्राप्त कर लेते हैं। यह काम कितना बुरा है इस पर अधिक लिखना वृथा है। आर्थिक स्वराज्य तथा उत्तरदायी राज्यका प्राप्त किये बिना कोई भी देश तथा कोई भी जाति सुखी नहीं हो सकती है।

राज्योंका दुर्भिक्षको बढ़ाना

(२) बाजारी दरसे अधिक व्याज पर जातीय ऋण लेते ही अल्प व्यवसायोंका काम बन्द हो जाता है और राज्यको उन व्यवसायोंकी चलत् पूँजी मिल जाती है। यदि राज्य व्याजकी मात्रा बहुत ही अधिक बढ़ा देवें तो यह व्यवसाय टूट जाते हैं। इस प्रकारका जातीयऋण बहुत ही हानिकारक होता है। भारतमें बड़े २ व्यवसाय तथा कारखानें बहुत ही कम हैं। कहीं २ पर छोटे २ व्यवसाय तथा कारखानें ही मौजूद हैं। इस महा-

अल्प व्यवसायोंका टूटना

युद्धमें जातीयऋणके कारण उनको बहुत बड़ा धक्का पहुँचा होगा।

(३) बाजारी दरसे अधिक व्याज पर जातीय ऋण लेनेसे जनतामें व्यवसायिक कामोंकी ओरसे रुचि कम हो जाती है। पूँजीपति लोग अपनी पूँजीको व्यवसायोंमें न लगा करके जातीयऋणमें लगा देते हैं और घर बैठे ही लाभ उठाते हैं। इससे जातिमें यदि व्यावसायिक कामोंके लिये उत्साह तथा साहस कम हो जावे इस पर आश्चर्य करना वृथा है। इस प्रकारके जातीयऋण तो भारतकी जड़ें खोखली कर रहे हैं, भारतको कृषिकी ओर झुका रहे हैं और व्यावसायिक कामोंके लिये उत्साह तथा साहसको (जनताके अन्दर) घटा रहे हैं।

व्यावसायिक कामोंकी ओर रुचिका घटना

(ग) बाजारी दरसे बहुत ही अधिक व्याज पर लिया हुआ जातीयऋणः—बाजारी दरसे बहुत ही अधिक अधिक व्याज पर जातीय ऋण लेनेसे जातीय व्यवसायोंको बहुत ही धक्का पहुँचता है। छोटे २ व्यवसाय टूट जाते हैं और बाजारमें सट्टा बढ़ जाता है। युद्धकालमें पदार्थोंकी उपलब्धि कम होनेसे पदार्थोंकी कीमतें चढ़ जाती हैं। इससे पुराने व्यवसायों तथा कारखानोंको बहुत ही लाभ होवेगा और वह इस लाभको उत्पादक कामोंमें न लगा करके जातीय ऋणमें लगा देवेंगे। बिचारे श्रमी तथा दरिद्र लोग भूखे मरेंगे और

जातीय व्यवसायोंका टूटना

महँगा होना

व्यवसायपति लोग इसका लाभ उठावेंगे। यही कारण है कि राज्योंको जातीयऋणका प्रयोग बहुत सावधानीसे करना चाहिये। राष्ट्रीय साखरूपी महाशक्तिके प्रयागमें राज्योंको बाधित करना चाहिये। अन्य आर्थिक कामोंके सदृश ही इस पर भी जनताका ही प्रभुत्व होना चाहिये। सारांश यह है कि आर्थिक स्वराज्य सब उन्नतियोंका मूल्य है। जो जातियाँ बिना इसको प्राप्त किये व्यवसाय व्यापार प्रधान बनना चाहती हैं वह एक प्रकारसे बालू पर महल बनाती हैं। *

जनताका नियन्त्रणकी ज़रूरत

———o———

३–राज्योंको राजकीय साखका प्रयोग कब करना चाहिये ?

राजकीय साखके सहारे राज्य जातीयऋण किस प्रकार लेते हैं इस पर प्रकाश डाला जा चुका है। यह प्रायः देखा गया है कि ऋण लेनेके अनन्तर जनता पर राज्यकर और भी अधिक बढ़ा दिया जाता है। इस महायुद्धकी समाप्ति पर भारतीय सरकारने अधिक लाभके बहाने जो नया राज्यकर लगाया इसका भी रहस्य इसीमें है। यही कारण है कि १८वीं सदीसे ले करके अब तक किसी भी लेखकने जातीयऋणकी बहुत प्रशंसा नहीं की है। जातीयऋणको बहुत बुरा भी

जातीय ऋण और राज्य करकी वृद्धि

* आदम लिखित फाइनान्स (१८६८) पृ० ५२०—५२६।

कहना बहुत ही कठिन है। क्योंकि जातिसे धन प्राप्त करनेकी बहुतसी विधियोंमेंसे एक यह भी विधि है। यदि राज्यको धनकी जरूरत न हो तब तो उसके लिये राज्यकर या जातीयऋण लेना दोनों ही बुरा है। परन्तु यदि किसी राज्यको धनकी विशेष जरूरत हो तो वह चाहे कर द्वारा धन प्राप्त करे और चाहे जातीय ऋणके द्वारा। किस समय किसका सहारा लेना चाहिये यह भिन्न २ अवस्थाओं पर निर्भर करता है।

जातीयऋण लेनेकी तीन अवस्थायें

आजकल निम्नलिखित अवस्थाओंमें पड़ कर राज्य जातीय ऋण लेते हैं—

(१) किसी विशेष कारणसे पूरे तौरपर आनुमानिक आमदनीका धन न मिले।

(२) युद्धादि विपत्तिमें पड़करके धन ग्रहण करना।

(३) व्यापार व्यवसायसम्बन्धी कार्योंके लिये धन ग्रहण करना।

आर्थिक दुर्भिक्ष

(१) आर्थिक दुर्भिक्ष आदि अनेक कारणोंसे बहुत बार राज्यका व्यय आमदनीसे बढ़ जाता है और उसकी आनुमानिक आमदनी भी नहीं प्राप्त होती है। ऐसे अवसर पर निम्नलिखित तीन कारणोंसे जातीयऋणका लेना ही उचित है।

(I) आर्थिक दुर्घटनाओंके कालमें राज्यको जहाँतक हो सके शान्तिसे ही संपूर्ण काम करने

चाहिये। राज्यकर द्वारा धन प्राप्त करनेमें बहुतसे झमेले होते हैं जिनका बजटके प्रकरणमें उल्लेख किया जा चुका है। ऐसी हालतमें कुछ समयके लिये जातीयऋणका ले लेना ही अच्छा है।

आर्थिक दुर्घटनाके समयमें जातीयऋण लेना उचित है।

(II) आजकल राज्य व्ययसे अधिक आय प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करते हैं। क्योंकि इससे प्रति वर्ष अधिक धन बच सकता है। यह कोई अच्छी घटना नहीं है। उत्तरदायी राज्योंमें यह बहुत ही हानिकर समझा जाता है। क्योंकि इससे राज्यकी बेवकूफी टपकती है और जनताको बिना सोचे बिचारे बजट पास करनेकी आदत पड़ जाती है।

राज्यका व्ययसे अधिक धन प्राप्त करना बुरा है।

(III) सामयिक या क्षणिक जातीयऋण लेनेका तीसरा कारण यह है कि राज्यकी आमदनी दुर्घटनाके समयमें कुछ समयके लिये कम हो सकती है जो कि कुछ ही समयके बाद अपने आप पुनः बढ़ सकती है। इस दशामें जातीयऋणमें जो काम निकल सकता है वह राज्यकरसे नहीं। नवीन राज्यकर लगानेके लिये और घटानेके लिये नवीन नियमोंको बनाना पड़ता है। राज्यनियम बनाये बिना ही जातीयऋणके द्वारा आर्थिक विपत्तिके समयमें राज्य धन ले सकते हैं और पुनः उस ऋणको उतार सकते हैं। प्रति वर्ष ऐसी घटनायें

क्षणिक जातीयऋणका मुख्य कारण।

न उत्पन्न हुआ करें, इसके लिये राज्यकर-का लचीला होना आवश्यक है। राज्यको अपने हाथमें कुछ एक ऐसे कर-प्राप्तिके स्थान रखने चाहिये जहां कि वह राज्य-कर स्वेच्छा-नुसार घटा बढ़ा सके। दृष्टान्त तौर पर यदि राज्य आयात पदार्थोंके ऊपर कर लगानेमें पूर्ण तौर पर स्वतन्त्र हो तो वह जरूरतके अनुसार राज्य-करको घटा बढ़ा कर अपनी आयको घटा बढ़ा सकता है।

(२) विपत्तिके समयमें धनका ग्रहण करना:— युद्ध, शत्रुका आक्रमण आदि भयंकर विपत्काल-में राज्यको सहसा ही अनन्त धनकी जरूरत हो जाती है। ऐसी हालतमें दो कारणोंसे राज्यकर-की अपेक्षा राज्यऋण लेना ही उचित है।

विपत्तिके समयमें राज्यका ऋण लेना उचित है।

(1) करके द्वारा राज्यको यदि सहसा ही धन न मिल सकता हो और नवीन करका फल कुछ वर्षोंके बाद प्रगट होता हो तो ऐसे समय-में राज्यका जातीय ऋण लेना ही उचित है। यह प्रायः देखा गया है कि नवीन राज्यकर अपना फल बहुत देर बाद प्रकट करते हैं। दृष्टान्त तौर पर १८१२ के अमेरिकन राज्य-करका फल १८१६ में जाकर निकला। तीन वर्षों तक इस नवीन करसे अमेरिकन राज्यको कुछ भी विशेष आमदनी न हुई। उत्तरदायी आर्थिक स्वराज्यवाले देशोंमें

राज्यकरका फल देरके बाद होता है। जातीय-ऋणमें धन जल्दी ही मिल जाता है।

राज्यकरका बढ़ाना जनताके हाथमें होनेसे राज्यों-को अधिकतर जातीय ऋणका ही सहारा लेना चाहिये।

युद्धके खर्चों-को सभालनेके लिये राज्यको-षमें धन जमा करना बुरा है।

(ii) युद्ध आदिके अधिक खर्चोंसे बचनेका दूसरा उपाय यह हो सकता है कि राज्य प्रतिवर्ष धन बचाया करे और उसको युद्धके समय काममें लावे। प्रश्न तो यह है कि वह अधिक धन साधारण समयमें कहाँ लगाया जाय। यदि किसी स्थानमें यह धन लगा दिया जाय तो युद्धकालमें इससे राज्यका पूरा मतलब कैसे निकल सकता है? यदि यह धन किसी उत्पादक काममें सर्वथा ही न लगाया जाय तो खजानेमें इतनी पूंजीको निरर्थक ही जमा करना पूरी बेवकूफी है. यहां पर ही बस नहीं; खजानेमें जमा सोना चांदीको युद्धसमयमें सहसा ही निकालते मुद्राके राशि-सिद्धान्तके अनुसार मारेके सारे बाजारू पदार्थोंकी कीमतें चढ़ जांयगी। इससे राज्यको पदार्थ महँगे मिलेंगे, जनतामें शोर मच जायगा और दुर्भिक्ष उद्घोषित हो जायगा। यदि इस जमाधनके द्वारा कंपनियोंके हिस्से खरीद लें तो युद्धकालमें उन हिस्सोंको कम दाम पर बेचनेसे उसको वृथा ही घाटा उठाना पड़ेगा।

व्यापारीय तथा व्यावसायिक कार्योंके लिये जातीयऋण।

(२) व्यापारीय तथा व्यावसायिक कार्योंके लिये जातीय ऋणः—ऐसे कार्योंके लिये जातीय ऋण दो कारणोंसे आवश्यक होता है।

(i) पनामाकी नहर, बड़ी २ रेलें तथा बड़ी२ नहरोंके बनानेके लिये इकट्ठीही बहुतसी पूंजी लगाना चाहिये और इन कामोंको बहुत ही जल्दी समाप्त करनेका यत्न करना चाहिये। यह क्यों? यह इसीलिये कि जब तक काम समाप्त नहीं होता है तब तक वह पूंजी निरर्थक पड़ी रहती है और उससे राज्यको कुछ भी लाभ नहीं प्राप्त होता है। यह भी एक प्रकारका आर्थिक नुकसान है। इस नुकसानसे बचनेके लिये यथासंभव जातीय ऋण-का सहारा लेना चाहिये और कामको शीघ्र ही समाप्त करना चाहिये।

बड़े २ कार्यों में अधिक पूंजीकी जरूरत।

(ii) बड़े २ व्यावसायिक कामोंके लिये जहां तक हो सके राज्यको अन्य कंपनियोंके सदृश हिस्सोंको निकाल करके काम करना चाहिये। उस कामकी आमदनीसे ही हिस्सेदारोंको वार्षिक लाभ बांटना चाहिये। सारांश यह है कि ऐसे कामोंमें राज्यको व्यापारीय तथा व्यावसायिक तरीकोंको ही काममें लाना चाहिये *

व्यावसायिक कामोंके लिये राज्यको हिस्से निकाल कर धन लेना चाहिये।

---

* आदम लिखित, फाइनेन्स (१८९८) पृ० ५०६, ५३३।
महाशय निकलसन लिखित प्रिन्सिपल्स आफ पोलिटिकल इकानमी खण्ड ३, (१९०८) पृ० ४०३–४१५.
आदम लिखित पबलिक डैट्स।
नोबल रचित नेशनल फाइनेन्स।

द्वितीय परिच्छेद ।

राष्ट्रीय साखका प्रयोग तथा प्रबन्ध ।

राष्ट्रीय साख-की उलझनें ।

राष्ट्रीय साखके प्रयोगमें कुछ एक समस्यायें उत्पन्न होती हैं, उनपर गम्भीर विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है । राज्य जब विपत्तिमें पड़ते हैं या धनको व्यवसायोंमें विनियोग करते हैं उसी समय राष्ट्रीय साखका प्रश्न टेढ़ा रूप धारण कर लेता है । विषयको स्पष्ट करनेके लिये दोनों ही अवस्थाओंपर पृथक् प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है ।

१–विपत्कालमें राष्ट्रीय साखका प्रयोग ।

युद्ध आदिमें राष्ट्रीय साखका प्रयोग ।

राज्य पर बीसों प्रकारसे आर्थिक विपत्ति पड़ सकती है । इसका उग्र रूप युद्धके समयमें प्रगट होता है । इस महायुद्धमें भिन्न २ जातियोंका युद्ध पर जो वार्षिक धन व्यय हुआ है वह कल्पनासे बाहर है । इतना धन-व्यय कदाचित् ही किसी जातिका किसी युद्धमें हुआ हो । यह पूर्वही लिखा जा चुका है कि इतना अधिक धन राज्य-करके द्वारा कभी भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है । इस दशामें राष्ट्रीय साख ही राज्योंका सहारा होती है । उसीके सहारे वह जाति से ऋण लेते हैं । इस ऋणके व्याजको देनेके लिये राज्यको अपना

राज्यको खर्च कम करना चाहिये और इस प्रकार जातीय ऋणका ब्याज चुकता करना चाहिये ।

खर्च अवश्य ही घटाना चाहिये। क्योंकि यदि ऋण-के धनसे ही संपूर्ण व्याज चुकता किया जाय तो इससे भयंकर आर्थिक दुर्घटना उत्पन्न हो सकती है और राज्यकी साख सदाके लिये नष्ट हो सकती है। सारांश यह है कि (ऋणके धनके) व्याजको नवीन करसे या पुराने खर्चोंको घटाकर-के देना चाहिये।

राज्यकरकी लचक।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विपत्तिके समयमें राज्योंको साख, कर, न्यूनव्यय आदिसे सहायता प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये। किसी एक या दो पर निर्भर करना विपत्तिको और भी अधिक बढ़ाना होगा। अमेरिकाकी राष्ट्रीय साखका इतिहास यही शिक्षा देता है * आजकल सभ्य देशोंके राज्य (जहां तक उनसे होता है) ऐसी कर-प्रणालीका अवलम्बन करनेके लिये सदा तैय्यार रहते हैं जिसमें कि लचक हो अर्थात् जिसके द्वारा जरूरत पड़ने पर अधिकसे अधिक राज्यकर प्राप्त किया जा सके। यही कारण है कि शान्ति-कालमें आयके प्रत्येक स्थान पर राज्य कमसे कम कर लगाते हैं। यह इसीलिये कि विपत्तिके समय-में उन्हीं स्थानोंसे करकी मात्रा बढ़ा करके अधिक कर प्राप्त कर सकें।

जातिकी उत्पादक शक्ति पर लिखते समय यह दिखाया जा चुका है कि जातियोंको युद्धों तथा अन्य बाधाओंका ख्याल करते हुए कृषि, व्यापार

तथा व्यवसाय तीनोंहीमें विशेष उन्नति करना चाहिये। जातियोंको इन्हीं बातोंका ख्याल करके अपने आयव्ययका नियन्त्रण करना चाहिये। उस जातिकी आयव्यय-प्रणाली सबसे उत्तम है जो कि युद्ध-कालमें भी शान्तिकालके सदृश ही काम करे तथा बहुत ही कम विक्षुब्ध हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रीय साखमें सुधारकी उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि कर-प्रणालीमें। राष्ट्रीय साख तो, कर-प्रणालीके उत्तम न होनेसे राज्यों पर जो विपत्तियाँ पड़ती हैं, उनमें सहा-सहायता पहुंचाती है। उचित तो यही है कि राज्यकी कर-प्रणाली उत्तम हो और जहां तक हो राज्य पर आर्थिक विपत्ति पड़नेही न पावे।*

कर-प्रणालीमें सुधारकी आवश्यकता।

२-धन-विनियोगके लिये राष्ट्रीय साखका प्रयोग।

व्यावसायिक कार्योंमें धनविनियोगके लिये राष्ट्रीय साखका प्रयोग भी किया जा सकता है और प्रायः राज्य ऐसे स्थानोंमें राष्ट्रीय साखका प्रयोग करते भी रहे हैं। इसपर विचार करनेके लिये निम्नलिखित बातोंका ध्यान कर लेना चाहिये।

व्यावसायिक कार्योंके लिये राष्ट्रीय साख-का प्रयोग।

(१) राज्य अनुत्पादक तथा प्रत्यक्ष आर्थिक

* आदम रचित फाइनान्स (१८९८) पृष्ठ ३३४–३४२।

लाभरहित कार्मोके लिये धन उधार लेना चाहता है ? या

(२) व्यापारीय तथा व्यावसायिक कार्योंके लिये धन उधार लेना चाहता है ?

(१) बाग, स्कूल, दलदल सुखाना, रेल बनाना आदि काम बहुत बार राज्य आर्थिक लाभके उद्देश्यसे नहीं करते हैं। ऐसे कार्योंका करना कितना आवश्यक है यह किसीसे भी छिपा नहीं है। उन कामोंको करनेके लिये बहुत बार राष्ट्रीय साखके द्वारा धन प्राप्त कर लिया जाता है। पनामाकी नहर तो कभी बन ही न सकती यदि राज्य राष्ट्रीय साखका प्रयोग न करता।

आर्थिक लाभरहित कार्योंके लिये धनका उधार लेना।

(२) जब राज्य व्यापारीय तथा व्यावसायिक कार्योंके लिये धन उधार लेता है उस समय उसका आधार राज्यकर पर नहीं रहता है। उन कार्योंकी आमदनीसे ही राज्यको उनका ऋण चुकाना चाहिये। राष्ट्रीय कार्योंके लिये राज्य जनतासे कर लेता है। लाभके खातिर जो काम वह हाथमें लेता है वह राष्ट्रीय कार्य नहीं कहा जा सकता है। यही कारण है कि आयव्यय शास्त्रज्ञोंका इस बात पर विशेष बल है कि राज्यको बजटके समयमें साफ २ कह देना चाहिये कि उसका कौनसा काम राष्ट्रीय है और कौनसा काम व्यापारीय तथा व्यावसायिक है। यह इसी लिये कि नियामक सभा पहिले प्रकार-

व्यापारीय तथा व्यावसायिक कार्मोंके लिये लिये गये जातीयऋणका धन उनकी आमदनीमे चुकना करना चाहिये।

के कामके लिये ही उसको कर द्वारा धन प्राप्त करनेकी आज्ञा देती है न कि दूसरे प्रकारके कामके लिये।

३—जातीय ऋणका ग्रहण करना तथा उतारना।

जातीयऋणके लेनेमे तीन कठिनाइयाँ।

जातीय ऋणके ग्रहण करने तथा उतारनेमें आयव्यय-सचिवको जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है उन्हीं पर अब प्रकाश डाला जायगा। ये कठिनाइयां तीन हैं।

(I) जातीय ऋण कैसे तथा कितने समय-के लिये लिया जाय?

(II) जातीय ऋणकी शर्तोंमें संशोधन कैसे किया जाय?

(III) जातीय ऋण कैसे उतारा जाय?

जातीय ऋण सम्बन्धी इन तीनों समस्याओं पर अब पृथक् २ विचार किया जायगा।

(I)

जातीय ऋण कैसे तथा कितने समय-के लिये लिया जाय?

राज्यकर लगानेकी अपेक्षा विपत्तिके समय-में जातीय ऋण ही लेना चाहिये इसपर विस्तृत तौर पर लिखा जा चुका है। प्रश्न उपस्थित होता है कि आयव्ययसचिव जातीयऋण किस प्रकार ले? इसका उत्तर इसप्रकार दिया जासकता है।

(१) जातीय ऋण ग्रहण करनेकी विधिः—जातीय ऋण ग्रहण करनेकी तीन ही विधियां हैं। उदारता, भय तथा वैयक्तिक स्वार्थसे प्रेरित होकरके ही लोग जातीय ऋण देते हैं। यही कारण है कि (i) देशभक्ति-ऋण, (ii) बाधित ऋण तथा (iii) व्यापारीय ऋण इन तीन तरीकोंका जातीय ऋण होता है।

जातीयऋण लेनेकी विधि।

(i) देशभक्ति-ऋणः—देशभक्ति-ऋण अस्थिर तथा अनियत होते हैं। मिल गये तो मिल गये, न मिले तो न सही। अतः इनपर किसी भी राज्यको बहुत भरोसा न करना चाहिये। यही नहीं, देशभक्ति-ऋण प्राप्त करनेमें यदि राज्य असफल हो जाय तो उसको अन्य ऋण भी नहीं मिलते हैं। क्योंकि राष्ट्र परसे उसकी साख नष्ट हो जाती है। अतः देशभक्ति-ऋण जितने सस्ते हैं तथा उत्तम हैं, उतने ही भयंकर भी हैं। राज्योंको इनपर बहुत भरोसा न करना चाहिये।

देशभक्तिऋण की अस्थिरता।

(ii) बाधित ऋणः—इतिहासमें बाधित ऋण कई रूपमें प्रगट हो चुके हैं। आजकल यह ऋण राज्य द्वारा बाधित तौर पर सञ्चालित खजानेके नोटोंके रूपमें प्रगट होते हैं। राज्य युद्धकालमें सिपाहियोंको तनखाहें तथा दूकानदारोंको चीज़ोंके दाम इन्हीं नोटोंके द्वारा देदेता है। राज्यका भय बड़ी चीज़ है। उसीके भयसे लोग इन नोटोंको लेन देनके काममें ले आते हैं। इन नोटों-

बाधितऋण तथा उसका स्वरूप।

के निकालनेमें राज्यको कुछ खर्च नहीं करना पड़ता है। इन नोटोंके सहारे राज्यको आवश्यक धन मिल जाता है जब कि उसका किसीको भी कुछ भी व्याज नहीं देना पड़ता है। इन नोटोंका सबसे बड़ा प्रभाव यह है कि उनके द्वारा देशमें महँगी उत्पन्न हो जाती है। यहीं पर बस नहीं, ग्रीषम नियमके द्वारा धातुका प्रयोग देशमें कम हो जाता है और लेनदेनमें यह नोट ही चलने लगते हैं। बहुत बार अधिक निकल जानेके कारण इन नोटोंका दाम शून्य तक पहुंच जाता है और जनता पर एक प्रकारसे यह भयंकर राज्यकरके रूपमें पड़ जाते हैं।*

व्यापारीय ऋण।

(१११) व्यापारिक ऋणः—इसपर इसी खण्ड-के प्रथम परिच्छेदमें प्रकाश डाला जा चुका है अतः यहाँ पर फिर लिखना दुहराना होगा।

जातीयऋणके उतारने तथा लेनेका समय।

(२) जातीय ऋण ग्रहण करने तथा उतारनेका समयः—जातीय ऋणको बीसों तरीकोंसे राज्यको ग्रहण करना चाहिये। जिस प्रकारकी शर्तोंसे राज्यको अधिक ऋण प्राप्त करनेकी आशा हो उसी प्रकारकी शर्तें राज्यको जनताके सम्मुख रखना चाहिये। जातीय ऋणके लेनेमें प्रायः तीन प्रकारकी शर्तें काममें लाया जाती हैं।

जातीयऋण लेनेकी तीन शर्तें।

* लेखकका सम्पत्तिशास्त्र (पुस्तक—विनियम खण्ड, मुद्रा परिच्छेद)।

(i) जातीय ऋणका समय।

(ii) गृहीत धनके बदलेमें कितनी धनराशि दी जायगी।

(iii) व्याजकी दर।

उपरिलिखित तीन शर्तोंमेंसे कोई दो शर्तें राज्य स्वयं कर सकता है और एक शर्त जनता-के लिये छोड़ सकता है। यदि जातीय ऋणका समय अधिक लम्बा हो तो उसपर व्याजकी मात्रा कम होनी चाहिये और यदि उस ऋणका समय थोड़ा हो तो व्याजकी मात्रा अधिक होनी चाहिये। जातीय ऋण ग्रहण करते समय राज्योंको निम्नलिखित तीन बातोंका ध्यान करना चाहिये।

लंबे समयके जातीयऋण पर व्याजको मात्रा कम होनी चाहिये।

(i) राज्यको विशेष समय तकके लिये जातीय ऋणपर व्याजकी मात्रा निश्चित तथा नियत कर देनी चाहिये। जातीय ऋणपर प्रति वर्ष नियत धन राशि देनेका प्रण करना ठीक नहीं है।

जातीयऋण पर व्याजकी दरका नियत करना।

(ii) व्याजकी मात्रा या धनराशि नियत करनेके स्थान पर जातीय ऋणके उतारनेका समय राज्योंको नियत कर देना चाहिये। यह समय भी बीससे पचास साल तक होना चाहिये। भारत-वर्षमें इससे कम समय भी रखा जा सकता है। क्योंकि भारतवर्षमें व्याजको दर अधिक है और इसमें शीघ्र ही उतराव चढ़ाव आ सकता है।

जातीयऋणके उतरनेका समय नियत करना चाहिये।

इंग्लैण्ड आदि देशोंमें व्याजकी मात्रा कम है और वहां इसमें चढ़ाव उतराव भी बहुत नहीं है। ऐसे देशोंमें यदि अधिक समयके लिये निश्चित व्याजकी दरपर जातीयऋण लिया जाय तभी लोग राज्यको उचित तथा आवश्यक धन दे सकते हैं।

जातीयऋणमें व्याजकी अधिकता।

(iii) जातीय ऋणपर व्याजकी दर अधिक होनी चाहिये। इसीसे लोग उसको लेनेके लिये तैय्यार हो सकते हैं।*

(II)

जातीय ऋणकी शर्तोंमें संशोधन कैसे किया जाय।

कभी २ राज्योंको विशेष २ कारणोंसे प्रेरित होकर जातीय ऋणके पुराने व्याजकी मात्रा कम करनी पड़ती है। इसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि राज्य कम व्याजपर नवीन जातीय ऋण लेलेवे और पुराने अधिक व्याजवाले जातीय ऋणका रुपया उत्तमर्णोंको दे देवे। यह उचित ही है। क्योंकि जातीय ऋणका व्याज राज्य करके द्वारा चुकता किया जाता है। यदि किसी समयमें पुरान जातीय ऋणके व्याजकी मात्रा अधिक हो तो उसको इस तरीकेसे कम

* आदम रचित फाइनान्स (१८९८) पृ० ५४७-५५५,
आदम रचित पबलिक डटस पृ० २४३-२५५।

कर देना चाहिये। जाति पर जितना करका भार कम होवे उतना ही अच्छा है।

(III)

जातीय ऋण कैसे उतारा जाय ?

जातीय ऋण कैसे उतारा जाय? इस पर विचार करनेसे पूर्व यह विचारना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि जातीय ऋण क्यों उतारा जाय? अतः अब इसी पर पहिले प्रकाश डाला जायेगा फिर दूसरे प्रश्न पर विचार किया जायेगा।

जातीय ऋण उतारनेकी जरूरत।

(१) जातीय ऋण क्यों उतारा जाय? जातीय ऋणका उतारना इसलिये आवश्यक है चूंकि जाति पर इसके कारण राज्य-करका भार बढ़ जाता है। जातीय ऋणका व्याज राज्य करके द्वारा ही उतारा जाता है। इंग्लैण्ड आदि व्यावसायिक देश चाहे जातीय ऋणके भारको कुछ भी न समझें, परन्तु भारत जैसे कृषिप्रधान दरिद्र देशके लिये यह भार महा भयंकर है। प्रतिवर्ष हमपर जातीय ऋणका बढ़ते जाना हमारी उत्पादकशक्तिको नष्ट कर रहा है। यहीं पर बस नहीं, बाजारू व्याजकी दरसे अधिक व्याज पर जातीय ऋण लेकर राज्यने व्याजकी मात्राको चढ़ा दिया है। इससे भारतीयोंकी व्यावसायिक उन्नति और भी अधिक रुक गयी है। जमींदार तथा व्यापारियोंका रुपया राज्य-ऋणमें लगानेसे देशके व्यवसायोंके लिये पूँजी और भी कम हो गयी

है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतकी जैसी आर्थिक दशा है, उसके लिये भारत पर जातीय ऋणका होना कभी भी अच्छा नहीं कहा जा सकता है। इससे लोगों पर करका भार बहुत ही अधिक हो गया है।**

जातीयऋणमें लोकमतकी ज़रूरत।

(२) जातीय ऋण कैसे उतारा जाय? जातीय ऋण उतारनेके लिये निम्नलिखित बातोंका ध्यान करना चाहिये।

(१) अमेरिका आदि प्रतिनिधितन्त्र देशोंमें जातीय ऋण लेने तथा उतारनेमें राज्यको सारी-की सारी जनताकी आज्ञा लेनी पड़ती है। यह आवश्यक ही है। क्योंकि यदि इसपर जनताका प्रभुत्व न हो तो राज्य स्वेच्छाचारी हो सकता है।

राज्यको जातीय ऋण लेते समय जहां तक होसके उसके उतारनेका प्रण न करना चाहिये। ऐसा करनेसे ही प्रायः राष्ट्रीय साख स्थिर रहती है। परन्तु भारतकी दशा विचित्र है। भारतीय राज्य जनताका अंग नहीं है, अतः भारतीय राज्य तथा भारतीय जनताका पारस्परिक सम्बन्ध स्वाभाविक संबंध नहीं है। यही कारण है कि इस महायुद्धमें भारतीय राज्यका जातीय ऋणके ग्रहण करनेमें उसके उतारनेका समय तक देना पड़ा।

** आदम स्मिथ फाइनान्स (१८९८) पृ० ५५५-५६०।

(२) नियामक सभाओंको जातीय ऋणके उतारनेके लिये बजटके समयमें एक नवीन धन राशि प्रतिवर्ष पास करनी चाहिये। इसके लिए अवशिष्ट धन नीतिका अवलम्बन करना ठीक नहीं है। अवशिष्ट धनसिद्धान्तियोंका विचार है कि यदि राज्य ५) रु० सैकड़े व्याजपर जातीय ऋण लेवे और ४½ प्रति शतक चक्रवृद्धि व्याजपर उसको लगा दे तो कुल जातीय ऋणपर लगभग ६ रु० सैकड़ा व्याज मिल सकता है। इससे राज्य जातीय ऋणपर ५ रु० सैकड़ा व्याज देते हुए भी १ रु० सैकड़ा लाभमें रह सकता है और जनतापर करका भार भी नहीं पड़ सकता है। इस विचारमें जो हेत्वाभास है वह यह है कि राज्य जातीय ऋण प्रायः युद्ध आदियोंके लिए लेते हैं। अतः वहां अवशिष्ट धन सिद्धान्तसे कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती है। अवशिष्ट धनसिद्धान्त केवल स्थानीय ऋण तथा व्यापारीय ऋणके विषयमें ही सत्य है। इसका क्षेत्र युद्धादिके निमित्त लिये हुए अनुत्पादक जातीय ऋण तक नहीं पहुंचता है।

(३) जातीय ऋणको शनैः २ थोड़े २ धनके द्वारा भागोंमें उतारना ठीक नहीं है जितना जातीय ऋण उतारना हो उसके पूरे तौरपर उतारना चाहिये। इसको समझनेके लिए १ लाख रुपयेके सौ सौ रुपये वाले प्रोमिसरी नोटोंको ले लेओ।

इसका रुपया राज्य दो प्रकारसे उतार सकता है (यदि वह इस ऋणको उतारना चाहे)। एक तरीका यह है कि २५ हजार रुपया दे देनेके लिये वह १००) रुपये वाले प्रामिसरी नोटोंको ७५) का बना देवे और दूसरा तरीका यह है कि प्रामिसरी नोटोंका मूल्य १००) ही रहने दे और बाज़ार से २५ हज़ार रुपयेके प्रामेसरी नोट खरीद कर उनको अनन्तामें पुनः न चलावे। यदि जातीय ऋणके वास्तविक मूल्यसे बाजारी मूल्य कम हो तो राज्यको दूसरा तरीका काममें लाना चाहिये और यदि सट्टे या अन्य विशेष कारणोंसे उसका बाजारी दाम अधिक हो तो थोड़े थोड़े धनके द्वारा भागोंमें ही राज्यऋणका उतारना उत्तम है अर्थात् राज्य ऋणके उतारनेका पहिला तरीका ही ठीक है। जहाँ तक हो सके राज्यको दूसरे तरीकेका ही अवलम्बन करना चाहिये और वही तरीका सबसे उत्तम है।

(४) जातीयऋणके लेते समय ही उसके उतारनेकी नीतिका भी राज्यको पूर्वसे ही निश्चय कर लेना चाहिये। इसीमें आयव्यय सचिवकी योग्यता पहचानी जाती है। *

---

* महाशय आदम्स् रचित फाइनान्स (१८६८) पृष्ठ ५६०-५६४।

तृतीय परिच्छेद ।

भारतमें जातीयऋण

भारतके जातीयऋणका इतिहास रहस्यसे परिपूर्ण है। भारतमें अनुत्तरदायी राज्य है। भारतीय जनताको अपने धनको खर्च करनेमें तथा इकट्ठा करनेमें भी स्वतन्त्रता नहीं है। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके जमानेसे अबतक राज्यका भारतीयोंके संपूर्ण मामलोंमें दखल है। बंगालकी आमदनीसे ही शुरू शुरूमें कंपनीने अन्य प्रान्तोंको जीता और अफगानिस्तान, बर्मा, नैपाल आदि के युद्धोंमें उधारके रुपयोंसे सफलता प्राप्त की। इंग्लैण्डका कुछ भी धन भारत विजयमें न खर्च हुआ। १८४६ में भारतका जातीय ऋण ७० लाख रुपये जा पहुँचा और यह क्रमशः बढ़ता ही गया। १८८६ में ४५०० लाख रुपये, १६वीं सदीके आरम्भमें ७६५० लाख रुपये और १६१५ में १०४२५ लाख रुपये भारतपर जातीयऋण हो गया। सरकारी गलतियोंके कारण ही १८५७ का गदर हुआ था। इसपर भी गदरका खर्च भारतीयोंपर डाला गया। यही कारण है कि १६७६ में जातीयऋण १२६० लाख पाउण्ड हो गया। इसके अनन्तर जातीय ऋण इस प्रकार बढ़ा।

जातीय ऋण का इतिहास

३१ मार्च	लाख पाउण्ड्ज	कुल जातीयऋण	ब्याजकी मात्रा प्रति पाउण्ड
सन् १८८८	८४२	१४६५	६·२%
१८९३	१०६७	१६५३	६·७%
१८९८	१२३८	१९७३	६·७%
१९०३	१३३८	२१२०	७·१%
१९०८	१५६५	२४५०	८·१%
१९१३	१७९१	२७८३	९·५%

युद्धोंके सदृश ही रेल नहर आदिके बनानेमें भी भारतीय राज्यको जातीयऋण लेना पड़ा है। नहरोंमें लाभ रहा है अतः उसका भार भारतीय जनतापर नहीं है। परन्तु रेलोंके बनानेमें जहाँ खर्च अधिक हुआ है वहाँ वे घाटेपर चल रही हैं। परिणाम इसका यह है कि रेलोंने हम लोगोंके ऊपर एक प्रकारसे भारका रूप धारण कर लिया है।

इस महायुद्धके लिये भी भारतीय सरकारने युद्धऋण लिया। प्रथम युद्धऋणमें सरकारको ५४ करोड़ रुपये धन भारतीयोंकी ओरसे मिला। इसी प्रकार डाकखानेके कैश सार्टिफिकेटस्के द्वारा भी ११९७ में सरकारने काफी धन प्राप्त किया। १९१७में सरकारको जातीय ऋण इस प्रकार प्राप्त हुआ।

भारतमें जातीय ऋण

मुख्य ऋण	लाख पाउण्ड्ज़
डाकखानेका धन	२६६
	२८
कैश सार्टेफिकेट्स	६६
कुल	३६१

भिन्न भिन्न प्रकारके जातीयऋणका स्वरूप इस प्रकार था—

	लाख पाउण्ड्ज
५% व्याजका प्रलम्बकालीन जातीय ऋण १९१९—१९४७ तक	८३
५½% व्याजका ३ सालका वारबाण्ड्ज़	१३२
५½% व्याजका ५ सालका वारबाण्ड्ज़	८२
कुल	२९५

राज्यकोष बिलोंके द्वारा भारतीय सरकार सामयिकऋण चिरकालसे ले रही है। इस महायुद्धके समयमें ६·९ तथा १२ महीनोंके लिए भी राज्यकोष बिलोंके द्वारा जातीयऋण लिया गया है। १९१७—१८ में ऐसे बिलोंसे ४५० लाख रुपये धन सरकारको प्राप्त हुआ था। १९१४–१९१९ तक भारतमें जातीयऋणोंकी स्थिति इस प्रकार रही है। *

---

* वी० जी० काले कृत इन्डियन इकॉनोमिक्स (१९१८) पृ० ४७१–४७९।

आर० सी० दत्त कृत इन्डिया अन्डर ब्रिटिश रूल चैप्टर २३।

आर० सी० दत्त कृत इन्डिया इन दि विक्टोरियन एज चैप्टर १३।

गोखले एण्ड एकॉनोमिक् रिफॉर्मस बाइ वी० जी० काले पृष्ठ २१९–२२२।

३१ मार्चके दिन	१९१४—१५	१९१६—१७	१९१७—१८	१९१८—१९
आतीयऋणका स्वरूप	पाउण्ड्ज़ १८३१९०३५८	पाउण्ड्ज़ १७८१४४७२४	पाउण्ड्ज़ २३८५०५५२४	बजट २१८०८५५२४
	रुपयोंमें	रुपयोंमें	रुपयोंमें	रुपयोंमें
नवीन आतीयऋण	...	...	...	३००००००००
५½% ब्याजका आतीयऋण	...	४९१६७२५५	३१७५३४२५५	३१७५३४२५५
५% ”	...	११०५१५२३	२७०९६५५२३	२६६५६५५२३
४% ”	३१६०००००	२१४६५४०००	१६१६७७०००	१५९८७६०००
३½% ”	१३८१२२१४००	१३२०२१३९५०	११८९०९३९५०	११८९४५८९५०
३% ”	८२०५९५००	७२६६९४००	६६१९३४००	६५७७३४००
राज्यकोष बिल	...	...	४१००००००	४१००००००
सामयिक आतीयऋण	११०००००००	५००००००	४०००००००	...
अन्य आतीयऋण	१००८४८००	१००१४२००	१००१४०००	१००१४०००
सेविङ्ग बैंक्सका बैलन्सेज़	२१८४६६१७६	२५२५६९३५८	३०२६३७३३५८	३२००२३३५८

तृतीय खण्ड ।

प्रत्यक्ष आय ।

राज्यको प्रत्यक्ष आय चार स्थानोंसे प्राप्त होती है। (१) राष्ट्रीय भूमि (२) राष्ट्रीय व्यापार-व्यवसाय (३) दान (४) जमानत तथा दूसरेका धन छीन लेना। राष्ट्रीय भूमि तथा राष्ट्रीय व्यापार व्यवसायसे उन्हीं राज्योंका धन ग्रहण करना उत्तम है जो कि उत्तरदायी हों। अनुत्तरदायी राज्योंका ऐसे कामोंमें पड़ना उनके स्वेच्छाचारित्वको अति सीमा तक बढ़ा देता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अनुत्तरदायी राज्योंका राष्ट्रीय भूमिपर स्वत्व तथा राष्ट्रीय व्यापार व्यवसायका करना किसी भी न्यायाश्रित युक्तिसे समर्थन नहीं किया जा सकता। क्योंकि जो राज्य राष्ट्रका प्रतिनिधि हो वही राज्य राष्ट्रीय भूमि तथा राष्ट्रीय व्यापार व्यवसाय-से आय प्राप्त कर सकता है। स्वेच्छाचारी अनुत्तरदायी राज्योंका इनसे आय प्राप्त करना शक्ति सिद्धान्तपर आश्रित होता है क्योंकि स्वेच्छाचारी राज्य तथा राष्ट्रके बीचमें वह प्रतिनिधि रूपी शृंखला टूटी हुई होती है जिससे स्वाभाविक तौर पर राष्ट्रकी संपत्ति राज्यकी बन जाती है।

भारतीय नेता क्यों राज्यका स्वत्व भारतीय भूमि-पर तथा भारतीय व्यापार व्यवसायपर अनुचित समझते हैं और यूरोपमें इससे उल्टी लहर क्यों है, इसका रहस्य इसीमें छिपा है।

दान तथा जमानत द्वारा भी राज्य धनको प्राप्त करते हैं। भारतमें सरकार पत्र-संपादकोंसे जमानतके तौर पर धन लेती है। इसी प्रकारका धन जर्मनीने फ्रान्ससे, जापानने चीनसे और अब इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स जर्मनीसे लेना चाहते हैं। प्रत्यक्ष आयका विषय भी काफी महत्वपूर्ण है, अतः अब उसीपर विस्तृत तौरपर प्रकाश डाला जायगा।

प्रथम परिच्छेद ।

जातीय संपत्तिसे राज्यका आय ।

(१) भारतमें जातीय संपत्तिपर राज्यका प्रभुत्व ।

नदी, पहाड़, भूमि, खान आदिपर सामूहिक तौरसे जातिका स्वत्व है। प्रतिनिधि तन्त्र उत्तरदायी राज्योंमें जातिका ही राज्य एक अंग होता है। जाति अपनी संपत्ति राज्यको दे देती है और प्रतिवर्ष आय व्यय भी स्वयं ही पास करती है। परन्तु यह बात भारतवर्षमें नहीं है। भारतीय राज्य भारतीय जनताका अंग नहीं है, यही कारण है कि राज्यकी कर शक्ति तथा प्रभुत्व शक्तिका स्रोत भारतीय जनता नहीं है। इस दशामें कठिनता बहुत ही अधिक बढ़ जाती है। भारतकी भूमि पहाड़, खान, नदी आदि पर भारतीय राज्यका स्वत्व किस युक्तिसे पुष्ट किया जावे। जो राज्य आंग्ल जातिका प्रतिनिधि हो उसका स्वत्व इङ्गलैण्डकी नदी खान आदि पर हो सकता है परन्तु भारतकी जातीय संपत्तिपर नहीं। ऐसी हालतमें दो ही बातें हो सकती हैं।

भारतवर्षमें उत्तरदायी राज्य का होना

(क) भारतवर्षमें जनताको आर्थिक स्वराज्य तथा उत्तरदायी राज्य मिल जाय और इस प्रकार भारतीय राज्य भारतीय जनताका प्रतिनिधि हो जाय।

(ख) नदी, भूमि और खानसे लेकर संपूर्ण जातीय संपत्ति पर सरकार अपना स्वत्व छोड़ दे।

यूरोपमें उत्तरदायी राज्य का प्रचार

यूरोपीय देशोंमें यही समस्या किसी दूसरे रूपमें उपस्थित होती है। वहां जातिय तथा राज्य-में कोई विशेष भेद नहीं है क्योंकि राज्य जातिका ही प्रतिनिधि है और जातिका ही अंग है। यूरोपीय जनता भूमि, खान, नदी, पर्वत, जंगल आदि-पर वैयक्तिक स्वत्वको अनुचित समझ रही है और उसपर अपना ही स्वत्व स्थापित करना चाहती है जो कि उचित भी है। सारांश यह है कि यूरोपमें संपत्तिपर जाति तथा व्यक्तिका विरोध है और भारतमें संपत्तिपर जाति तथा राज्यका विरोध है।

लगानका अधिकना

इन विरोधोंके होते हुए भी भारतीय राज्यने भारतीय भूमि, जंगल, खान आदिपर अपना ही प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। आज कल भारतीय राज्य जितना चाहे लगान ले सकता है, क्योंकि भारतीय जनताकी संपूर्ण संपत्ति तो उसीकी संपत्ति है। लगान लेने तथा बढ़ानेके मामलेमें राज्यने अपना खुला हाथ रखा है। किसी भी सभासे उसको इस कार्यमें पूंछनेकी ज़रूरत नहीं है। परिणाम· इसका यह है कि राज्य करका सारा भार बिचारे गरीब किसानोंपर आ टूटता है और वह उधार ले ले करके प्रतिवर्ष राजकीय लगानको चुकता कर देते हैं।

सोना, चांदी, हीरा, नमक आदिकी खानोंपर भारतीय राज्य अपना ही स्वत्व प्रगट करता है। बंगालमें जमींदारोंके हाथमें यही चीजें हैं। बिहारकी कोयलेकी खानोंपर भी राज्यका स्वत्व नहीं है। चिरकालसे राज्य उपाय सोच रहा है कि इनपर भी किसी न किसी तरीकेसे अपना ही प्रभुत्व प्रगट करें। परन्तु बंगाली ज़मींदार अब संपूर्ण मामलोंको समझ गये हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे यह समझते हुए भी कुछ नहीं कर सकते। राज्यने जिस प्रकार अन्य जातीय संपत्तियोंपर अपना कब्ज़ा जमाया है उसी प्रकार उनकी संपत्तिपर भी कबजा कर सकता है। यह तो कृपा तथा अनुग्रह समझना चाहिये कि राज्यने अभी तक उनकी संपत्तिको बिलकुल छीन नहीं लिया है। यह भी शनैः शनैः राज्य कर ही लेवेगा क्योंकि राज्यने इनकी भूमियाँ बांध दी हैं और उनको राजासे ताल्लुकेदार बना दिया है। अब केवल उनको असामी बनानेकी ही देर है:—

खानोंपर सरकारका स्वत्व

(२) यूरोप तथा अमेरिकामें भूमियोंसे राज्यको आय *।

यूरोपमें भूमियां चिरकाल से राज्यकी आयका मुख्य साधन रही हैं। मध्य काल तक यूरोपमें

यूरोपमें भूमि से आमदनी

* डा. एल. जी. पियर्सन कृत प्रिन्सिपल्स आवं इकॉनोमिक्स वाल्यूम २ पार्ट ४ चेप्टर १-२

राज्य तथा राष्ट्रकी आयमें कुछ भी भेद न समझा जाता था। राजाको अपनी जमीनोंसे बहुत ही अधिक आमदनी होती थी। करोंके द्वारा उसको बहुत ही थोड़ा धन मिलता था। यूरोपमें पूँजीत्व विधिके उदय होते ही राष्ट्रीय तथा राजकीय आय-में भेद स्थापित हो गया। भूमिदान, कृषक-भूस्वा-मित्व-विधि तथा राष्ट्रीय संपत्ति एवं आयके साधनोंको ज़मींदारोंके हाथमें दे देनेसे राजाके हाथोंसे उसकी अपनी भूमियां जनताके हाथोंमें चली गयीं।

पूँजीत्व विधि का परिणाम

प्रशिया

प्रशियाके राजाको अब तक जंगलों तथा राजकीय भूमियोंसे ३२२५०००० रुपयेकी आमदनी है। खानों तथा कारखानोंसे भी उसको १२०००००० रुपये मिलते हैं। प्रशियाके सदृश ही

फ्रांस

फ्रान्समें संपूर्ण जंगलोंका १०.८(२६४४००० एकड़) प्रति शतक राज्यकी मिलकियत है और २२.७ प्रति शतक (४७११००० एकड़) भिन्न भिन्न विभागों, काम्यून्ज़ तथा राष्ट्रीय संस्थाओंके स्वत्व-में है। रूसके पास बहुत अधिक भूमि है। जिसकी अधिकताका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि उसपर २२००००००० दो करोड़ बीस लाख (?) आदमी निवास करते हैं।

इंग्लैण्ड

इङ्गलैण्डमें राजकीय भूमि अब बहुत थोड़ी रह गयी है। आंग्ल राज्य-को अपनी भूमिसे केवल ६०००००० पाउन्ड्ज़की ही आमदनी है।

हालैण्ड

हालैण्डकी दशा इङ्गलैण्डसे सर्वथा मिलती है। हालैण्डके राज्यको राजकीय

भूमिसे केवल १८७५००० रुपयेकी ही आमदनी है। भारतकी दशा सब देशोंसे विचित्र है। आंग्ल राज्य भारतकी संपूर्ण-भूमिपर अपना ही स्वत्व समझता है और इस प्रकार दिनपर दिन लगान बढ़ाता जाता है। इससे भारतीय कृषकोंकी आर्थिक दशा बहुत ही अधिक बिगड़ गयी है और भारतवर्षमें दुर्भिक्षने स्थिर रूपसे रहना शुरू कर दिया है। संयुक्त प्रान्त अमेरिकाके पास भी बहुत० ही अधिक भूमि है। १८६० में अमेरिकन राज्यकी मिलकियतमें १८५२३१०६८७ एकड़ भूमि थी जो कि जर्मन साम्राज्यसे १४ गुनी कही जा सकती है। इस भूमिसे अमेरिकन राज्यने बहुत अधिक लाभ उठानेका अब तक यत्न नहीं किया है। शुरू शुरूमें अमेरिकन राज्यने अपनी भूमिको ६ रु० ४ आने प्रति एकड़के हिसाबसे बेचना प्रारम्भ किया और साथ ही ६ वर्ग मीलसे कम भूमिके लेनेवालोंको भूमि न बेची। इससे अल्प पूँजीवाले किसानोंको बहुत ही तकलीफ़ हुई। १८७७ में राज्यने भूमिका मूल्य ६ रु० ४ आ० २ (दो डालर) प्रति एकड़ कर दिया और साथ ही १८६८ में १६० एकड़ भूमिके खरीदनेवाले किसानोंको इस शपथपर भूमि देना आरम्भ किया कि उनके पास अन्यत्र कहींपर भी ३२० एकड़से अधिक भूमि नहीं है। सं० १९१९ की ६ ज्येष्ठ (२० मई) को सभापति लिंकनने गरीब युवा आदमीको

भारत

अमेरिका

१६० एकड़ जमीन इस शर्तपर मुफ्त देना मन्जूर किया कि वह उस जमीनको जोते बोयेगा और उस जमीनको बेच करके लाभ उठानेका यत्न न करेगा। इसी प्रकार सं० १६३० की १६ फाल्गुन (३ मार्च) को टिम्बर कृषि नियम पास किया गया। इस राज्य नियमके अनुसार कोई भी अमेरिकन नागरिक १६० एकड़ भूमि इस शर्तपर मुफ्त ही ले सकता है कि वह १० एकड़ भूमिपर एक मात्र पेड़ोंको ही लगावेगा और उक्त पेड़ोंकी १० साल तक निगरानी करेगा। यह नियम इसीलिये पास किया गया है कि अमेरिकाको लकड़ियोंकी बहुत ही अधिक जरूरत है। अस्तु जो कुछ हो, सं० १८७७, १६१६, तथा १६३० के राज्य नियमोंके अनुसार कोई भी अमेरिकन नागरिक ४८० एकड़ भूमि मुफ्त ही ले सकता है। परिणाम इसका यह है कि लाखों एकड़ भूमि प्रति वर्ष अमेरिकन प्रजाकी मिलकियत बनती जाती है, जब कि अमेरिकन राज्यको उसके बदलेमें फूटी कौड़ी भी नहीं मिल रही है। भारतकी दशा अमेरिकासे सर्वथा भिन्न है। जंगलोंमें घास उत्पन्न हो कर सूख जाती है, लकड़ी निरर्थक पड़ी रहती है, परन्तु आंग्ल राज्य भारतीय गरीब किसानोंको अपने पशुओंको घास चरानेकी आज्ञा देनेको तैयार नहीं है। लकड़ी जलानेके लिये आज्ञा देना तो दूर रहा! भारतीय प्रजाकी भूमिपर अपनी मिलकि-

यत प्रगट करना और इस प्रकार अनन्त सीमा तक लगान बढ़ाते चले जाना आंग्ल राज्यके लिए कहाँ तक न्याययुक्त तथा उचित है, यह सम्पत्ति-शास्त्रके विद्यार्थी स्वयं ही जान सकते हैं।

अमेरिकन राज्य

अमेरिकन राज्यने १८८० के राज्यनियमके अनुसार दलदल वाली तथा कृषिके अयोग्य भूमि अपनी भिन्न भिन्न रियासतोंमें बाँट दी। स्कूलों तथा अन्य सामाजिक संस्थाओंको, भी राज्यने बहुत सी भूमि मुफ्त, ही दी है। रेलोंकी वृद्धि करनेके लिये रेलवे कम्पनियोंको भी अमेरिकन राज्यने मुफ्त ही बहुत सी भूमि दी है। इलिनाइस सैन्ट्रल रेलवे कम्पनीको भूमि देनेके अनन्तर १८७०००००० अट्ठारह करोड़ सत्तर लाख एकड़ भूमि अमेरिकन राज्यने भिन्न भिन्न रेल्वे कंपनियों-को मुफ्त ही दी है।

राज्यकी इस उदारताका परिणाम यह हुआ है कि अमेरिका शीघ्र ही बस गया है। दिनपर दिन यूरोपीयन लोग संयुक्त प्रान्त अमेरिकामें अधिक संख्यामें आते हैं और वहांपर ही बस जाते हैं। अच्छा होता कि अमेरिकन राज्य उदारता दिखलाने में कुछ सोच विचार कर काम करता। भूमियोंको मुफ्त बांटनेके स्थानपर १०० सालके लिये किसानोंको जोतने, बोने तथा लाभ उठानेके लिये दे दिया जाता तो बहुत ही उत्तम होता क्योंकि इससे भूमिपर अमेरिकन राज्यका

स्वत्व सदाके लिए बना रहता और समय पड़ने पर वह लाभ उठा सकता।

हालैण्ड का राज्य

इस उदारतामें डच राज्यने बड़ी दूरदर्शिताले काम लिया है। सं०१९२७ को २६ चैत्र (९ अप्रिल) के नियमके अनुसार खाली भूमियोंको कुछ वर्षोंके लिए कृषकोंको दे देना डच राज्यने पास किया। १९२७ की ४ श्रावण (२० जुलाई) को भूमिदान सम्बन्धी छोटे मोटे नियम बनाये गये और वे १९१९ की ३ वैशाख (१६ अप्रिल) के कुछ सुधारोंके साथ पास कर दिये गये। इन नियमोंके अनुसार कोई भी मनुष्य या कंपनी भूमि मात्रका खर्चा दे कर जोतने बोनेके लिए राजकीय भूमिको लेसकता है। अपने जीवन भर वह उसपर कृषि कर सकता है परन्तु वह उस भूमिको अपने पुत्रोंमें नहीं बांट सकता। इस प्रकारके भूमि दानमें एक बातका ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। राज्यको धनके लोभके स्थान पर प्रजाके हितका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

भारतका राज्य

भारतमें भी आंग्ल राज्यने बन्दोबस्तकी रीतिका अवलम्बन किया है। परन्तु उसने बन्दोबस्तकी रीतिका समुचित प्रयोग नहीं किया है। भारतमें बन्दोबस्तका मतलब लगान बढ़ाना समझा जाता है। इससे भारतीय किसान ऐसा ही डरते हैं जैसा कि प्लेगसे। बारम्बार बन्दोबस्तके द्वारा लगानके बढ़ जानेसे किसानोंको खेतीके साथ

साथ मजदूरी द्वारा पेट पालना पड़ता है और सरकारका लगान उधारके रुपयोंसे चुकाना पड़ता है। यही कारण है कि भारतीय किसान तथा भारतीय राजनीतिज्ञ स्थिर लगानके पक्षपाती हैं। प्रजाहित इसीमें है कि लगान थोड़ा तथा स्थिर होना चाहिये।

लिराय ब्यूलि-यूका मत

महाशय ब्यूलियूकी सम्मति है कि "राज्यको जंगलोंकी भूमियां कभी भी किसी व्यक्तिको न देनी चाहिये"। इसका कारण यह है कि लोग जंगलोंको राज्यसे लेकर उनके संपूर्ण दरख्त काट डालते हैं और दरख्तोंकी लकड़ी बेच करके लाभ उठाते हैं। जिस स्थानपरसे एक बार जंगल कट जावें उस स्थानपर पुनः दूसरा जंगल खड़ा हो जाना कठिन हो जाता है। जंगलोंकी भूमिमें नमी होती है। दरख्तोंके कट जानेसे धीरे धीरे वह भूमि सूख जाती है। परिणाम इसका यह होता है कि उस सूखी जमीनमें पुनः दरख्त लगाना कठिन हो जाता है। यदि राज्य जंगलोंको अपने ही स्वत्वमें रखे और उसकी सूखी लकड़ी तथा खराब पेड़ प्रति वर्ष ठेका दे करके निकलवा दे और उसमें नये पेड़ स्वयं लगवावे तो इससे देशको बहुत ही अधिक लाभ पहुँच सकता है।" लिराय ब्यूलियूके इस विचारसे प्रायः सभी विचारक सहमत हैं। जंगलोंके कट जानेसे देशको स्थिर तौरपर नुकसान पहुँचता है। भारतीय

आंग्ल राज्यने जंगलोंके मामलेमें दूरदर्शितासे काम लिया। जंगलोंके संरक्षणमें उसका यत्न प्रशंसनीय है। परन्तु इसके साथ ही हम यहाँ पर यह कह देना भी उचित समझते हैं कि भारतीय आंग्ल राज्यको चाहिये कि वह जंगल सम्बन्धी कठोर नियमोंको हटा देवे। इसे प्रजाहितका विशेष ध्यान रखना चाहिये। उसको ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे गरीब किसानोंको जंगलोंसे मुफ्त ही सूखी लकड़ी मिल सके और उनके पशु हरी घास चर सकें।

द्वितीय परिच्छेद ।

राजकीय व्यवसायोंसे आय ।

'राजकीय व्यवसायोंसे आय' इस विषय पर विचार करनेसे पूर्व इसपर विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि राज्यको ,किन किन, व्यवसायोंमें हाथ डालना चाहिये ।

१-राज्यका भिन्न भिन्न व्यवसायोंको चुनना:—

मादक द्रव्यों पर सरकारी एकाधिकार

यूरोपीय देशोंके भिन्न भिन्न राज्योंने तमाखू, नमक, शराब आदिके कामोंको अपने हाथमें लिया है। राज्यको मादक द्रव्योंके व्यवसाय, आपके विचारसे अपने हाथमें न लेने चाहिये। राज्यको तो इन द्रव्योंका प्रयोग यथाशक्ति घटानेका यत्न करना चाहिये। इसी प्रकार भारतीय सरकारको नमकपर राज्यकर बहुत कम लगाना चाहिये, क्योंकि इससे गरीब लोगोंको बहुत कष्ट पहुँचता है। पञ्जाबकी नमककी खानें भारतीय सरकारके स्वत्वमें हैं। सरकारको नमकका दाम यथाशक्ति कमसे कम रखना चाहिये।

मुद्रा-निर्माण

संसारके सभ्य देशोंमें 'मुद्रा निर्माण' का काम राज्य ही करते हैं। इसमें राज्य बमवाई

अन्य कार्य

तकका खर्चा भी प्रजासे नहीं लेते । रेलोंपर भी आज कल राज्योंका ही दिन पर दिन प्रभुत्व होता जाता है। भारतमें इसका मुख्य कारण राजनीतिक है, परन्तु यूरोप तथा अमेरिकामें रेलों पर राजकीय प्रभुत्वका एक कारण यह भी है कि वह काम वहाँ लाभका काम है। पोस्ट आफिस, ट्राम, बिजलीकी रोशनी, जलका प्रबन्ध आदि आज कल दिन पर दिन राज्य ही करते हैं। यह इसी लिये कि इन कामोंसे अच्छा लाभ होता है। 'पत्र मुद्रा' का निकालना संसारके अन्य देशोंमें प्रायः बैंकोंके हाथमें है, भारतमें इसपर भी राज्यका ही प्रभुत्व है।

उपरिलिखित संपूर्ण व्यवसायों पर यदि एक दृष्टि डालें तो यह पता लग सकता है कि कुछ व्यवसायों पर राज्यका प्रभुत्व आयके विचार से है और कुछ पर प्रजाके हितके विचारसे।

राजकीय व्यवसाय

(१) आयके विचारसे राज्यका व्यवसायोंको अपने हाथोंमें लेना।—फ्रान्स आदि देशोंमें तमाखू और भारतमें अफीमका व्यापार राज्य आयकी दृष्टिसे करता है। नमक पर भी सभी देशोंमें प्रायः राज्यका ही एकाधिकार है। आजकल यूरोपीय राज्य लाटरीके द्वारा भी आय प्राप्त करते हैं।

समाजहित सम्बधी कार्य

(२) समाज हितके विचारसे राज्यका व्यवसायोंको अपने हाथमें लेना—कुछ ऐसे व्यवसाय

हैं जिन पर सामाजिक तथा राजनीतिक विचारसे राज्यका ही प्रभुत्व होना चाहिये । दृष्टान्त तौर पर*

मूल्य परिवर्तन सम्बन्धी कार्य	मुद्रा निर्माण, नोटोंका निकालना, पत्र मुद्रा सञ्चालक बैंक, विनिमय बैंक
विचार परिवर्तन सम्बन्धी कार्य	डाकखाने, तार घर, टैलीफोन
पदार्थों तथा मनुष्योंको इधर उधर लेजानेका काम	व्यापारीय रेलें ट्राम्वे
पदार्थों तथा बिजली या जल को देने तथा ले जाने वाले काम	नहरें, नागरिक जल प्रबन्ध, बिजलीकी रोशनी, बिजली देनेवाली कंपनी इत्यादि इत्यादि

भारतमें इन व्यवसायोंपर सरकारका प्रभुत्व या तो राजनीतिक दृष्टिसे है या आयकी दृष्टिसे ।

---

* लेखकका सम्पत्ति शास्त्र पु० विनिमय परि० 'भारवहन' 'मुद्रा', 'साख' इत्यादि इत्यादि ।

समाज हितसे एक भी व्यवसायको राज्यने अपने हाथमें लिया है या नहीं इसमें हमको सन्देह है। रेल्वेका प्रबन्ध इतना बुरा है कि शायद ही किसी सभ्य देशमें इतना बुरा प्रबन्ध हो। घूंस, पक्षपात तथा शाही कठोरता प्रत्येक रेल्वे स्टेशन पर दिखायी पड़ती है। माल गाड़ियोंमें आदमी लाद दिये जाते हैं जब कि किराया थर्ड तथा इन्टरका लेते हैं।

शिक्षा

(३) समाजकी सेवाके विचारसे लिये हुए राज्यके कामः—संसारके अन्य सभ्य देशोंमें राज्योंने समाजके हितसे शिक्षा देनेका काम अपने हाथमें लिया है। भारतमें इस काममें भी राजनीतिका (?) प्रवेश हो गया है।

व्यावसायिक कार्योंके करनेके बदलेमें राज्यका धन ग्रहण करना।

व्यावसायिक कार्योंके लिये राज्यका धन लेना ही कर है और मूल्य है। कर तथा मूल्यका जोड़ भी हम इसको नहीं कह सकते। भिन्न भिन्न व्यवसायोंके विचारसे ही इस पर विचार करना चाहिये और इसके स्वरूपका निर्णय करना चाहिये।

राज्यका आय को सामने रख कर काम करना

(१) आयके लिये राज्यका व्यापार-व्यवसायको करना-ऐसे कामोंके बदलेमें राज्य जो धन लेते हैं वह व्यापारीय कीमत (कामर्शल प्राइस) कहा

आता है। इसकीकीमत उसी प्रकार रखी जाती है जैसी कि एकाधिकारीय पदार्थोंकी कीमत रखी जाती है।*

(२) समाज हितके विचारसे राज्यका व्यवसायोंको अपने हाथमें लेनाः—ऐसे कार्योंकी रेट (दर) भिन्न भिन्न कार्योंके अनुसार भिन्नभिन्न होनी चाहिये। डाकखानेकी रेटके निम्नलिखित गुण हैं:—

डाकव्यय

(क) चिट्ठी आदि भेजनेके लिये एक पैसा या दो पैसा खर्च करना पड़ता है।

(ख) दूरीके विचारसे प्रायः दर भिन्न भिन्न नहीं होती है। कलकत्ते या मद्रास कहीं पर भी चिट्ठी भेजनी हो, दर एक ही है।

(ग) डाकके काममें सुगमता रहे अतः दर क्रमवृद्ध रखी जाती है। इससे बड़े बड़े बन्डलके द्वारा बहुत कम भेजे जा सकते हैं (?)।

रेल-किराया

रेल्वेकी दरमें निम्नलिखित गुणोंका होना अत्यन्त आवश्यक है।

(क) पदार्थोंके विचारसे दर भिन्न भिन्न होनी चाहिये न कि विशेष व्यक्ति, विशेष नगर या विशेष स्थानके विचारसे।

(ख) गाड़ी आदिके देनेमें तथा पदार्थोंके ले जानेमें पक्षपात न होना चाहिये और दूरीके अनुसार दर निश्चिय करनी चाहिए।

* महाशय आदम्स रचित फाइनान्स १८६८पृष्ठ२७७-२८४,२६१।२७७

समाज-सेवा-सम्बधी राजकीय काम

(३) समाजकी सेवाके लिये राज्यका काम करनाः—इन कार्योंमें राज्यको लाभ प्राप्त करनेका यत्न न करना चाहिये। इन कार्योंका बदला फीस या शुल्क कहाता है। शुल्क सञ्चालित कार्योंके खर्चोंको पूरा करनेके लिये ही लिया जाता है। अमेरिकामें जंगलकी रक्षाके लिये जो धन लिया जाता है वह शुल्क है। परन्तु भारतमें यह काम भी राज्यने आमदनीके लिए अपने हाथमें लिया है।

———

तृतीय परिच्छेद।

भारतीय सरकारकी प्रत्यक्ष आय।

सरकारको भारतवर्षमें सबसे अधिक आय भूमिसे प्राप्त होता है। सारे भारतकी भूमि सरकार अपनी भूमि समझती है। यदि सरकार भारतीय जनताकी प्रतिनिधि होती तो यह ठीक हो सकता था, क्योंकि इस हालतमें जाति तथा सरकार एक हो जाते और स्वाभाविक तौर पर ही जातिकी संपत्ति सरकारकी संपत्ति बन जाती। जो कुछ हो, सरकारने भारतकी भूमि जंगल, नदी, आकाशसे लेकरके कितने ही व्यवसायों तक पर अपना ही प्रभुत्व स्थापित किया है। परन्तु इस प्रभुत्वको कोई भी भारतीय न्याययुक्त नहीं समझता है। कुछ विदेशियोंने भी सारेके सारे मामलेको निष्पक्षपात भावसे देखा है और सरकारी प्रभुत्वका प्रतिवाद किया है। महाशय जोन ब्रिग्ज़का कथन है कि प्राचीन कालमें भारत की सारी भूमिपर राजाका स्वत्व कभी भी नहीं समझा गया। राजाकी अपनी भूमि बहुत थोड़ी होती थी। राजाओंने भी भारतकी सारी भूमि पर अपना स्वत्व कभी भी नहीं प्रगट किया। इसी प्रकारके विचार लार्ड लिटनके थे। महर्षि

भूमिमें आय

जातीय सम्पत्तिपर सरकारी प्रभुत्व

जोन ब्रिग्ज का मत

जैमिनिका मत

जैमिनिने तो मीमांसामें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि "न भूमिः सर्वान्प्रति अवशिष्टत्वात्" अर्थात् भूमि राजाकी नहीं है वह तो सारी जनताकी है।

इन सब उपरिलिखित युक्तियों तथा देश प्रथाओंका तिरस्कार करके सरकारने भारतकी सारी भूमिपर अपना ही स्वत्व स्थापित किया है और भूमिसे प्राप्त आयको राज्य करका नाम न देकर लगानका नाम देना शुरू किया है। यह क्यों? इसका मुख्य कारण यह है कि भौमिक कर-को लगान मान लेनेसे उसके बढ़ानेमें राज्याधि-कारी पूर्ण तौरपर स्वतन्त्र हो जाते हैं। उनको किसी भी सभा या समितिसे पूछना नहीं पड़ता है। संवत् १६७५-७६ में भारतीय सरकारका आनु-मानिक लगान ३३५३७५५०० रुपये था। परन्तु १६७०-७१ में भौमिक लगान ३२०८७३६२५ रुपये था। देश दिन पर दिन दरिद्र हो रहा है। भूमिकी उत्पादकशक्ति तथा करभारके कारण पदार्थोंकी उत्पत्तिमें जनताकी रुचि घटती जाती है परन्तु सरकारका लगान बड़ी तेजीके साथ बढ़ता जाता है। क्या ही आश्चर्यमय घटना है।

जंगलोंपर सरकारका प्रभुत्व

भूमिके सदृश ही भारतीय जंगलोंपर भी भारतीय सरकारने अपना प्रभुत्व स्थापित किया है। परिणाम इसका यह है कि चरागाहोंकी कमीके कारण और जंगलातके नियम कठोर होनेके कारण किसानोंपर विपत्तिके पहाड़ आ टूटे हैं। गौओं

तथा बैलोंका पालना उनके लिये बहुत ही कठिन हो गया है। हज़ारों वर्षोंसे गुर्जर जातिके लोग मसूरी, शिमला आदि पर्वतके जंगलोंमें अपनी भैंसे चराते थे परन्तु अब उन पर भी सरकारके कठोर नियम लगने लगे हैं। परिणाम इस कठोरताका यह है कि देशमें दूध दहीकी कमी हो गयी है। घी, मक्खन महंगा हो गया है। लकड़ियोंकी कमी के कारण किसान लोग गोबर जलाने लगे हैं। इससे ज़मीनोंमें खाद कम पड़ने लगा है और भूमिकी उत्पादक-शक्ति बहुत ही घट गयी है। जंगलोंसे प्राप्त आय भी भौमिक लगानमें ही जोड़ दी गयी है। अतः ऊपरकी आयमें इसको भी सम्मिलित ही समझना चाहिये।

व्यापार-व्यवसायमें सरकारका हाथ

भारतीय व्यापार व्यवसायमें भी सरकारका पूर्ण हाथ है। कुछ चीज़ोंमें जहां उसका एकाधिकार है वहां कुछ व्यवसाय भी उसीके हाथमें हैं। रेल तार डाकसे लेकरके अफीम गांजा शराब आदि पर उसीका प्रभुत्व है। इन चीज़ोंसे राज्यको इस प्रकार आय हुई है।

सरकारी आय

पदार्थ	वास्तविक आ. १९१३-१४ पाउण्ड	आनुमानिक आ. १९१८-१९ पाउण्ड	पदार्थ	वास्तविक आ. १९१३-१४ पाउण्ड	आनुमानिक आ. १९८१-१९ पाउण्ड
अफीम	१६१४८७८	३१९१८००	मिन्ट	३३९८४१	३७६००००
नमक	३४४५३०५	३४९२२००	रेल्वे	१७६२५६२४	२२९८३७००
			नहर	४७१३१५९	५३२०४००
डाक तथा तार	३५९८५१९	४७८२८००	शेष राष्ट्रीय कार्य	२९४६४०	३०४९००

रेल तथा नहर

उपरिलिखित सूचीमें रेल तथा नहरसे प्राप्त आय भी दी गयी है। अभी तक सारीकी सारी रेलें सरकारकी अपनी नहीं हैं। कुछ रेलें कम्पनियोंकी हैं। भारतमें रेलोंके बनानेमें सरकारने जो अनन्त धन खर्च किया है और जिस प्रकार रेलोंको गारैन्टी विधिपर चलाया है इसका एक रहस्यपूर्ण अपना ही पृथक इतिहास है। भारतीयोंका विचार है कि रेलोंकी अपेक्षा नहरोंकी वृद्धिपर सरकारको अधिक ध्यान देना चाहिये। परन्तु सरकार राजनीतिक विचारसे रेलोंको ही बढ़ा रही है। अफीम, गांजा आदिसे सरकारको जो आय प्राप्त होती है और यह आय जिस प्रकार प्रतिवर्ष बढ़ रही है इससे भारतीयोंको बहुत ही कष्ट है। मादक द्रव्योंका प्रयोग देशमें बढ़ना किस देश-प्रेमीको पसन्द हो सकता है? सरकारसे व्यवस्थापक सभामें प्रार्थना की गयी कि सरकार अपनी नीति बना लेवे कि वह मादक द्रव्योंके प्रयोगको न बढ़ने देगी परन्तु इसका उत्तर सन्तोषप्रद न मिला। सरकारने इस प्रार्थना पर ध्यान न दिया।*

---

* लेखकका बृहत्सम्पत्ति शास्त्र (धनका विभाग, भौमिक लगान) दत्तकी पुस्तकें—इण्डिया अण्डर अर्ली ब्रिटिश रूल, इण्डिया इन दि विक्टोरियन एज, फैमीन इन इण्डिया। कालेकी पुस्तकें—गोखले एण्ड एकोनामिक रिफार्म इण्डियन एकानामिक्स। वाचाके भाषण तथा लेख, ब्रिग्सका लैण्ड-टैक्स इन इण्डिया। जैमिनिका मीमांसा सूत्र।

तृतीय भाग

राष्ट्रीय व्यय

राज्य व्यय ही राजकीय कार्योंका एकमात्र बाधक है। साधारण मनुष्य आयके हिसाबसे व्यय करते हैं परन्तु राज्य व्ययको सामने रख करके ही आय प्राप्त करनेका यत्न करते हैं, क्योंकि अर्थसचिव संपूर्ण व्ययोंका पहले पहल बजट बनाता है और फिर व्ययको दृष्टिमें रखते हुए कर घटाने बढ़ानेका विचार करता है। कर दे सकनेकी भी एक सीमा है। यही कारण है कि बहुधा राज्योंको जातीय ऋणके द्वारा राजकीय व्ययोंको पूरा करना पड़ता है। जब राज्यके व्यय आयसे अधिक हो जावें तब बड़ी कठिनता उपस्थित होती है। लोग अधिक कर देना पसन्द नहीं करते हैं, अतः लोगोंसे उनकी इच्छाके विरुद्ध कर लेना संभव नहीं होता है। इस दशामें खर्च चलानेके लिये अधिक धन कहांसे प्राप्त किया जाय? ऐसे कष्टके समयमें राज्य जातीय ऋणको ही एकमात्र अपना सहारा बनाते हैं।

जातीयऋण द्वारा राज्यका निर्वाह करना कहां तक ठीक है? क्यों न राज्यको अपने व्ययको

ही घटानेका यत्न करना चाहिये ? अथवा राज्य कर लगानेके स्थान पर लाभदायक बड़े बड़े जातीय व्यवसायोंको अपने हाथमें ले करके लाभ द्वारा ही क्यों न अपने व्ययोंको पूरा करे, राज्यका कर लगाना किन सिद्धान्तों पर आश्रित है ? करका स्वरूप तथा इतिहास क्या है ? इत्यादि इत्यादि प्रश्नों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

आजसे बहुत समय पूर्व आदमस्मिथने राजकीय आय तथा करके सिद्धान्तोंकी गंभीर गवेषणा करनेका यत्न किया। परन्तु राजकीय व्यय तथा उसके सिद्धान्तों पर उसने कुछ भी प्रकाश डालनेका यत्न न किया। राजकीय व्ययका क्षेत्र भी राजकीय आयके सदृश ही अनन्त रत्नोंसे परिपूर्ण है और आशा की जाती है कि राजकीय व्ययके सिद्धान्तोंके पता लगानेसे राजकीय आय तथा करके सिद्धान्तोंकी सत्यता पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा। उपलब्धि तथा मांग, व्यय तथा उत्पत्ति, निर्यात तथा आयातके सदृश ही राजकीय आय तथा व्यय परस्पर सापेक्ष हैं। मांग तथा व्ययसे जैसे उपलब्धि तथा उत्पत्ति सिद्धान्तकी उन्नति हुई है वैसे ही राजकीय आयके सिद्धान्तोंसे राजकीय व्ययके सिद्धान्तोंमें उन्नति होना बहुत संभव है। यही कारण है कि अब हम राजकीय व्ययपर कुछ लिखेंगे, क्योंकि बहुत संभव है कि

राजकीय आय दर तथा कर प्रक्षेपणके सिद्धा-न्तोंसे राजकीय व्ययके अन्धकारमय क्षेत्रमें कुछ प्रकाश पड़े और हम उसके सिद्धान्तोंका पता लगानेमें भी समर्थ हो सकें। कौनसे आश्चर्यकी बात है कि राजकीय आय या करकी समानता (इक्वलिटी), सुगमता (कनवेनियेन्स), स्थिरता (सर्टेनटी), तथा मित व्ययिता (एकानामी) के, सूत्रोंके सदृश ही राजकीय व्ययमें भी सूत्र होवें ? और कर-प्रक्षेपणके सदृश ही व्ययके भी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष परिणाम होवें ?

———

प्रथम परिच्छेद।

राजकीय व्ययका स्वरूप।

१—आर्थिक स्वराज्य।

राजकीय आयके सदृश ही राजकीय व्यय पर गम्भीर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। महाशय ग्लैडस्टनने ठीक कहा है * कि आय-व्यय की उत्तमताका आधार, कर एकत्र करनेमें इतना नहीं है जितना कि कर-प्राप्त धनके व्ययमें है। इसका मुख्य कारण यह है कि करप्राप्त धन परिमित होता है और बहुतबार बढ़ाया भी नहीं जा सकता है। ऐसी दशामें व्यय करनेमें ही कमी की जा सकती है। व्ययमें सावधानी करनेसे आयकी कमीके कारण जो कठिनता उत्पन्न हो जाती है वह दूर हो सकती है। यही नहीं व्ययमें असावधानीके परिणाम भयंकर हो जाते हैं। राज्य ऋण-ग्रस्त हो जाता है और सारी जनताको राज्यकी बेवकूफीके कारण तकलीफ उठानी पड़ती है। एक और कारणसे भी व्यय करनेमें चातुर्यकी आवश्यकता है। प्रत्येक सभा-

ग्लैडस्टन

व्यय-चातु

* सर ए० वेस्ट कृत "रिकलेक्शन्स आफ मि० ग्लैडस्टन" जिल्द २, पृष्ठ ३०९।

सुधारक तथा प्रत्येक राजकीय—विभाग अधिक अधिक धन मांगता है। नौ विभाग, सेना-विभाग, दरिद्र संरक्षण, दुर्भिक्ष कोष, स्वास्थ्य आदिमें किसको कितना धन मिलना चाहिये और कहां पर कितना धन दिया जा सकता है, इसके विचार करनेमें और विचारके अनुसार धन बांटनेमें राज्योंको बड़ी भारी सावधानी करनी चाहिये।

व्ययमें राज्यों की असावधानी

परन्तु भिन्न भिन्न राज्योंने अभी तक व्ययमें उचित सावधानी नहीं की है। आंग्ल राजाओंके व्ययोंकी स्वच्छन्दताको देखकर जनताने उनकी आयके साधनोंका परिमित किया परन्तु जब इससे भी काम न चला, तब व्ययको स्वीकृति देना भी उसने अपनेही हाथमें ले लिया। इंग्लैण्डके राजकी स्वच्छन्दताको देख कर अमेरिकामें जागृति हुई और उसने "बिना प्रतिनिधियोंके कोई कर कर ही नहीं कहा जा सकता है," इस सूत्र को उद्घोषित किया और इस पर भी जब इंग्लैण्डने कर-ग्रहणमें अपनी स्वच्छन्दता कम न की तो अमेरिका स्वतन्त्र हो गया। आजकल फ्रान्स, जर्मनी, स्विट्ज़रलैण्ड, आष्ट्रिया आदि सभी देशोंको आर्थिक स्वराज्य प्राप्त है। आय-व्ययका निश्चय जनता स्वयं हीकरती है।

अमेरिकामें आर्थिक स्वराज्य

भारतीय धन-व्ययमें राज्य का स्वेच्छाचार

भारतमें भी आय-व्ययके मामले में राज्यकी स्वेच्छाचारिता अनन्त सीमातक बढ़ी हुई है। आय-व्ययके पास करनेमें जनताको कुछ भी स्वतन्त्रता नहीं मिली है। परिणाम इसका

यह है कि राज्यकी फजूलखर्चीका कोई ठिकाना नहीं है। प्रायः प्रजाके हितका ख्याल न कर भारतीय व्यवसायोंपर राज्य-कर लगाये जाते हैं। संवत् १९३७ का ३½% व्यावसायिक कर इसीका प्रत्यक्ष उदाहरण है। सेना तथा अंग्रेज़ोंकी तनख्वाहों पर भारतीय राज्य जो धन व्यय कर रहा है वह फजूलखर्चीका एक अच्छा उदाहरण है। रेलोंके बनानेमें जो रुपया फूँका जा रहा है और भारतीय राज्यको भिन्न भिन्न लड़ाइयोंमें डाल कर जो खर्चा बढ़ाया जाता है वह इस बातको सूचित करता है कि भारतको आर्थिक स्वराज्यकी कितनी ज़रूरत है।

२–राजकीय व्ययका वर्गीकरण।

यह कहना निरर्थक ही प्रतीत होता है कि राजकीय आय राष्ट्रके हितमें खर्च होनी चाहिये। जर्मनीमें राष्ट्रीय हितकी अधिकता तथा न्यूनताको आधार रख करके व्ययका वर्गीकरण किया गया है। अमेरिकन लेखकोंने भी इसी वर्गीकरणको स्वीकृत किया है। प्रोफेसर सीहनने इस वर्गीकरणको संक्षेपसे इस प्रकार प्रगट किया है। (सीहनका वर्गीकरण)

(१) जिस राजकीय व्ययसे संपूर्ण जनताका हित हो वह राजकीय व्यय प्रथम कक्षाका है, उदाहरणके लिये देशसंरक्षणार्थ राजकीय व्यय इसी कक्षाका है।

२—जिस राजकीय व्ययसे किसी एक श्रेणीके ही मनुष्योंको सर्वसाधारणके हितमें लाभ पहुंचाया जाय वह राजकीय व्यय द्वितीय कक्षाका है। दरिद्र संरक्षणमें किया गया राजकीय व्यय इसी श्रेणीका है।

३—जिस राजकीय व्ययसे कुछ व्यक्तियोंके साथ साथ सर्वसाधारणको लाभ पहुंचे वह राजकीय व्यय तृतीय कक्षाका है। न्याय वितीर्ण करनेका राजकीय व्यय इसी कक्षाका है।

४—चतुर्थ कक्षाका राजकीय व्यय वह है जिससे विशेष विशेष व्यक्तियोंकोही लाभ मिले। राष्ट्रीय व्यवसायों पर राजकीय व्यय इसी प्रकारका है।*

आदमका मत

उपरिलिखित वर्गीकरण महाशय आदमके विचारमें त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि उसमें लाभके विचारसे वर्गीकरण करना शुरू करके धन व्ययके प्रश्नको वृथा ही मिला दिया है। दोनों बातोंपर पृथक् पृथक् ही विचार करना चाहिये। दृष्टान्त तौर पर लाभके विचारको ही लीजिये। राजकीय धन व्ययका मुख्य उद्देश्य प्रायः सर्वसाधारणका हो हित होता है। यदि उसके द्वारा किसी विशेष श्रेणीके मनुष्योंको लाभ पहुंचता है तो यह उसका अप्रत्यक्ष प्रभाव ही है। यही नहीं, उपरिलिखित वर्गीकरणमें राष्ट्र संरक्षण प्रथम कक्षामें रखा

---

* प्रो. प्लीहनका पब्लिक फाइनान्स पृ. २८।३२ (दूसरा संस्करण १९००)

गया है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि बहुधा राज्यों ने ऐसे युद्धोंमें राजकीय धनका व्यय किया है जिनका कि आरम्भ वैयक्तिक या स्थानीय था। इसी प्रकार दरिद्र-संरक्षणमें धनव्यय किसी एक विशेष श्रेणीसे सम्बद्ध है परन्तु इसका प्रभाव सर्व साधारणके लिये उत्तम तथा लाभप्रद है, क्योंकि दरिद्र-संरक्षण द्वारा देशमें अपराधोंकी संख्या कम हो जाती है और इस प्रकार इससे सभी को लाभ पहुंचता है। अधिक क्या निःशुल्क शिक्षा को ही लीजिये। यद्यपि निःशुल्क शिक्षासे विशेष श्रेणीके बालकों तथा माता पिताओंको लाभ पहुँचता है परन्तु इससे सर्वसाधारणका हित इस हद तक अधिक समझा जाता है कि प्रोफेसर सीहनने इसको प्रथम कक्षाके राजकीय व्ययमें स्थान दिया है। सारांश यह है कि लाभ तथा धनव्ययके प्रश्नको परस्पर मिलाना न चाहिये। धन व्ययको आधार रख करके राजकीय व्ययका वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है और वही वर्गीकरण सबसे उत्तम है।

धनव्ययके आधारपर राज्य-व्ययका वर्गीकरण

१ (क) प्रथम कक्षाका राजकीय व्यय वह है जिसके बदलेमें राज्यको कोई विशेष आय न प्राप्त हो। इसका उदाहरण दरिद्र-संरक्षणमें किया गया राजकीय व्यय है। इसीको यदि अन्तिम सीमा देखना हो तो युद्धके राजकीय व्ययको ले लो।

प्रथम कक्षाका राजकीय व्यय

द्वितीय कक्षाका राजकीय व्यय

(ख) द्वितीय कक्षाका राजकीय व्यय वह है जिसके बदलेमें प्रत्यक्ष तौरपर राज्यको कोई आय न प्राप्त होती हो। इसका उदाहरण शिक्षा-का व्यय है। शिक्षापर व्यय करनेसे जनताकी शिक्षा द्वारा कार्यक्षमता बढ़ जाती है और राज्य-को कर एकत्र करनेमें सुगमता होजाती है। इस प्रकार कार्यक्षमताके बढ़नेके द्वारा एक ओर जनताकी आय बढ़ती है और दूसरी ओर कर एकत्र करनेमें राज्यका खर्च कम हो जाता है। इस प्रकार शिक्षाके व्यय द्वारा राज्यको अप्रत्यक्ष तौरपर आय ही है *।

तृतीय कक्षाका राजकीय व्यय

२ (क) तृतीय कक्षाका वह राजकीय व्यय है जिससे राज्यको व्ययके साथ ही साथ आय भी हो। इसका उत्तम उदाहरण रेल्वे तथा शिक्षा है जिनमें फीसके द्वारा राज्यको आय होती रहती है।

(ख) चतुर्थ कक्षाका वह राजकीय व्यय है जिससे राज्यको पूर्ण आय होती है और प्रायः

* प्रथम तथा द्वितीय कक्षाके क और ख मे बहुत थोड़ा भेद है। प्राय. सभी राजकीय व्यय अप्रत्यक्ष तौरपर लाभदायक होते हैं। यद्यपि युद्धका प्रत्यक्ष लाभ कुछ भी न हो तो भी अप्रत्यक्ष लाभ बहुत ही ध्यान देने योग्य है। यह कौन कह सकता है कि इग्लैण्ड-की जातीय समृद्धिमें युद्धोंका कुछ भी भाग नहीं है। उपरिलिखित वर्गीकरण प्रत्यक्ष लाभको सन्मुख करके किया गया है। युद्ध तथा शि-क्षाके व्ययमें बहुत थोड़ा भेद है। सारांश यह है कि प्रथम क तथा ख और द्वितीयके क तथा ख में बहुत थोड़ा भेद है।

लाभ भी मिलता है। राजकीय व्यवसाय, डाक-खाना तार घर आदि इसीके उदाहरण हैं।

३—राजकीय व्यय की उचित विचारशैली।

मनुष्यको अपने शरीरकी रक्षाके लिये जिस प्रकार धन व्यय करना पड़ता है उसी प्रकार राज्यको राष्ट्र रूपी शरीरकी रक्षाके लिये धन व्यय करना पड़ता है। व्ययमें व्यष्टिवादको जो लाभ हैं उनपर प्रकाश डाला जा चुका है। यही कारण है कि राष्ट्रीय-धन-व्ययमें आर्थिक स्वराज्य-को सभी, 'आय व्यय' सम्बन्धी लेखकोंने स्वयं-सिद्ध माना है। इस प्रकरणमें जो कुछ प्रश्न उठता है वह यही है कि 'राजकीय व्यय' पर किस शैलीसे विचार किया जाय? क्या राजकीय व्यय भी वैयक्तिक व्ययके सदृश ही समझा जाय? या इन दोनोंमें कुछ ऐसे महान् भेद हैं जिनसे वैयक्तिक व्ययमें समानता लुप्त हो जाती है? इस प्रश्न पर भिन्न भिन्न लेखकोंके भिन्न भिन्न मत हैं। प्रायः अधिक लेखक भेदको ही मुख्यता देते हैं। ऐसी दशामें इसपर विस्तृत तौरपर विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

वयक्तिक व्ययमें राजकीय व्यय की तुलना

(१) राजकीय व्ययका वैयक्तिक दृष्टिसे विचारः—राजकीय व्ययका वैयक्तिक व्ययसे पार्थक्य दिखानेके लिये आम तौरपर यह कहा जाता है कि व्यक्ति आयके अनुकूल व्यय करते हैं,

राजकीय व्यय का वैयक्तिक दृष्टिसे विचार

राज्यमें व्यय-की मुख्यता

किन्तु राज्य व्ययके अनुकूल आय प्राप्त करते हैं अर्थात् व्यक्तियोंमें आयकी मुख्यता है और राज्योंमें व्ययकी मुख्यता है।

उपरिलिखित विचार सत्यसे बहुत कुछ दूर है क्योंकि चाहे व्यक्ति हो और चाहे राज्य हो, दोनोंमें ही भिन्न भिन्न समयों तथा परिस्थितियोंके अनुसार ही आय तथा व्ययकी पारस्परिक मुख्यता रहती है। प्यासके कारण मरता हुआ मनुष्य जीवन संरक्षणार्थ एक कटोरा भर पानीके लिये १०० रुपया भी दे सकता है। परन्तु वही मनुष्य प्यास न होनेपर पानीके लिये कानी कौड़ी भी नहीं दे सकता है। सारांश यह है कि खास खास समयों में सभी व्यक्ति व्यय को मुख्यता देते हैं। यही बात राज्यके साथ है। राष्ट्र संरक्षणार्थ राज्य अरबों रुपया व्यय कर देते हैं और फिर भी वह फजूल खर्च नहीं समझे जाते। परन्तु वही राज्य यदि राज्य सेवकोंको आवश्यकतासे अधिक तनखाह देवे या रेल आदियों पर अन्य विभागोंकी अपेक्षा धनका व्यय अधिक करे तो समाज इसको फजूल खर्च ठहरा देता है और उसके व्ययों पर अपना नियन्त्रण स्थापित करता है।

राजकीय व्यय-की सीमा

इसी प्रकार यदि और गम्भीर विचार किया जाय तो पता लगेगा कि वैयक्तिक आयव्ययके सदृश ही राजकीय आयव्ययकी एक हद है।

राज्य अपनी आयों तथा व्ययोंको अपरिमित सीमा तक नहीं बढ़ा सकता है। यही कारण है कि समृद्ध तथा दरिद्र जनताके राजकीय आयव्ययोंमें आकाश पातालका अन्तर है। समृद्ध जनताके राज्य जिन बड़े बड़े खर्चके नवीन कामोंको करते हैं, दरिद्र जनताके राज्योंकी शक्तिसे वे नवीन काम कोसों दूर होते हैं। अमेरिकन राज्यने पनामाकी नहर बना ली, परन्तु भारतीय राज्य ऐसे कामोंको करनेमें सर्वथा अशक्त है।* इस प्रकार स्पष्ट है कि 'व्यय' चाहे व्यक्तिका हो, चाहे राज्यका हो, दोनों ही अपनी अपनी आयोंको देख करके ही व्यय करते हैं।

राजकीय माँग का महत्व

बहुतसे विचारक राजकीय कार्यक्रमको स्थूल दृष्टिसे देख यह कहते हैं कि जनताको राज्यकी धन सम्बन्धी मांगको, पूरा करना ही पड़ता है चाहे वह कितनीही अधिक क्यों न हो। राजकीय मांगके ऊपर ही राजकीय आयका आधार है। परन्तु यह विचार भयंकर भ्रमसे परिपूर्ण है, क्योंकि राजकीय मांगके ऊपर राजकीय आयका आधार नहीं है। राज्यकी धन सम्बन्धी मांगकी कोई हद नहीं है। यदि उनको जनताकी ओरसे कुछ धन मिलता है तो वह उनकी आवश्यक मांगके लिये ही मिलता है। सारांश यह है कि राजकीय मितव्ययिताका आधार सामाजिक मितव्ययिता है। सभी सभ्य जातियोंने आर्थिक स्वराज्य प्राप्त

कर राज्यकी फजूलखर्चियोंको रोक दिया है भारतवर्ष को भी तो इसी लिये आर्थिक स्वराज्यकी जरूरत है। राजकीय फजूल खर्चीको इस लिये भी रोकना आवश्यक है कि उससे जातिकी उत्पादक शक्ति, पदार्थोंको उत्पत्तिमें रुचि, तथा जातीय जीवन नष्ट हो जाता है। वास्तविक बात तो यह है कि राज्य तथा समाजकी आवश्यकताओंमें परस्पर सम्बन्ध है। किसी एकको अधिक महत्व देना कठिन है। यही कारण है कि राजकीय आयव्ययका आधार राष्ट्रशरीरकी आर्थिक शक्तिपर निर्भर रहता है। राज्यके द्वारा जातीय धनके व्ययका मुख्य उद्देश भी यही है कि जाति तथा जनताका हित हो। राज्यका यह कर्त्तव्य है कि वह जातीय आयको समाजके भिन्न भिन्न विभागोंमें इस प्रकार बांटे कि उसके संपूर्ण अंगोंको जीवन मिले अर्थात् राष्ट्र शरीरके संपूर्ण अंगोंकी स्वाभाविक वृद्धि हो और उसका आकार बेडौल न होने पावे। इसीसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वैयक्तिक तथा सामाजिक आयव्ययमें कितनी अधिक समानता है।

सामाजिक दृष्टिसे राजकीय व्ययका विचार

(२) राजकीय व्ययका सामाजिक दृष्टिसे विचार-व्यक्ति तथा समाजके, आकार, शरीर जीवन आदि कई बातोंमें बड़ा भारी भेद है। साधारण मनुष्यका आकार तथा शरीर छोटा और

जीवन परिमित होता है। मनुष्यकी अधिकसे-अधिक माध्यमिक आयु शास्त्रोंमें १०० वर्ष लिखी है। परन्तु समाजके साथ यह बात नहीं है। समाजका शरीर बड़ा है और उसका जीवन अपरिमित है। यही कारण है कि व्यक्ति तथा समाजके धन व्ययमें कुछ आधारभूत भेद हैं जिनको कभी भी भुलाना न चाहिये।

व्यक्ति तथा सामाजिक धन व्ययमें भेद

(१) मनुष्य अल्पायु है अतः वह ऐसे कार्योंमेंही अपना धन लगाता है जिनसे कि उसको अपने जीवन कालमें ही आय प्राप्त हो जाय। परन्तु समाजके साथ यह बात नहीं है। समाज अपना धन ऐसे ऐसे कार्योंमें भी लगा देता है जिनका कि फल उसको सदियोंके बाद मिलता है। शिक्षामें भिन्न भिन्न राज्य धन व्यय करते हैं। यह इसी लिये कि उनको यह आशा है कि चिरकालके बाद शिक्षाके कारण समस्त समाजका जीवन उन्नत हो जावेगा और उसकी उत्पादक शक्ति तथा आचार बढ़ जावेगा। भिन्न भिन्न प्रकारके आविष्कारोंके निकालनेमें भी राज्य इसीलिये अपना धन फूंक रहा है।

व्यक्ति तथ समाजकी आयु में भेद

(२) साधारण मनुष्य अपनी लाभ कमानेके लिये शीघ्र ही भिन्न भिन्न व्यावसायिक कार्योंसे लाभ प्राप्त करना चाहता है। परन्तु समाजको अपनी लाभ कमानेकी कुछ भी जरूरत नहीं होती है, अतः वह अपने धनको ऐसे कार्योंमें भी खर्च करता

व्यक्ति तथ समाजकी मा खमें भेद

है जिसका कि फल उसको बहुत ही अधिक मिलता हो। भिन्न भिन्न सभ्य समाजोंने अपनी अपनी भूमियोंमें कृत्रिम जंगल बनानेका यत्न किया है। इस काममें सफलता प्राप्त करनेके लिये कमसे कम ३० वर्ष चाहिये। भला साधारण मनुष्य कब ऐसे कामोंमें अपना रुपया फँसाने लगे परन्तु समाजके साथ यह बात नहीं है। वह ऐसे कामोंमें रुपया लगा देता है जिससे भावी समाजको लाभ पहुँचे।

व्यक्ति तथा समाजके आर्थिक लाभमें भेद

(३) धन-व्ययके भेदके सदृशही वैयक्तिक तथा सामाजिक लाभ भी भिन्न भिन्न है। व्यक्ति लाभको रुपयोंके द्वारा मापते हैं। समाज धन-योगके लाभको उत्पादक शक्ति द्वारा मापते हैं। जिससे समाजकी उत्पादक शक्ति बढ़े वही धन-योग उत्तम समझा जाता है। इस प्रकार उत्पादक शक्तिको बढ़ा कर समाज अपनी आयके स्थानोंको बढ़ा लेता है। राष्ट्रके अन्तरीय तथा बाह्य विघ्नोंको दूर करनेके लिये देशमें शान्ति स्थापित करनेके लिये न्याय-विभागपर किये गये खर्च इसी श्रेणीके हैं। कुछ ही समयकी बात है कि इटलीने चोरों तथा डाकुओंको कम करनेके लिये अनन्त धन खर्च किया। परिणाम इसका यह हुआ कि इन अन्तरीय विघ्नोंके कम होनेसे देशका व्यापार व्यवसाय चमक उठा और राज्यकी आय बढ़

गयी । जर्मनोंने नहरोंपर जो रुपया खर्च किया है उसका भी यही कारण है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजकीय तथा वैयक्तिक आय-व्ययमें समानताके सदृश ही दोनोंके आकार, शरीर तथा जीवनकी भिन्नताके कारण कुछ एक मौलिक भेद भी हैं जिनको भुलाना न चाहिये * ।

४-सामाजिक, व्यावसायिक, राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्थाओंका आय-व्ययके साथ सम्बन्ध ।

इस प्रकरणमें किसी समाजकी व्यावसायिक, राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्थाका राज्यव्यय पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर प्रकाश डालने का यत्न किया जायगा ? यह आश्चर्य्यपूर्ण घटना है कि प्रत्येक अवस्थाका राज्य-व्ययपर नवीन नवीन प्रभाव पड़ता है ।

[१]

समाजकी व्यावसायिक अवस्था तथा राज्यव्यय ।

समाज तथा राज्य-व्यय

राज्यको आय समाजसे ही होती है । समाज ही उसको राजकीय कार्य तथा देशका शासन

* आदम्स कृत साइन्स आफ फाइनन्स, भाग १, खण्ड १, प्रकरण १ पृ० २५-३०

करनेके लिये धन देता है। कौनसा समाज राज्य को कितना धन दे सकता है यह उसकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंपर निर्भर है। इन अवस्थाओंमें व्यावसायिक अवस्था भी, सम्मिलित है जिसकी अवहेलना कभी नहीं की जा सकती। राज्यको समाजकी आयका कुछ भाग ही मिलता है। यदि यह आय पर्याप्तसे अधिक हो तब तो राज्य बहुत-से छोटे छोटे विभागोंको भी आवश्यक सहायता पहुंचा सकता है। परन्तु यदि ऐसा न हो तो राज्यका कई विभागोंका धनकी सहायता न देना स्वाभाविक ही है। दृष्टान्तके तौरपर अमरीकाकी उत्पादक शक्ति १८४४ की अपेक्षा इस समय बहुत बढ़ गयी है। परिणाम इसका यह है कि अब उस-

अमरीकाका राजकीयकी व्यय

को लगभग ६३ लाख रुपयोंके स्थानपर लगभग ११८ करोड़ धन राजकीय व्ययोंके लिये मिलता है। यही कारण है कि करभारका अनुमान करनेके लिये समाजकी आर्थिक अवस्थाका निरीक्षण आवश्यक है, क्योंकि करकी राशिकी कमी या अधिकतासे कुछ भी पता नहीं लगता है कि किस समाजपर करका भार अधिक है वा कम है * । भारतमें करकी धनराशि बहुत थोड़ा है तो भी

भारतमें राज्यकर

भारतीय जनतापर राज्यकर आंग्लोंसे तीन गुना

* वही पुस्तक, पृ० ३८

अधिक है । यह क्यों ? क्योंकि भारतीय अति दरिद्र तथा निर्धनी हैं **

देशकी व्यावसायिक दशा तथा राज्यव्ययका अति घनिष्ट सम्बंध है । सामाजिक विकासका यह मौलिक नियम है कि मनुष्यकी आवश्यकतायें

** आय-व्यय-सचिव महाशय सर जान स्ट्रेचीका कथन है कि संसारमें एक भी सभ्य शासित देश नहीं है जिसमें भारतवर्षसे भी हल्का कर होवे' (इण्डिया १८९४)। इसको उनका यह कथन सत्य प्रतीत नहीं होता है क्योंकि भारतवर्षमें प्रति मनुष्यकी १९०१ लग-भग वार्षिक आय १ पौंड २ शि. ४ पेंस थी जब कि उसपर राज्यकर ३ शि. ३ पेंस था। अर्थात कुल आयका ७वां भाग भारतीयोंको राज्यकरमें देना पड़ता है। परन्तु स्काटलैण्डमें प्रति मनुष्यकी वार्षिक आय ४५ पौंड है, और उसको इस आयका १/१७वां भाग राज्य को करके तौरपर देना पड़ता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीयों पर स्काच लोगोंकी अपेक्षा चौगुना अधिक कर है। इसी प्रकार अंग्रेजोंकी अपेक्षा भारतीयोंपर तीन गुना भार है।

हम पूर्व प्रकरणोंमें यह दिखा चुके हैं कि दरिद्र समाज तथा समृद्ध समाजपर एक सदृश लगा हुआ भी कर दरिद्र समाजके लिये हानिकर होजाता है क्योंकि इससे उसका उत्पादक शक्ति तथा पदार्थोंके उत्पन्न करनेमें जनताकी रुचि घट जाती है। यही कारण है कि भारतवर्ष दिनपर दिन दरिद्र होरहा है।

कर भारकी अधिकताको आंग्ल लोगोंने स्वयं भी मानना शुरू कर दिया है। सन् १८९८ की अगस्त वाली आंग्ल प्रतिनिधि सभाकी बैठकमें करभारकी कठिनताको प्रगट करते हुए महाशय सैम्युएलस्मिथ एम० पी० ने यह शब्द कहे थे कि भारतके अन्दर ७०० मनुष्योंके पीछे केवल एकही आदमी की ५० पाउण्डकी वार्षिक आय है। प्रासपरस ब्रिटिश इण्डिया (डिग्बी ६-१०

अपरिमित सीमा तक बढ़ सकती हैं परन्तु उनकी वृद्धि उनके सापेक्षिक महत्वके अनुसार ही होती है। महाशय बैन्थमने ठीक कहा है कि "सन्तोषके साथ साथ मानुषीय आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं। वे ज्यों ज्यों बढ़ती हैं त्यों २ उनका क्षेत्र बढ़ता चलता है। नवीन आवश्यकतायें उनका साथ देती हैं और मनुष्यकी क्रियाओंका आधार बन जाती हैं।" इस प्रकार यह स्पष्ट हो है कि सामाजिक विकासके साथ साथ नवीन नवीन आवश्यकतायें उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी दशामें समाजकी व्यावसायिक उन्नतिसे राजकीय व्ययों और आयों-की सीमाका बढ़ जाना स्वाभाविक ही है।

बैन्थम

व्यावसायिक देशोंमें राजकीय व्यय प्रायः बहुत ही अधिक होता है। यह क्यों? यह इसी लिये कि व्यावसायिक उन्नतिको ओर पग बढ़ाने वाले देशोंकी आय बहुत ही अधिक बढ़ जाती है और इस प्रकार राज्यकी आय तथा व्ययका बढ़ना स्वाभाविक ही है। व्यावसायिक देश भी राज्यकी आयको बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि इससे बहुतसे विभागोंको धनकी सहायता मिल जाती है और समाजकी व्यावसायिक कर्मण्यता और भी अधिक बढ़ जाती है। भिन्न भिन्न व्यवसायोंको राजकीय सहायताके मिलनेसे किस प्रकार देशकी समृद्धि बढ़ती है इसपर बाधित तथा अबाधित व्यापारके खण्डमें विस्तृत तौरपर प्रकाश डाला जा चुका है।

व्यावसायिक देशोंमें राजकीय व्ययकी अधिकता

[२]

समाजकी राजनीतिक अवस्था तथा राज्यव्यय।

व्यावसायिक कारणोंके सदृश ही राजनीतिक कारण भी राज्यके व्ययको अपरिमित सीमा तक बढ़ा देते हैं। समाजका राजनीतिक अवस्थाके 'बाह्य तथा अन्तरीय' दो भेद हैं। विषयको स्पष्ट करनेके लिये इनपर पृथक् पृथक् ही विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

राज्यव्ययमें राजनीतिक 'बाह्य परिस्थिति' भाग

[१] राजनीतिक 'बाह्य परिस्थिति' तथा राज्य व्ययः—राज्य-व्यय तथा जातियोंके पारस्परिक जीवन संघर्षका सम्बन्ध अति घनिष्ठ है। यूरोपीय देश स्थल-सेना तथा नौसेनापर जो धन फूंक रहे हैं वह किसीसे भी छिपा नहीं है। शोक तो यह है कि एशियामें भी अब यही घटना दिखायी पड़ती है। जापान, चीन तथा भारतमें भी सेनापर खर्च दिनपर दिन बढ़ाया जा रहा है। *

---

* सन् १८६८ के अनन्तर इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, आस्ट्रिया रूस, तथा इटलीकी सेना आदिपर प्रतिवर्ष राजकीय व्यय इस प्रकार बढ़ा।

यूरोपके सेना व्यय

सन्	राजकीय व्यय
१८६८	५२१२५०००० × २५/८ रु०
१८७३	६२२२५०००० × २५/८ रु०
१८८२	७३२३००००० २५/८
१८८८	९०१०००००० २५/८
१८९५	९३०६००००० २५/८

प्रत्येक राजनीति-शास्त्रज्ञ यह अच्छी तरह से

भिन्न भिन्न राज्य किस प्रकार सामाजिक धनको सेनापर फूंक रहे हैं, विक्टोरिया रियासत इसका बहुत ही उत्तम उदाहरण है। विक्टोरिया रियासतमें कुल राजकीय व्ययका लगभग आधा धन सेना आदि पर ही खर्च होता है। आदम्सकृत 'पब्लिक फाइनन्स'।

भारतवर्ष आर्थिक स्वराज्य रहित देश है। यद्यपि भारतीय जनता अपने धनको फूँकना नहीं चाहती तो भी भारतीय राज्य सेना पर दिन पर दिन खर्चा बढ़ाता ही जाता है। इस खर्चका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि संवत् १९६६ में भारतीय राज्यको लगानके तौर पर ३०·८२ (?) करोड़ रुपया मिला था इसमेंसे उसने २८·६६ करोड़ रुपया एकमात्र सेना आदि पर ही खर्च कर दिया। इस खर्चेकी वृद्धिका अनुमान उसीसे लगाया जा सकता है कि इससे दश वर्ष पूर्व सेना पर इतना खर्च न था। गणनासे मालूम पड़ा है कि भारतीय राज्यने (सेनापर) २३·५३ प्रति शतक खर्चा पिछले दश वर्षोंमें ही बढ़ा दिया है। भारतमें प्रति वर्ष आंग्ल राज्यने किस प्रकार सेनापर खर्च बढ़ाया है उसका ब्योरा इस प्रकार है।

भारत में सेना-व्ययकी वृद्धि

सन्	सेना पर राजकीय व्यय
१८८४—८५	१७·०५ करोड़
१८८५—८६	२०·०६
१८९०—९१	२१·०९
१८९१—९२	२२·६६
१८९३—९४	२३·५३
१८९४—९५	२४·३१
१८९८—९९	२३·०५
१८९९—१९००	२६·४४
१९००—१९०१	२३·२०
१९०१—१९०२	२४·२४
१९०२—१९०३	२६·४४

[संवत् १९७८ (सन् १९२१) में यह व्यय ६५ करोड़ पर जा पहुँचा है—सम्पादक]

समझता है कि किस प्रकार कोई भी जाति सेना आदि पर बहुत धन व्यय किये विना रुक नहीं सकती है। यदि कोई ऐसा न करे तो समयान्तर में उसको अपनी स्वतन्त्रतासे हाथ धोना पड़ जाय। यह क्यों? यह इसी लिये कि प्रत्येक जाति दूसरोंको नीचा दिखा कर अपनी व्यावसायिक उन्नति करना चाहती है।

(२) राजनीतिक अन्तरीय परिस्थिति तथा राज्य व्यय जातीयता, तथा जातीय संघर्षके अतिरिक्त कुछ अन्तरीय कारणोंसे भी राज्य-व्यय बढ़ गया है। आजकल यूरोपीय देशोंके व्यवसाय-प्रधान होनेसे उनके मुख्य राज्य तथा स्थानीय राज्यका महत्त्व बहुत ही अधिक बढ़ गया है। जिन देशोंमें स्थानीय राज्य दिन पर दिन अधिक शक्ति प्राप्त करनेका और अपनी शानको प्रगट करनेका यत्न करता है उन देशोंमें स्थानीय

राज्यव्यय पर अन्तरीय परिस्थिति का प्रभाव

मुख्य राज्य तथा स्थानीय राज्य का महत्व

१९०८—१९०९	२९·४०
१९०९—१९१०	२८·६६

[वाचा कृत इंडियन मिलिटरी एक्सपेण्डीचरसे]

भारतीय जनता अति दरिद्र है। इसके धनको इस प्रकार सेना पर खर्च करना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता है। इससे शिक्षा स्वास्थ्य, व्यावसायिक तथा, व्यापारिक कार्योंमें राज्यका धन बहुत ही कम खर्च हो रहा है। परिणाम इसका यह है कि देशकी आयके स्रोत दिन पर दिन सूखते जाते हैं और भारतीय जनताकी उत्पादक शक्ति भयकर तौर पर कम हो रही है।

राज्यका खर्च पूर्वापेक्षा बहुतही अधिक बढ़ जाता हैं। इसका विपरीत भी सत्य है। भारतवर्षमें मुसलमानी कालमें अवध तथा बंगालके ताल्लुकेदार माण्डलिक राजाके तौर पर समझे जाते थे। उनको किसी हद्दतक शासन नियम तथा निर्णयके अधिकार भी प्राप्त थे। परिणाम इसका यह होता था कि उनको शाही ठाठ तथा दर्बार लगानेके लिये बहुत सा धन व्यय करना पड़ता था। परन्तु अंग्रेजोंने उनके हाथसे संपूर्ण राजकीय शक्ति अपने हाथमें लेली है और उनको माण्डलिक राजाके स्थान पर एक साधारण ताल्लुकेदार या जमींदारके रूपमें परिवर्त्तित कर दिया है। इस से उन लोगोंके वे संपूर्ण खर्च कम हो गये हैं जो उनको शाही, ठाठ-बाट तथा राजकीय शक्तियोंके प्रयोगके लिये करने पडते थे। यही सत्य आजकलके व्यावसायिक जगत्में प्रत्यक्ष हो रहा है। मैञ्चैस्टरकी म्यूनिसिपालटीको बहुतसे राज्याधिकार मिले हुए हैं अतः उसको पूर्वापेक्षा अधिक खर्च उठाना पड़ता है। जिन देशोंमें स्थानीय राज्य तथा म्यूनिसिपालिटियोंकी शक्ति बहुत कम है वहां मुख्य राज्यके खर्चे बढ़ जाते हैं। भारतीय राज्यके खर्चोंके बढ़नेका एक मुख्य कारण यह भी है। मान्टेग्यू चैम्सफोर्ड रिपोर्टमें भारतीयोंको स्थानीय राज्य देनेका यत्न किया गया है, इसका कहीं यह तो मतलब नहीं है कि राज्य अपने

खर्चोंको भारतीयोंपर फेंकना चाहता है ? इसमें सन्देह भी नहीं है कि स्थानीय राज्यको शक्तिके मिलनेसे भारतीयोंपर कर बढ़ जावेंगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्थानीय राज्य तथा मुख्य राज्यकी पारस्परिक शक्ति वृद्धिपर राज्य-व्यय-वृद्धिका आधार है। आजकल पाश्चात्य देश व्यवसाय प्रधान हो रहे हैं। वहां रेलों तथा नहरों-के बननेसे व्यय कम है और इस प्रकार प्रत्येक प्रदेश संसारके बाजारको अपने हाथमें करना चाहता है। इसका परिणाम यह है कि प्रत्येक कस्बेका आकार व्यापार तथा व्यवसाय दिन पर दिन उन्नत हो रहा है, उसके स्थानीय राज्यकी शक्ति बढ़ती जाती है और उसका धनव्यय भी बढ़ रहा है। इससे मुख्य राज्यका खर्च कुछ कुछ कम हो गया है।

राज्य-व्यय पर इनका प्रभाव

यूरोपकी स्थिति

स्थानीय राज्योंमें प्राय: राजनीतिक अनाचार (पोलिटिकल करप्शन) बहुत ही अधिक है। अमे-रिका इस अत्याचारमें अग्रणी कहा जा सकता है। इसका परिणाम यह है कि दिन पर दिन स्थानीय राज्यकी ओरसे लोगोंकी रुचि घटती जती है। इससे स्थानीय राज्यको शक्तिको धक्का पहुँचना स्वाभा-विक है। इसी दशामें यदि उसका व्यय कम हो जावे तो आश्चर्य करना वृथा है। इस प्रकार उपरि लिखित सारे संदर्भका परिणाम यह निकला कि:—

स्थानीय राज्य की शक्तिवृद्धि हानिकर है

(१) स्थानीय राज्यकी वृद्धिसे स्थानीय राज्योंका खर्च बढ़ जाता है और मुख्य राज्यका खर्च कम हो जाता है।

(२) स्थानीय राज्योंमें राजनीतिक अत्याचार के कारण उन्नति रुक जाती है और उनका खर्चा घट जाता है।

(३) मुख्य राज्य स्थानीय राज्योंको शक्ति दे कर अपना खर्च लोगोंपर डाल सकता है। *

[३]

सामाजिक संगठन तथा राज्य व्यय

राष्ट्रीय व्यय पर राष्ट्रीय सिद्धान्तोंका प्रभाव

भिन्न भिन्न राष्ट्र सम्बन्धी विचारोंपर राज्य व्ययका बड़ा भारी आधार है। जिन देशोंमें राष्ट्र का ऐन्द्रिय सिद्धान्त (आर्गेनिक थ्योरी) प्रचलित है वहां राष्ट्र तथा जातिके अधिकार मुख्य हैं और वैयक्तिक अधिकार गौण हैं परन्तु राष्ट्रको शारीरिक मान कर एक विशेष संघ मानने वाले देशोंमें यह बात नहीं है। वहां वैयक्तिक अधिकारोंके विचार से ही राष्ट्रीय अधिकार देखे जाते हैं और वहां वैयक्तिक अधिकार राष्ट्रीय अधिकारोंकी अपेक्षा मुख्य होते हैं। इङ्गलैण्ड तथा जर्मनीमें जो भेद है वह यही है। इङ्गलैण्डमें व्यक्तियोंकी प्रधानता है और राष्ट्र वैयक्तिक उन्नतिका एक साधन समझा जाता है, परन्तु जर्मनीमें व्यक्तियोंको ही राष्ट्रका

इंग्लैण्ड तथा जर्मनीमें भेद

* बास्टेबलका पब्लिक फाइनन्स "पृ० १३०-४६"

अंग समझते हैं और व्यक्तियोंको राष्ट्रीय उन्नतिका साधन मानते हैं ।

यह तुच्छ भेद नहीं है । भिन्नभिन्न देशोंके राज्य-व्यय पर इसका बड़ा भारी प्रभाव है । इङ्गलैण्डमें जनता राज्य व्ययोंका निरीक्षण करतीहै और अपनी इच्छाके अनुसार राज्य-व्यय की स्वीकृति देती है । परन्तु जर्मनीमें यह बात नहीं है । जर्मनीमें राज्य-व्यय आवश्यक तथा ऐच्छिक इन दो भागोंमें विभक्त है । आवश्यक राज्यव्यय जनताकी स्वीकृतिके भी विना राज्य कर सकता है परन्तु ऐच्छिक राज्यव्ययमें ही राज्य जनताकी अनुमति लेनेके लिये बाध्य है । परिणाम इसका यह है कि राष्ट्रको ऐन्द्रिक मानने वाले देशोंमें राज्य व्ययका आधार वैयक्तिक आवश्यकता है । प्रथममें जहां राज्य-व्यय जातीय अभिमान तथा शासकोंकी शक्ति तथा शान बढ़ानेमें बहुत ही अधिक होता है वहां द्वितीयमें आवश्यक आवश्यक अंगों तथा कार्योंके लिये ही राज्यको धन मिलनेसे राज्य-व्यय कुछ कुछ कम हो जाता है । परन्तु यहां पर यह भी न भूलना चाहिये कि राष्ट्रके संघ सिद्धान्तको माननेवाले कई एक क्षेत्रोंमें राज्य व्ययको कम करते हुए कभी कभी कुछ कार्योंमें राज्य व्ययको भयंकर तौर पर बढ़ा भी देते हैं । व्यवसाय तथा व्यापार-प्रधान संघ सिद्धान्ती देशोंके अन्दर व्यापारीय तथा व्यावसायिक कार्योंमें

दोनों दर्शोंकी व्यय-शैलीका महत्व

राज्य-व्यय प्रायः बहुत ही अधिक बढ़ जाता है। यह एक त्रैकालिक सत्य है कि वैयक्तिक स्वातन्त्र्य प्रधान देशोंका राज्य-व्यय अनावश्यक तौर पर अधिक होता है और इसीलिये वे अन्य देशोंका अनुकरण करनेका यत्न करते हैं जहां राज्य व्यय न्यून होता है। आजकल राष्ट्रीय सिद्धान्तके सदृश ही राजव्ययके दो सिद्धान्त प्रचलित हैं। प्रथमको हम० आंग्ल सिद्धान्त तथा द्वितीयको जर्मन सिद्धान्तका नाम दे सकते हैं। वे ये हैं:—

आंग्ल सिद्धान्त

[१] राज व्ययका आंग्ल सिद्धान्तः—अठारहवीं सदीमें इङ्गलैण्डके अन्दर राज्य व्ययमें व्यष्टिवादने अपना पूर्णरूप प्रगट किया। संवत् १८४४ (सन् १८८७) में सर हेनरी पार्नल ने राजकीय-आयव्यय सुधार पर एक छोटासी पुस्तक लिखी। उसने उस राज्य व्ययके, निम्न लिखित तीन सिद्धान्त प्रगट किये।

पार्नल के राज्य-व्यय सम्बन्धी तीन सिद्धान्त

(क) उन्हीं कार्यों पर राज्यको धन व्यय करना चाहिये जो अन्य किसी भी तरीकेसे न किये जा सकें।

(ख) देशको आन्तरीय तथा बाह्य विप्लवोंसे बचानेके लिये जो आवश्यक खर्च है उससे अधिक खर्च करना निरर्थक है।

(ग] राज्यको ऐसा धन कर रूपमें न लेना चाहिये जिससे जनताको अपनी आवश्यकताओंको कम करना पड़े।

पार्नेलके तृतीय सिद्धान्तको आंग्ल संपत्ति-शास्त्रज्ञोंने किसी हद्दतक स्वीकृत कर लिया है और उससे यह नियम निकाला है कि बचाये हुए धन पर ही राज्यको कर लगाना चाहिये। महाशय रोजर्जने यहां तक कह दिया है कि आंग्ल लेखक जनताके आवश्यकीय व्ययोंमें राजकीय सहायता को सम्मिलित नहीं करते हैं। इससे बढ़ करके व्यष्टिवादका उत्तम उदाहरण और क्या हो सकता है? परन्तु हमको इस प्रकारके विचारोंसे कुछ भी सहानुभूति नहीं है। व्यापार, व्यवसाय आदि की उन्नतिमें जनताको सहायता देना राज्य-का कर्त्तव्य है। अवनत देशोंमें पग पग पर जनताको राजकीय सहायताकी आवश्यकता होती है। व्ययमें व्यष्टिवादके सिद्धान्तसे उन्हीं देशोंमें किसी हद तक काम काज हो सकते हैं जो व्यापार व्यवसाय तथा आचारमें उन्नत हों।

जर्मन सिद्धान्त

(२) राज्य व्ययका जर्मन सिद्धान्तः-जर्मन लेखक राजव्ययमें प्रायः व्यष्टिवादके विपरीत चलते हैं। महाशय गैफ्कनने कालिदासके सदृश ही * लिखा है कि जिस प्रकार प्रकृति

गैफकन तथा कालिदास

* कवि शिरोमणि कालिदासने रघुवंशमें लिखा है कि-

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥

अर्थात् राजा दिलीप प्रजाके हितके लिये प्रजासे उसी प्रकार कर लेता था जिस प्रकार कि सूर्य हजार गुणा फल देनेके लिये भूमिसे जलको खींच लेता है।

आर्द्रभूमिसे जल खींच कर वृष्टि द्वारा सूखी भूमिपर जलको पहुँचाती है उसी प्रकार राज्यको धनका व्यय करना चाहिये*। इसी प्रकार महाशय नासे राजकीय आयव्ययका आधार न्यायके स्थानपर राजकीय उद्देशों पर रखते हैं जो व्यष्टि-वादका बिलकुल उलटा है।

आंग्ल तथा जर्मन सिद्धान्त व्यष्टिवाद तथा अव्यष्टिवादकी अन्तिम हद तक पहुँच जाते हैं। सत्य इन दोनोंके बीचमें है। परन्तु सत्य कैसे जाना जावे? इस प्रकार सत्यका आधार व्यक्ति तथा राज्यके पारस्परिक अधिकारों तथा कार्योंपर निर्भर है जो प्रत्येक देशमें भिन्न भिन्न है। यही कठिनता है कि जिससे प्रायः आय व्यय-शास्त्रज्ञ सत्यको जाननेके लिये राजकीय कार्यों तथा राजव्ययोंके पारस्परिक सम्बन्धका पता लगानेका यत्न करते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि राज्य-व्ययके नियमोंका पता लगानेकी इससे बढ़ कर और कोई भी उत्तम विधि नहीं है। अब हम भी उसी मार्गका अनुसरण करते हैं।

५-राजकीय कार्योंके साथ राज्य-व्ययका सम्बन्ध

राज्यको नागरिकोंकी उन्नतिके लिये भिन्न भिन्न विभागों पर धन-व्यय करना पड़ता है।

* Kautmann Leo Finanse de la France

सभ्यताकी वृद्धिके साथ साथ प्रायः राज्य-व्यय बढ़ गया है। राज्यके कार्योंका क्षेत्र भी विस्तृत हो गया है। विषयको स्पष्ट करनेके लिये अब राज्यके भिन्न भिन्न कार्योंपर प्रकाश डालनेका यत्न किया जायगा।

(१)

राज्यका संरक्षण-सम्बन्धी कार्य

राज्यके संपूर्ण कार्योंमें संरक्षणका कार्य अत्यन्त महत्वका है। शुरू शुरूमें राज्यके संरक्षणका क्षेत्र अतिशय परिमित था। परन्तु सभ्यताकी वृद्धिके साथ साथ इसका क्षेत्र भी दूर तक जा पहुँचा है।

संरक्षण तथा व्यय

आज कल राज्य तीन प्रकारसे नागरिकोंका संरक्षण करता है।

(१) विदेशी शत्रुसे देशका संरक्षण

(२) जीवन,संपत्ति तथा मानका संरक्षण

(३) सामाजिक तथा शारीरिक रोगोंसे संरक्षण।

अब क्रमशः प्रत्येक पर विचार करते हैं :

विदेशी शत्रुसे देशका संरक्षण

(१) विदेशी शत्रुसे देशका संरक्षण-विदेशी शत्रुसे राष्ट्रको बचानेके लिये राज्य जो धनका व्यय करता है वह सैनिक व्ययके नामसे पुकारा जाता है। सैनिक व्यय इतना ही

पुराना है जितना कि राष्ट्र स्वयं पुराना है। शुरू शुरू में राज्योंके कार्य कम थे अतः राज्योंको एक मात्र सैनिकव्यय पर ही अधिक ध्यान देना पड़ता था। परन्तु सभ्यताकी वृद्धिके कारण आज कल राज्यके कार्य बढ़ गये हैं अतः राज्योंको अन्य कार्योंमें धन व्यय करना पड़ता है। यही कारण है कि सैनिक व्ययका महत्व पूर्वापेक्षा कुछ कुछ कम हो गया है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि सेना-विभाग पर पूर्वापेक्षा बहुत ही अधिक खर्च किया जा रहा है। यूरोपीय देश समृद्ध हैं और एशियाका रुपया दिनपर दिन खींच रहे हैं, अतः उनको यह धनव्यय भारी नहीं मालूम पड़ता है, और यदि यह व्यय उनको भारी भी मालूम पड़े तोभी वे इस व्ययको कम करने पर सन्नद्ध नहीं हैं, क्योंकि इसीके बलपर उनकी जातीय समृद्धिका भविष्य निर्भर है।

जर्मनी

जर्मनीने नौ-शक्ति तथा स्थल-शक्ति बढ़ानेका क्यों यत्न किया? और इसपर इतना अनन्त धन क्यों व्यय किया? यूरोपीय जातियां इस महा भयंकर युद्धमें क्यों प्रवृत्त हुईं? इसका रहस्य उस शक्ति रूपी मदिरामें छिपा हुआ है जिसको प्राप्त करके वे संसारके बाजारको अपने हाथमें करना चाहती हैं। निस्सन्देह यह सैनिक-व्यय उन परतन्त्र जातियोंके लिये असह्य है जो यूरोपीय जातियोंके द्वारा चूसी जा चुकी हैं और जो

सैनिक व्यय परतन्त्र जातियों पर एक प्रकारका अत्याचार है।

यूरोपीय जातियोंके स्वार्थोंको पूरा करनेका साधन बन रही हैं। भारत जैसे दरिद्र देशमें जो सैनिक व्यय दिन पर दिन बढ़ाया गया है उस पर प्रकाश डाला जा चुका है। *

(२) जीवन संपत्ति तथा मानका संरक्षण:— देशको अन्तरीय विप्लवोंसे बचानेके लिये और नागरिकोंके जीवन, संपत्ति तथा मानके संरक्षणके लिये राज्योंको पुलिस तथा न्यायालय विभाग स्थापित करना पड़ता है और उनको धन द्वारा सहायता पहुँचानी पड़ती है। व्यवसाय, व्यापार तथा आबादीकी वृद्धिके अनुपातमें ही पुलिस तथा न्यायालय पर राज्यका धनव्यय बढ़ना चाहिये। यदि किसी राज्यका धनव्यय कम होता है तो यह उस देशकी उन्नति तथा राज्यके प्रबन्धकी उत्तमताका चिन्ह है। परन्तु यदि किसी देशमें ऐसा न हो तो यह बड़ी बुरी बात है, क्योंकि इससे दो बातें प्रगट होती हैः—

पुलिस तथा न्यायालय का व्यय

(क) राज्यका प्रबन्ध उत्तम नहीं है या

(ख) राज्यके नियम जनताकी दृष्टिमें अन्याय युक्त है †

इसकी सत्यताका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि आर्थिक स्वराज्य रहित देशोंमें

---

* बास्टेबलका "पब्लिक फाइनान्स" पृ० ५८-७३

† आदम्सकृत "पब्लिक फाइनन्स पृ० ५८

पुलिस पर राज्यका व्यय प्रायः दिन पर दिन बढ़ता जाता है। यह क्यों? यह इसीलिये कि जनता बहुतसे राज्य नियमोंको अन्याययुक्त समझती है और उनको तोड़नेका यत्न करती है। दृष्टान्तके तौर पर भारतवर्षमें सं. १६५५ (सन् १८९८) में पुलिस पर २३-७ लाख पाउन्ड धनका खर्च था और संवत् १९६५ में वही ४०-३ लाख तक आ पहुँचा। इस प्रकार १० सालमें राज्यको पुलिसपर दुगुना खर्च करना पड़ा है *

भारत

(३) सामाजिक तथा शारीरिक रोगोंसे संरक्षण:–जीवन तथा संपत्तिके सदृश ही सामाजिक रोगोंसे राष्ट्रको बचाना भी राज्यका ही कर्त्तव्य है। इस कार्यमें राज्यको अधिक धन खर्च करना पड़ता है। आजकल सभ्य देशोंमें अपराधियोंको सुधारनेका यत्न किया जाता है और उनकी बुराइयोंकी ओरसे प्रवृत्ति हटायी जाती है। इससे प्रत्येक अपराधीपर राज्यका खर्च बढ़ गया है। इसी प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों तथा शहरोंकी सफाई आदिके द्वारा राज्य नागरिकोंके स्वास्थ्यका संरक्षण करता है। दुर्भिक्षसे जनताको बचानेके लिये भारतीय राज्यको अपने बजटमें दुर्भिक्ष कोषको भी स्थान देना पड़ता है। अब प्रश्न केवल यही है कि

समाज संरक्षण सम्बन्धी व्यय

* वाचाकृत रिसेंट इंडियन फाइनेन्स।

सभ्यताकी वृद्धिके साथ साथ राज्यके ये खर्च बढ़ने चाहिये या नहीं? इसका उत्तर यही है कि यदि सम्पूर्ण अवस्थाएं पूर्ववत् रहें तो व्यवसाय व्यापारमें उन्नति करनेवाले तथा सभ्यतामें बढ़ने वाले देशोंमें यह राज्य-व्यय दिन पर दिन घट जाना चाहिये। परन्तु भारतकी दुरवस्थाका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि आंग्ल राज्यकी वृद्धिके साथ साथ भारतमें प्लेग, हैजा तथा दुर्भिक्ष दिन पर दिन बढ़ रहे हैं और यही कारण है कि भारतीय राज्यको एक दुर्भिक्ष कोष स्थिर तौर पर रखना पड़ा है। हम किस प्रकार व्यापार व्यवसायमें पीछे हटते हुए दिन पर दिन दरिद्र हो रहे हैं यह दुर्भिक्ष फण्ड स्पष्ट तौर पर निर्देश करता है *

(२)

राज्यके व्यापार सम्बन्धी कार्य

व्यापारीय कामका नाम सेवा है।

राज्यके व्यापार सम्बन्धी काम 'सेवा' के नामसे पुकारे जाते हैं। अब हम (१) राज्यकी सेवाके स्वरूप तथा (२) उनपर राज्य व्ययकी प्रवृत्तिको दिखानेका यत्न करेंगे।

राज्य सेवाके स्वरूप

[१] राज्य सेवाके स्वरूपः—राज्य भिन्न भिन्न व्यापार सम्बन्धी कार्य नागरिकोंको लाभ

* आदम्स साइन्स आफ फाइनेन्स पृ० ५५ से ६१ तक।

पहुँचानेके लिये या स्वतः आय प्राप्त करनेके लिये करते हैं। कौनसे कार्य्य राज्य किस उद्देश्यसे करते हैं स्थिर तौर पर इसका निश्चय कर देना बहुत ही कठिन है, क्योंकि यह भिन्न भिन्न देशोंके राज्योंपर निर्भर है। दृष्टान्तके तौर पर स्विटजरलैण्डमें स्विस राज्यने मादक द्रव्योंका एकाधिकार जनताके हितके लिये किया है परन्तु भारतीय राज्यके अफीमके एकाधिकारके विषयमें यह कहना सर्वथा कठिन है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि डाक तथा तारका काम राज्य प्रायः सभ्य देशों में प्रजाके हितके लिये ही करते हैं। आजकल राज्योंने अपने काम और भी अधिक बढ़ा लिये हैं और टेलीफोन, बीमा, सेविङ्गबैंक तथा रेल आदिके कामको भी स्वयं ही करना शुरू कर दिया हैं। इनमेंसे कौनसा काम किस लिये किया जाता है इसका निर्णय करना कठिन है। भिन्न भिन्न देशोंके राज्योंके उद्देश्य तथा विचार पर ही यह निर्भर हैं। दृष्टान्तके तौर पर बहुतोंका सन्देह है कि भारतीय राज्यने रेलोंके बढ़ानेमें भारतका जो रुपया खर्च किया है उसको सैनिक व्ययमें ही सम्मिलित करना चाहिये। यह क्यों? यह इसी लिये कि रेलोंकी अधिक वृद्धिका मुख्य उद्देश्य यही है कि अन्तरीय तथा बाह्य विप्लवोंसे राज्य अपने आपको बचाना चाहता है।

स्विटज़रलैण्ड तथा भारत

(२) राज्य सेवा पर राज्य व्ययकी प्रवृत्तिः-

व्यापारीय कामों के तीन प्रकार

राज्य व्यापारीय कार्मोको तीन प्रकारसे करता है:- (१) राज्य अपनी सेवाके बदलेमें नागरिकोंसे कीमत लेता है (२) राज्य अपनी सेवाको करनेमें समर्थ न होनेके लिये फीस या शुल्क लेता है (३) राज्य प्रजाके हितके लिये ही अपनी सेवा करता है और आकस्मिक तौरपर या अप्रत्यक्ष रूपसे उसको इन सेवाओंके बदलेमें कुछ आय भी प्राप्त हो जाती है। अब क्रमशः प्रत्येकपर प्रकाश डाला जायगा।

सेवाके बदले कीमत लेना

(१) यूरोपीय देशोंमें बीमा, डाक तथा रेलोंके कार्योंको राज्य लाभपर करते हैं अतः वहाँ इस विषयमें राज्यव्यय सम्बन्धी कोई भी प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। वहां जो कुछ झगड़ा है वह यही है कि इस प्रकारके कार्योंका राज्य द्वारा होना कहां तक उचित है। क्या यह उन्नतिका चिन्ह है या अवनतिका ? बहुतसे विचारकोंकी सम्मति है कि राज्यका झुकाव राष्ट्रीय समष्टिवादकी ओर है और यही उचित है परन्तु बहुतसे विचारक यह न मान कर यह प्रगट करते हैं कि इतने बड़े बड़े कामोंका हाथमें लेना राज्यका स्वाभाविक नियमको भङ्ग करना है। स्वाभाविक नियम यही है कि इन बड़े बड़े कामोंको जनता स्वयं बड़े बड़े संघ बनाकर करे। इसी स्थानपर एक और श्रेणीके विचारक राज्यके इन कामोंको इस आधार पर उचित ठहराते हैं कि समाज द्वारा वे काम ठीक ढङ्गपर नहीं किये जा सकते हैं। वास्त-

विक बात तो यह है कि यह भिन्न भिन्न समाजोंकी स्थितिपर निर्भर है। जिन देशोंमें रेलोंके मालिक कम्पनियां हैं और उन्होंने इस कामको करनेमें जनताके साथ एकसदृश व्यवहार न करके बहुतसे लोगोंको नुकसान पहुँचाया है, वहाँ जनता इन कामोंका राज्यके ही हाथमें दे देना पसन्द करती है। परन्तु भारत जैसे देशोंमें जहाँ कि राज्यने रेलोंको अपनी राजनीतिका भाग बना लिया है और रेलोंको निरर्थक फैलाते हुए जनताका करोड़ों रुपया प्रति वर्ष पानीमें मिला दिया है, वहाँ यदि जनता रेलोंका निर्माण कम्पनियों द्वारा ही उचित ठहरावे और गारैन्टी विधिका प्रयोग छोड़ देवे तो इसपर आश्चर्य करना वृथा है।

फीस या शुल्क

(२) राज्यके उन कार्योंको प्रायः सभी पसन्द करते हैं जिनके करनेमें राज्य शुल्क लेता है। यह इसीलिये कि इनसे साधारण जनोंको सामूहिक तौरपर लाभ पहुँचता है। नगरोंमें सड़कों, पुलों, नालियों तथा पानीके नलोंके लगानेमें राज्य जो धन व्यय करता है उसको सभी उचित समझते हैं क्योंकि इससे सभीका सुख तथा सम्पत्ति बढ़ जाती है।

समाजहित सम्बन्धी कार्योंसे आय

(३) इसी प्रकार अमरीकामें अस्पताल, नहरों तथा खानोंके कार्योंको राज्य करता है और उसके इस कार्यको जनता पसन्द करती है। भारतकी दशा अमरीकासे कुछ भिन्न है। यह क्यों? यह

इसीलिये कि भारतीय जनता अति दरिद्र है। उसको भारतीय राज्यके जङ्गलातके नियम अति कठोर मालूम पड़ते हैं। इन नियमोंके कारण दरिद्र जनताको लकड़ी मंहगी मिलने लगी है और पशुओंको चारा मिलना कठिन हो गया है। इसी प्रकार नहरोंका मामिला है। नहरोंके जल प्राप्त करनेके लिये बाधित रेटका जो प्रस्ताव प्रान्तीय सरकारें पास करना चाहती हैं उससे किसानोंके कष्ट बहुत ही अधिक बढ़ जावेंगे। हमारी सम्मतिमें भारतीय राज्यका नहर तथा जङ्गलातका काम भी इस स्थानमें न रख करके पहिली संख्यामें ही रखा जाना चाहिये। *

(३)

राजकीय कार्योंकी वृद्धि

ऐसे बहुतसे सामाजिक कार्य हैं जिनके करनेमें मनुष्य पृथक् पृथक् तौरपर असमर्थ हैं। ऐसे कार्योंका करना राज्यका ही कर्त्तव्य है। राज्यका संरक्षण संबन्धी कार्य सामाजिक रोगोंको ही दूर कर सकता है। समाजको विशेष तौरपर उन्नत करनेमें वह असमर्थ है। निम्नलिखित पाँच काम हैं जिनका करना राज्यके लिये आवश्यक है क्योंकि इनसे समाज बहुत जल्द उन्नति कर सकता है।

* बोस्टेबल पब्लिक फाइनन्स पृ० १००-०९।
आदम्स साइन्स आफ फाइनन्स पृ० ६१-६८।

(१) शिक्षा सम्बन्धी कार्य
(२) आमोद प्रमोद सम्बन्धी कार्य
(३) वैयक्तिक उद्योग धन्धेको बढ़ानेवाले कार्य।
(४) गणना तथा अन्वेषण सम्बन्धी कार्य
(५) सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नति सम्बन्धी कार्य

शिक्षा सम्बन्धी कार्य

(१) शिक्षा सम्बन्धी कार्य.

यूरोपीय देशोंमें राज्योंने ही शिक्षा सम्बन्धी काम भी हाथमें ले लिया है। यह इस बातको प्रगट करता है कि उन देशोंमें जनताको शिक्षाकी कितनी मांग है। यह क्यों? यह इसी लिये कि समाजका शिक्षण राज्योंके द्वारा होना इस बातको सूचित करता है कि समाज शिक्षाको कितना आवश्यक समझता है। भारतमें यह बात नहीं है। भारतमें प्रतिनिधि-राज्य नहीं है। राज्य जनताके प्रति उत्तरदायी नहीं है। अतः राज्यके काम जनताकी मांगको प्रकट नहीं करते हैं। यही कारण है कि भारतमें सेनापर जितना जातीय धन खर्च किया जाता है उसका अद्धांश भी शिक्षा आदिपर नहीं खर्च किया जाता। परन्तु यूरोपीय देशोंमें यह बात नहीं है। वहाँ शिक्षा पर बहुत काफी धन खर्च किया जाता है। इस स्थानपर प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि

राज्य व्यक्तियोंकी शिक्षापर धन खर्च ही क्यों करे ? जो शिक्षा प्राप्त करे वह उसका खर्च आप दे ? यदि यह न सम्भव हो तो प्राचीन कालके सदृश दानके धनसे इस कामको क्यों न जारी किया जाय ? इसका उत्तर यह है कि लोग अभी तक शिक्षाको भोजनादिके सदृश आवश्यक नहीं समझते हैं। भारतीय ग्रामोंमें भी तो लोग बच्चों-से मजदूरी करवाना अधिक पसन्द करते हैं। उनको शिक्षा देनेमें वे लोग कुछ भी लाभ नहीं समझते हैं। भारतके सदृश ही यूरोपीय देशोंकी भी दशा है। यही कारण है कि यूरोपमें प्रायः सभी देशोंके अन्दर ग्राम्य शिक्षा अनिवार्य है। भारतवर्षमें इसकी बहुत ही अधिक आवश्यकता है। सारे सभ्य संसारका इतिहास इस बातका साक्षी है कि लोगोंको शिक्षित करना सुगम काम नहीं है। इसमें राज्यकी सहायताकी ज़रूरत होती है और राज्यको बहुत ही अधिक धन खर्च करना पड़ता है। *

प्रजासत्ताक राज्योंमें शिक्षाक ज़रूरत

प्रजासत्ताक राज्योंमें इसलिये भी शिक्षाकी आवश्यकता समझी जाती है कि जनता अपने राजनीतिक उद्देश्योंको अच्छी तरहसे समझ सके और प्रतिनिधियोंके चुननेमें बुद्धिमत्तासे काम कर सके। धनिकोंकी शक्तिको रोकनेके लिये भी

* बास्टेबल· पब्लिक फाइनन्स पृ० ६३ १०० ।

शिक्षा ही काममें लायी जाती है। यही कारण है कि आजकल प्रतिनिधिसत्ताक राज्योंमें दिन-पर दिन शिक्षापर अधिक अधिक धन खर्च किया जा रहा है। समाजकी उन्नतिका यह एक चिन्ह समझा जाता है।

आमोद प्रमोद सम्बन्धी कार्य

(२) आमोद प्रमोद सम्बन्धी कार्यः— आमोद प्रमोद सम्बन्धी कार्योसे नाटक, गान-विद्या, अद्भुतालय, चिड़िया घर, पुस्तकालय, पत्रालय आदिकी स्थापनाका तात्पर्य लिया जाता है। कम्पनी बाग, सरकारी बाग, पार्क्स, मकान तथा उत्तम सड़कें आदिका बनना भी ऐसे ही कार्योंमें सम्मिलित है। ऐसे कार्योंपर राज्यको धन खर्च करना आवश्यक है, क्योंकि यह कार्य किसी एक व्यक्तिके हितके स्थानमें सर्व जनता-के हितसे सम्बद्ध है। जिनसे सारी जनताका हित हो उन कार्योंका करना राज्यका ही कर्त्तव्य है।

कृषि तथा व्यापारकी उन्नति

(३) वैयक्तिक उद्योग धन्धेको बढ़ाने वाले कार्यः—व्यापार व्यवसाय तथा कृषिकी उन्नतिका राज्यके साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। संरक्षित व्यापार-की नीति तथा स्वदेशीय व्यवसायोंको धनकी सहा-यता देना राज्यका परम कर्त्तव्य है। नौकाओंकी वृद्धिके लिये व्यापारिक नहरोंका बनाना राज्यके लिये आवश्यक है। विदेशीय स्पर्धा तथा स्वदेशीय व्यवसायोंके हानिकर एकाधिकारोंको राज्यको हटाना चाहिये। यहींपर बस नहीं है। राज्य बन

सम्पूर्ण बातोंको भी हटावे जिनसे श्रमियोंकी कार्यक्षमताको नुकसान पहुँचता हो। इसी लिये फैक्टरी नियमोंका बनाया जाना आवश्यक है। यूरोपीय देशोंमें सभी राज्य उद्योग-धन्धे सम्बन्धी कार्योंमें जनताको सहायता पहुँचाते हैं। परन्तु भारतवर्षमें एकमात्र ऐसेही कार्योंमें आंग्ल राज्यकी उदासीनताकी नीति है। सरकार उद्योग धन्धेके कार्योंमें जनताको बहुतही कम आर्थिक सहायता देती है। यह क्यों? यह इसीलिये कि सरकार भारतको एकमात्र कृषक देश ही बनाना चाहती है।

फैक्टरी नियम

भारत

(४) गणना तथा अन्वेषण सम्बन्धी कार्य:— राज्यको गणना तथा अन्वेषण सम्बन्धी कार्योंपर पर्याप्तसे अधिक धन्य व्यय करना चाहिये, क्योंकि इन्हीसे यह मालूम पड़ता है कि समाज किस किस ओर उन्नति कर रहा है और किस किस ओर अवनति कर रहा है। प्राचीन ऐतिहासिक चीजोंको खुदवाना तथा उनको स्वरक्षित रखनेके लिये धन खर्च करना भी आवश्यक है क्योंकि ऐसीही चीजोंसे इतिहासकी रचनामें बड़ी भारी सहायता मिलती है। भिन्न भिन्न व्यवसायों तथा खानोंके कामोंका निरीक्षण भी राज्यको ही करना चाहिये। बैंकोंके हिसाब किताबको सावधानीसे देखना चाहिये। जिन जिन स्थानोंमें कुछ भी गड़बड़ हो उसको दूर करना चाहिये और

गणना तथा अन्वेषण सम्बन्धी कार्य

आवश्यकताके अनुसार अपनी ओरसे भी सहायता पहुँचाना चाहिये।

राष्ट्रीय उन्नति सम्बधी कार्य

(५) सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नति सम्बन्धी कार्यः—बड़ी बड़ी रेलें तथा बड़ी बड़ी नहरोंको बनाना राज्यका ही कर्त्तव्य है। न्ये अकूल बनाने और रोशनी, पानी आदिका प्रबन्ध भी यदि जनता किसी कारणसे इन कार्योंमें असमर्थ हो तो राज्य को ही करना चाहिये। सारांश यह है कि राज्यको ऐसे समस्त कार्य करने चाहिये जिन्हें जनता पृथक् पृथक् तौरपर करनेमें असमर्थ हो। *

---

* आदम्स. साइन्स आफ फाइनन्स पृ० ६८ से ८२।

द्वितीय परिच्छेद

राजकीय व्ययसिद्धान्त

१—व्ययकी समानता

राजकीय व्यय-में प्रभुत्व शक्ति सिद्धान्त

राजकीय करकी समानताके सूत्रके सदृश ही राजकीय व्ययकी समानताका सूत्र है। राजकीय व्ययमें प्रभुत्वशक्ति-सिद्धान्तका तात्पर्य यह होता है कि राज्य प्रभुत्वशक्तिके निर्देशके अनुसार ही राष्ट्रीय धनका व्यय करे। अब प्रश्न केवल यही रह जाता है कि प्रभुत्वशक्तिका निर्देश कैसे जाना जाय? इसका साधारण उत्तर यही है कि राजकीय धनका उसी प्रकार व्यय किया जाय जिसमें प्रजाका अधिकसे अधिक हित हो।

प्रभुत्व शक्ति का न्याय से सम्बद्ध

प्रजाका अधिकसे अधिक हित किसमें है? यदि हम इसपर गम्भीर विचार करें तो मालूम पड़ेगा कि वह न्यायपर आश्रित है। राज्यको धनका व्यय इस ढंगपर करना चाहिये जिससे सभीको अधिकसे अधिक लाभ पहुँचे। कठिनता तो यह है कि व्ययके लाभ सिद्धान्तको कार्य रूप-में ले आना बहुत ही कठिन है। राज्यका अधिक व्यय राष्ट्र-संरक्षणार्थ सेना आदिपर होता है। इसको व्यक्तियोंके समान लाभकी दृष्टिसे उत्तम या अनुत्तम प्रगट करना निरर्थक है।

व्ययका उपयोगिता सिद्धान्त

बहुत से विचारक राजकीय व्ययका आधार लाभ सिद्धान्तपर रखते हैं। करकी अल्पतम अनुपयोगितामें ही व्ययकी अधिकसे अधिक उपयोगिता है। महाशय ग्लैडस्टनने ठीक कहा है कि एक स्थानपर व्ययका बढ़ाना, दूसरे स्थानपर व्ययको कम कर देना है। आय-व्ययमें वही चतुर है जो सम्पूर्ण व्ययोंका ध्यान करके बजट बनाता है। व्ययमें जब सीमान्तिक उपयोगिता सिद्धांतको लगाते हैं तो इसका तात्पर्य यह होता है कि किसी विभागमें ज्यों ज्यों अधिक धन व्यय किया जाता है त्यों त्यों उस धनकी उपयोगिता कम हो जाती है और किसी स्थानपर वही व्यय फजूलखर्चीका रूप धारण कर लेता है। ऐसे ही स्थानोंपर राजनीतिज्ञोंको यह विचार करना पड़ता है कि धनका व्यय अन्य किस स्थानपर किया जाय, किस विभागमें उसकी उपयोगिता अधिक है? सारांश यह है कि प्रत्येक विभागमें व्ययकी सीमान्तिक उपयोगिता तुल्य होनी चाहिये।

दरिद्रों तथा वृद्धों पर उपयोगिता सिद्धान्तका प्रयोग

दरिद्रों तथा धनिकोंपर व्ययका उपयोगिता सिद्धान्त इस प्रकार लगाया जाता है। भूखे मरते हुए दरिद्रों तथा कार्यमें अशक्त वृद्धोंको राजकीय सहायता मिलनी चाहिये, क्योंकि ऐसे स्थलोंमें राजकीय धन-व्ययकी उपयोगिता जीवनोपयोगी उपयोगिता है। जीवन-संरक्षणके सन्मुख शिक्षा आदिके सम्पूर्ण व्यय गौण हैं।

इसी प्रकार दरिद्र लोग शिक्षा प्राप्त करनेमें असमर्थ होते हैं। अतः राजकीय धन व्ययके द्वारा उनको शिक्षा मुफ्त दी जाती है।

व्ययका शक्ति सिद्धान्त

राजकीय व्ययमें शक्ति सिद्धान्त (फैकल्टी थ्यूरी-आफ पब्लिक्सपेण्डिचर) का तात्पर्य बाह्य (आब्जेक्टिव) अर्थमें लिया जाता है न कि अन्तरीय अर्थ (सबजेक्टिव) में। प्रतिनिधि सभायें यह पास करती हैं कि राष्ट्रीय धनका व्यय अमुक अमुक स्थलमें ही होना चाहिये। शक्ति सिद्धान्तके अनुसार लगे हुए राज्य-करोंका व्यय प्रजाकी ऐसी जरूरतोंके अनुसार ही होना चाहिये जो (जरूरतें) सबपर प्रत्यक्ष हों। प्रायः जरूरतोंका निर्णय प्रतिनिधि सभायें ही करती हैं।

व्यय यथा... ना चाहिये... कि जातिकी शक्तिको बढ़े

व्ययके शक्ति-सिद्धान्तसे यह परिणाम निकलता है कि राज्यको धन-व्यय इस प्रकार करना चाहिये जिससे जातिकी उत्पादन-शक्ति अधिकसे अधिक बढ़े। विज्ञान, व्यापार, व्यवसाय आदिकी उन्नतिमें शक्ति-सिद्धान्तके अनुसार ही राजकीय धनका व्यय किया जाता है। भिन्न भिन्न यूरोपीय देशोंने संरक्षित व्यापार, बन्दरगाहोंके निर्माण, रेलों तथा जहाजोंके बनाने आदिके कार्योंमें जनता को अरबों रुपयोंकी सहायता इसी उद्देश्यसे दी है। भारतको आर्थिक स्वराज्य नहीं मिला है, अतः भारत अपने व्यवसायों, जहाजों आदिकी उन्नतिमें धन-व्यय करनेमें असमर्थ है।

यहाँ मुफ्त शिक्षा भी नहीं है। यही नहीं, राज्य-को जिन स्थानोंपर धन व्यय करना चाहिये वह वहां धन व्यय नहीं करता है। भारतीय दरिद्र प्रजाका बहुतसा धन सेनामें बहाया जा रहा है जो एक तरीकेसे फजूलखर्चीका रूप धारण कर रहा है *

२–व्ययकी स्थिरता।

राजकीय व्यय स्थिर, निश्चित तथा प्रत्यक्ष होना चाहिये

"व्ययकी स्थिरता सूत्रके अनुसार राजकीय व्यय स्थिर, निश्चित तथा समयपर प्रत्यक्ष होना चाहिये। जनताको स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वह निर्भय होकर उसकी आलोचना कर सके। सम्पूर्ण सभ्य देशोंमें आज कल धन-व्ययकी कठोर आलोचनामें जनता स्वतन्त्र है। भारतमें प्रेस एक्टके द्वारा जनताके मुंह बन्द हैं। जो निर्भय हो कर इस प्रकारकी आलोचना करते हैं राज्य उनपर तीक्ष्ण दृष्टि रखता है +

३–व्ययकी सुगमता।

व्ययमें सुगमता होनी चाहिये

राजकीय धन-व्ययमें सुगमता होनी चाहिये, विभागपर विभाग बढ़ा कर बहुत बार राजकीय धनका इष्ट स्थानपर व्यय अत्यन्त कठिन हो जाता है। युद्ध आदिके कालमें राज्यपर विपत्ति

---

* निकल्सन कृत प्रिंसिपल्स आफ एकानामी, जिल्द ३, पृ० ३७८ ३८४।

+ वही पुस्तक पृ० ३८४।

पड़नेसे व्ययकी कठिनाइयाँ और भी अधिक बढ़ जाती हैं †

४—राज्यकी मितव्ययिता।

राज्यको राष्ट्रीय धनके व्यय करनेमें मितव्ययिता करनी चाहिये। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि मितव्ययिता करते करते राज्यको राजसेवकोंकी तनखाहें कम कर देनी चाहिये और प्रजासे जबरदस्ती कम कीमतपर चीजें मोल लेनी चाहिये, क्योंकि तनखाहोंके घटानेसे राजकीय सेवकोंकी कार्यक्षमता घट जावेगी और कम कीमतोंपर पदार्थ मोल लेनेसे न्याय तथा समानताका भंग होगा। मितव्ययिताका जो कुछ तात्पर्य है वह यही है कि राज्य राष्ट्रीय धनका फजूल खर्च न करे। भारतीय राज्य दरिद्र प्रजाका धन किस प्रकार फजूल खर्च कर रहा है इसपर आगे चलकर प्रकाश डाला जायगा। यहांपर यही कहना है कि इस प्रकारकी फजूलखर्चीसे जातिके उत्पादकसे उत्पादक कामोंको किसी प्रकारकी भी सहायता नहीं मिलती है। यही नहीं, फजूल खर्चीके कारण जातिपर वृथा ही करका भार बढ़ता है ‡

व्ययका मितव्ययिता न करनेसे जातिपर कर का भार बढ़ जाता है

५—व्ययके अन्य नियम।

राजकीय धन-व्ययके कुछ साधारण नियम

† वही पुस्तक पृ० ३८५-८६।
‡ वही पुस्तक पृ० २८६-८६।

हैं जिनको कभी भी न भुलाना चाहिये।

धन व्ययके पाँच गौण नियम

(१) राज्यको कुछ बड़े बड़े कार्योंमें धन-व्यय करना चाहिये। जहां तक हो सके वह छोटे छोटे कार्योंमें धन व्यय करनेसे बचे। यदि कोई राज्य ऐसा न करे तो मितव्ययिताके नियमका भंग हो जाना स्वाभाविक ही है।

(२) राज्य छोटे छोटे खर्चों तथा सहायताओं-को प्रजाके दानके रुपयों द्वारा करे। प्रजामें छोटे छोटे राष्ट्रीय कार्योंके दान देनेकी आदतको बढ़ावे।

(३) धन-व्यय वही उत्तम है जो कि प्रजाकी जरूरतोंके घटाव-बढ़ावके अनुसार स्वयं ही घट बढ़ जावे।

(४) पुराने धन-व्ययके स्थानोंको छोड कर नवीन स्थानोंमें धन व्यय करनेका यत्न करना चाहिये और जहां तक हो सके करको बढ़ानेसे बचना चाहिये।

(५) भिन्न भिन्न नियमोंमें विरोध होने पर आवश्यक नियमका ही ध्यान करना चाहिये। दृष्टान्तके तौरपर असमानता तथा स्थिरता नियमके विरोधमें स्थिरता ही मुख्य है, क्योंकि असमानतासे जहां-वैयक्तिक न्यायका नाश होता है वहां अस्थिरतासे साराका सारा राष्ट्रीय शासन शिथिल हो जाता है। *

---

* वही पुस्तक पृ० ३८१ ६०।

तृतीय परिच्छेद.

बजट

१-बजट सम्बन्धी विचार।

आयव्यय सम्बन्धी नियमोंको बिना जाने बजटका बनाना तथा उसको स्वीकृत करना देशमें आर्थिक विक्षोभको उत्पन्न कर सकता है। यही कारण है कि आजकल आयव्यय-शास्त्रको दिन पर दिन अत्यन्त अधिक महत्व प्राप्त हो रहा है। राजनीतिक भाषामें बजट शब्दसे उस रिपोर्टका मतलब लिया जाता है जिसमें राष्ट्रीय कोषकी वास्तविक दशा तथा राष्ट्रकी आर्थिक आवश्यकता प्रगट की जाती है। प्रजासत्ताक राज्योंमें प्रायः शासक-सभा नियामक-सभाके लिये बजट बनाती है। इसका मुख्य उद्देश्य यही होता है कि नियामक सभाको अर्थ सम्बन्धी संपूर्ण सूचनायें मिल जावें। अर्थ सम्बन्धी कोई भी बात उससे छिपी न रहे।

बजटमें प्रायः भूत तथा भविष्यत् दोनोंका ही ध्यान रखा जाता है, अर्थात् बजटमें यह स्पष्ट तौरपर दिखा दिया जाता है कि गुजरे हुए वर्ष पर राष्ट्रके आर्थिक नियमोंका क्या प्रभाव हुआ और भविष्यत्में उन नियमोंसे क्या आशा की जाती है और अब क्या करना उचित है। यही कारण है

कि बहुतसे अर्थ सम्बन्धी राज्य-नियम बजटके समयमें ही बनते हैं।

बजटपर जनताका प्रभुत्व तथा आर्थिक स्वराज्य

चिरकालसे बजटके प्रभुत्व द्वारा प्रतिनिधि सभाने संपूर्ण राजकीय कलका सञ्चालन अपने हाथमें कर लिया है। हमने इसी अर्थमें इस पुस्तकके अन्दर आर्थिक स्वराज्य शब्दका व्यवहार किया है। इस शब्दका व्यवहार करना किसी हद्दतक बहुत उचित भी है, क्योंकि चिरकालसे राजनीतिक संसारमें यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि राष्ट्रीय आय-व्ययपर जिसका स्वत्व होता है वही राजकीय कलको चलाता है। इतिहास इस बातका साक्षी है। दृष्टान्तके तौर पर संवत १३७२ (सन् १३१५) में ही इंग्लैण्डने यह उद्घोषित किया था कि राज्य स्वेच्छापूर्वक प्रजासे धनको ग्रहण नहीं कर सकता है। मैग्नाकार्टाके बारहवें नियममें लिखा है कि—साम्राज्यकी साधारण सम्मतिकी अनुमतिके बिना राज्य किसीसे भी धन सम्बन्धी सहायता नहीं ले सकता है।" यद्यपि इसी नियममें कुछ बातोंके लिये राजाको धन ग्रहण करनेमें स्वतन्त्रता दे दी गयी है तोभी साधारण तौर पर इस कार्यमें प्रजाने अपना ही अधिकार प्रगट किया है। इसी प्रकार संवत् १८४४ (सन् १७८७) फ्रांसीसी प्रजाने राजाको यह स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि हमारा यह सबसे पुराना अधिकार है कि राजकीय आयका नियन्त्रण हम ही करें। हालैण्डमें भी

इङ्गलैण्डमें आर्थिक स्वराज्य

फ्रांस

हालैण्ड

शासकको कर बढ़ानेके लिये जन-समितिके सन्मुख स्वयं उपस्थित होना पड़ता था। आज कल तो बजट एकमात्र इसलिये भी बनाये जाते हैं कि जनता राष्ट्रीय आयव्यय पर अपना अधिकार स्थापित कर सके। प्रत्येक प्रतिनिधितन्त्र राज्यमें शासन-पद्धतिकी धाराओंमें आय-व्यय पर प्रजाका अधिकार स्पष्ट शब्दोंमें लिखा हुआ है। विषयको स्पष्ट करनेके लिये कुछ देशोंके आय-व्यय सम्बन्धी प्रजाके अधिकारोंको यहाँ पर दे देना आवश्यक है।

(क) इंग्लैण्डमें प्रजाके आय व्यय-सम्बन्धी अधिकार:—इंग्लैण्डमें प्रतिनिधि-सभाके निम्न-लिखित तीन आर्थिक अधिकार हैं।

इंग्लैण्डको आर्थिक स्वराज्य सम्बधी धारायें

(१) नवीन करोंका लगाना, प्राचीन करोंकी रेटको बढ़ाना तथा प्रचलित करोंका पुनः पास करना एकमात्र प्रतिनिधि सभाके ही हाथमें है।

(२) प्रत्येक हालतमें राजकीय ऋणोंकी स्वीकृति।

(३) राजकीय व्ययकी स्वीकृति अर्थात् भिन्न . भिन्न कार्योंके लिये आर्थिक सहायता देना तथा न देना आंग्लप्रतिनिधि सभाके ही हाथमें है।

फ्रान्सको आर्थिक स्वराज्य सम्बधी धारायें

(ख) फ्रान्समें प्रजाके आय व्यय-सम्बन्धी अधिकार :—सं. १८४४ की क्रान्तिके अनन्तर फ्रान्समें १८ बार शासन पद्धतिका परिवर्त्तन हो चुका है। प्रत्येक शासन-पद्धतिमें आय-व्यय-पर प्रजाका

अधिकार अखण्डित रहा है। १८४६ संवत की शासन पद्धतिकी निम्नलिखित धारायें फरासीसी जनताके आय-व्यय-सम्बन्धी अधिकारकी आधार कही जा सकती हैं।

(१) नियम धारा ५ में लिखा है कि प्रतिनिधि सभाकी स्वीकृतिके बिना कोई भी कर प्रजासे न लिया जा सकेगा।

(२) नियम धारा ६ में लिखा है कि धन-व्यय का निरीक्षण फरासीसी जनताके ही हाथमें होगा।

(३) इसी प्रकार नियम धारा ७ में लिखा है कि प्रत्येक प्रकारके राज-नियमके भङ्गके लिये राष्ट्रसचिव प्रतिनिधि सभाके प्रति उत्तरदायी होंगे।

जर्मनीके आय-व्यय स्वराज्य-सम्बन्धी नियम

(ग) जर्मनीमें प्रजाके आय-व्यय-सम्बन्धी अधिकार—जर्मनीमें महायुद्धसे पूर्वतक विचारमें राष्ट्रीय धन-व्यय पर जनताका ही नियन्त्रण था। कार्य रूपमें कभी कभी यह नियन्त्रण शिथिल हो जाता था। दृष्टान्तके तौर पर संवत् १६१८ में जर्मन प्रतिनिधि सभामें जर्मन राज्यकी ओरसे सैनिक सुधार सम्बन्धी बिल पेश हुआ परन्तु प्रतिनिधि सभाने इस बिलको पास न किया। यह होते हुए भी राज्यने प्रतिनिधि सभाकी इच्छाके विरुद्ध सैनिक सुधार किया और सेना पर खर्चा बढ़ाया। संवत् १६२३ में सैडोवा पर

विजय प्राप्त करनेके अनन्तर जर्मन राज्यने पुनः सैनिक सुधार सम्बन्धी बिल पेश किया और अपने पुराने नियम विरुद्ध कार्यको नियमयुक्त पास करवा दिया। यही नहीं, जर्मन शासन-पद्धतिमें आय-व्यय आवश्यक तथा ऐच्छिक इन दो विभागोंमें विभक्त किया गया है। आवश्यक आय-व्ययमें प्रतिनिधि सभाका अधिकार परिमित है। राज्य प्रतिनिधि सभाकी अनुमतिके विना भी आवश्यक आय प्राप्त कर सकता है और उसको खर्च कर सकता है। परन्तु ऐच्छिक आय व्ययमें राज्यका प्रतिनिधि सभाकी अनुमतिको लेना अत्यन्त जरूरी है।

अमरीका तथा आर्थिक स्वराज्य

(घ) अमरीकामें प्रजाके आय व्यय-सम्बन्धी अधिकार—अमरीका की भिन्न भिन्न रियासतों तथा मुख्य राज्यका यह आधारभूत नियम है कि राष्ट्रीय आय-व्ययका नियन्त्रण अमरीकन जनता ही करे। प्रत्येक शासन-पद्धतिमें इसी बात पर ज़ोर दिया गया है। यह क्यों? यह इसी लिये कि कोष ही राष्ट्रका हृदय है। राष्ट्र-शरीरका जीवन तथा प्राण राष्ट्रीय धन ही है। राष्ट्रकी राजनीति उसीके हाथमें होती है जिसका कि राष्ट्रके आय-व्यय पर प्रभुत्व होता है। बजट पर नियन्त्रण करके ही संपूर्ण सभ्य देशोंकी जनता स्वतन्त्रताका उपभोग कर रही है। हम लोगोंका

दुर्भाग्य है कि हमको अपने धनके खर्च करनेमें भी स्वतन्त्रता नहीं मिली है। हमारे आय-व्ययका नियन्त्रण निम्नलिखित प्रकारसे विदेशीय लोग ही करते हैं। *

भारत तथा आर्थिक स्वराज्य

(ङ) भारतवर्षमें प्रजाके आय व्यय सम्बन्धी अधिकार—अपने आय व्यय पर भारतीय जनताको कुछ भी अधिकार नहीं मिला हुआ है। भारतीय आय-व्यय तथा बजट पर आंग्ल पार्लयामेन्टका नियन्त्रण है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि कार्य रूपमें निम्नलिखित दो स्थलोंमें ही आंग्ल जनता भारतीय धन पर अपना प्रभुत्व प्रगट करती है।

(१) भारतकी सीमाके बाहर भारतीय राज्य दोनों आंग्ल सभाओंकी अनुमतिके बिना किसी प्रकारका भी धन-व्यय युद्ध आदि पर नहीं कर सकता है।

भारतके बजटका पार्लमेन्ट द्वारा पास होना न्याययुक्त नहीं है।

(२) संवत् १८१५ के राज्य नियमके अनुसार भारतीय बजटका आंग्ल प्रतिनिधि सभामें प्रत्येक वर्ष पेश होना अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ पर जो कुछ प्रश्न उठता है वह यह है कि भारतीय आय व्यय तथा बजटका आंग्ल प्रतिनिधि तथा पार्लमेन्टसे क्या सम्बन्ध है? क्या भारतीय राज्यका सञ्चालन आंग्ल जनता अपने धनके द्वारा करती है? यदि ऐसा हो तब तो भारतीय

* बामदकृत—दी साइस आफ फाइनेंस (१९८) पृष्ठ ११७-१२२

आय व्यय तथा बजटका आंग्ल प्रतिनिधि सभामें पेश होना किसी हद तक युक्तियुक्त हो सकता है। परन्तु वास्तविक बात क्या है? भारतीय जनता से धन ग्रहण किया जाता है और भारतीय बजट आंग्ल प्रतिनिधि सभामें पेश होता है? यह कहाँ-का न्याय है? यदि ऐसा विपरीत कार्य ही न्याय-युक्त हो और साम्राज्यका घनिष्ट सम्बन्धका इसीसे पता लगे तो क्यों न इंग्लैण्डके आय-व्ययका बजट भारतीय जनताकी प्रतिनिधि सभामें पेश हो? सारांश यह है कि भारतीय जनता पर सारीकी सारी आंग्ल जनताका प्रभुत्व है। प्रत्येक अंग्रेज़ राजनीतिक दृष्टिसे हमारा राजा है। यही कारण है कि भारतीय नियामक सभाको भी यद्यपि यह भी भारतीय जनताकी पूर्ण प्रतिनिधि नहीं है— अपने ही बजट पर सम्मति तथा वीटो करनेका अधिकार नहीं है। यह सभा केवल बजट पर विवाद कर और देशके शासनकी अच्छाई या बुराईकी आलोचना कर सकती है। सं० १९४९ के बजट सम्बन्धी नियमोंसे भी नियामक सभाको कोई अधिकार न मिला। बजट पर न यह सम्मति दे सकती थी और न उसमें किसी प्रकारका संशोधन ही कर सकती थी। संवत् १९६६ में पुनः राज्य नियम बना। इसके द्वारा भी नियामक सभाको भारतीय धनके नियन्त्रणमें कुछ भी अधिकार न मिला। शासक सभा जैसा

चाहे बजट बनावे, नियामक सभा बनमें कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकती है। इस पिछले पचास वर्षोंसे प्रत्येक नवीन कर सम्बन्धी बिल नियामक सभाके द्वारा पास करवाये जाते हैं परन्तु वे बजटमें शामिल नहीं समझे जाते। यदि नियामक सभाको बजटके पास करने या न करनेका अधिकार दे भी दिया जावे तो भी हमको क्या लाभ है, क्योंकि नियामक सभा वास्तवमें भारतीय जनताके प्रति उत्तरदायी नहीं है। *(नूतन शासन व्यवस्थाके अनुसार सैनिक व्यय इ० छोड़ शेष बजट पास करनेका अधिकार नियामक सभाको दिया गया है। संपादक)—

२—बजटका तैयार करना

बजटका कार्य क्रम।

बजट पर जनताका नियन्त्रण कहाँ तक आवश्यक है और भिन्न भिन्न सभ्य देशोंमें बजटपर जनताका नियन्त्रण किस हद तक है इसपर प्रकाश डाला जा चुका है। अब इस प्रकरणमें बजटका स्वरूप तथा तत्सम्बन्धी कुछ छोटी छोटी बातों पर प्रकाश डालनेका यत्न किया जायगा।

प्रत्येक बजट, सभ्य देशोंके अन्दर प्रायः तीन क्रमोंके अन्दर गुजरता है। (१) बजटका

*आर—रंगस्वामी आयंगरकृत—दी इंडियन कांस्टीट्यूशन १९१३ पृष्ठ २०९—२२०

तैयार करना, (२) बजटको राज्य नियमके अनुकूल ठहराना, (३) बजटको कार्यरूपमें लाना। इस प्रकरणमें बजट किस प्रकार तैयार किया जाता है यही दिखाया जायगा।

बजटके तैयार करनेके मामलेमें पहिला प्रश्न यही उठता है कि राज्यका कौनसा कर्मचारी तथा कौनसा राजकीय विभाग इसको तैयार करता है।

शासक विभाग का बजटका तैयार करना

जिन देशोंमें शासक विभागको नियामक विभागमें बैठनेकी आज्ञा होती है, वहां बजटको शासक विभाग ही तैयार करता है। यह होना ही चाहिये, क्योंकि जो विभाग या व्यक्ति देशके शासनको करता हो वही यह अच्छी तरहसे जान सकता है कि शासनको उत्तम विधि पर करनेके लिये कितने धनकी ज़रूरत होगी और किन किन स्थानोंसे सुगमतासे ही धन प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जनताकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिये ऐसी नियामक सभामें बजटका पास करवाना अत्यन्त आवश्यक है जो कि एक मात्र जनताकी प्रतिनिधि हो। इसमें सन्देह नहीं कि बजटका तैयार करना नियामक सभाके हाथमें जहां तक न हो वहां तक उत्तम ही है। क्योंकि शासन-कार्य्यसे अनभिज्ञ नियामक सभाके सभ्य बजटके बनानेमें बड़ी गड़बड़ मचा सकते हैं। नये नये आयव्ययके सिद्धान्तोंको लगा कर

वे लोग बजटको ऐसा रूप दे सकते हैं जिस को कार्य्यमें लाना सर्वथा कठिन हो जावे। बजट बनाते समय आय तथा व्ययमें सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक होता है। किन किन स्थानोंसे धन मिल सकता है और किन किन राष्ट्रीय विभागोंको कितना कितना धन मिलना चाहिये यह शासक विभाग ही उत्तम विधि पर पता लगा सकता है। परन्तु इसमें सन्देह करना भी वृथा है कि शासक-विभाग शासित-जनताकेप्रति अवश्य ही उत्तरदायी होना चाहिये। भारतके सदृश शासक विभागका होना जो कि आंग्ल जनताका उत्तरदायी हो न कि भारतीय जनताका कभी भी किसी जनताकी स्वतन्त्रताके लिये हितकर नहीं हो सकता है।

बजट तथा आय व्यय सन्तुलन

(क) इङ्गलैण्डमें बजटका तैयार करना:—

इङ्गलैण्डमें बजटका तय्यार करना।

इंगलैण्डमें मन्त्रि-मण्डल आयव्यय सम्बन्धी मामलोंमें आंग्ल प्रतिनिधि सभाकी एक उपसमिति समझा जाता है। इसका उत्तरदायित्व प्रतिनिधि सभामें अपरिमित है। हमने अपने राजनीति शास्त्रमें यह विस्तृत तौर पर प्रगट किया है कि किस प्रकार आंग्ल मन्त्रि मण्डलके हाथमें ही देश की शासक तथा नियामक शक्ति है। शासक स्वरूपमें आंग्ल मन्त्रिमण्डल आंग्लप्रतिनिधि सभाके सामने वार्षिक विवरण पेश करता है जिसमें वह यह

स्पष्ट तौर पर दिखाता है कि देशमें आर्थिक नियमोंका सञ्चालन किस प्रकार हुआ और नियामक स्वरूपमें वही प्रतिनिधि सभाको यह प्रगट करता है कि राज्यकी भावी आर्थिक नीति क्या होनी चाहिये। आंग्ल मन्त्रिमण्डलने देशके शासन, नियमन तथा आयव्ययको बडी उत्तम विधिसे चलाया है। यही कारण है कि राजनीतिज्ञ लोग इस संस्थाकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हैं। इंग्लैण्डमें कोषाध्यक्ष (चान्सलर आफ दि एक्सचेकर) ही बजट बनाता है।

(ख) जर्मनीमें बजटका तैय्यार करना:–जर्मनीकी शासन-पद्धति महायुद्धसे पूर्वतक अति पेचीदा थी। यही कारण है कि बजट पर एक मात्र नियन्त्रण जर्मन जनताका नहीं था। यह क्यों? यह इसी लिये कि जर्मन चान्सलरको राजा नियत करता था और प्रतिनिधि सभाके विरुद्ध होते हुए भी वह अपने पद पर स्थिर रह सकता था। ऐसी दशामें जर्मन शासक सभाका किसी हद तक स्वच्छन्द हो जाना स्वाभाविक ही है। सैनिक सुधार सम्बन्धी बिलमें यही बात हो चुकी है। निस्सन्देह शासन पद्धतिकी नियम धाराओंके अनुसार रीशटाग (जर्मन लोकसभा) के सभ्य आयव्यय सम्बन्धी बिल पेश कर सकते हैं और शासक सभा तथा राज्यकी अनुमतिके बिना उसको पास

जर्मनीमें बजट का तैयार करना

भी कर सकते हैं परन्तु अभी तक उन्होंने ऐसा नहीं किया है।* यदि वे अब ऐसा करें तो जर्मन शासन-पद्धतिमें क्रान्तिका हो जाना स्वाभाविक ही है। यह सब होते हुए भी जर्मन राज्यने आय-व्ययके मामलेमें इंग्लैण्डके सदृश ही सफलता प्रगट की है।

अमरीकामें बजटका तैयार करना।

(ग) अमरीकामें बजटका तैयार करनाः— अमरीकामें बजटका तैय्यार करना अति विचित्र है। प्रभुत्व-शक्ति इंग्लैण्डमें प्रतिनिधि सभाके पास है और जर्मनीमें मुख्य राज्यके पास है परन्तु अमरीकामें वह एक मात्र किसीके पास भी नहीं है। शासक या नियामक विभागमेंसे बजटको एक मात्र कोई भी पूर्ण तौर पर तैयार नहीं करता है। अमरीकामें शासक विभाग बजटको तैयार करना प्रारम्भ करता है और बजटको पूर्ण तौर पर समाप्त किये बिना ही नियामक विभागके पास उसको भेज देता है। नियामक विभागके पास पहुँचते समय बजटका निम्न लिखित स्वरूप होता है।

नियामक विभागमें आनेके समय बजटका स्वरूप।

(१) पिछले वर्षके आर्थिक नियमोंका विवरण।

(२) राज्यको आगामी वर्षमें कितने धनकी जरूरत होगी।

(३) आगामी वर्षोंके लिये प्रतिनिधि सभाको अपनी आर्थिक नीति क्या रखनी चाहिये इस पर शासक विभागकी अपनी सम्मति।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बजटका निर्माण करना अमेरिकन शासन सभाके पास न हो कर एक मात्र अमरीकन नियामक सभाके ही हाथमें है। नियामक सभा भिन्न भिन्न उपसमितियोंको बजट बनानेका काम सुपुर्द करती है जो कि स्वयं पृथक् शासक विभागके सभ्योंसे बजटके मामलेमें परामर्श ले लेती है। आजकल अमरीकाके बजट सम्बन्धी इस कार्यक्रम पर निम्न लिखित तीन आक्षेप किये जाते हैं।

अमरीकाके बजट सम्बन्धी कार्यक्रम पर तीन आक्षेप

(१) अमरीकन राज्यका कोष-सचिव बजटके मामलेमें एक मात्र क्लार्कका ही काम करता है। बजटके बनानेमें उसको कुछ भी अधिकार नहीं है। इससे एक भयंकर दोष यह उत्पन्न हो सकता है कि कोष-सचिव. बेपरवाहीसे बजट बनावे और दूसरे भिन्न शासन विभागके अधिकारी अपना अनुचित महत्व दिखानेके लिये अपने अपने विभागोंका खर्चा वास्तविक खर्चेसे अधिक प्रगट करें।

यह दूषण केवल एक ही तरीकेसे दूर किया जा सकता है कि बजट बनाने वाली उपसमितियां एक मात्र कोषाध्यक्षसे भिन्न भिन्न विभागोंके खर्चोंके विषयमें पूंछे।

(२) अमरीकन आय तथा व्यय सम्बन्धी बजट बनाने वाली उपसमितियां पृथक् पृथक् हैं। परिणाम इसका यह है कि आय तथा व्ययका

संतुलन उसम विधि पर नहीं हो सकता है। यही कारण है कि आर्थिक नियमोंके मामलोंमें अमरीकन शासन-पद्धति अतिशिथिल है।

(३) अमरीकामें आय व्यय सम्बन्धी बजटके बनाने तथा पास करनेके मामलेमें अमरीकाके प्रधानको कुछ भी शक्ति नहीं मिली हुई है। दोनों सभाओंसे बजटके पास हो जाने पर अन्तिम स्वीकृतिके लिये बजट प्रधानके पास जाना है। प्रधान बजटको पास करनेसे निषेध कर सकता है परन्तु बजटमें किसी प्रकारका भी सुधार वह नहीं कर सकता है।*

३-बजटको राज्य नियमके अनुकूल ठहराना।

बजट को तैय्यार करने तथा नियमानुकूल ठहरानेमें भेद।

प्रायः संपूर्ण प्रतिनिधितन्त्र राज्योंमें बजटको राज्य नियमके अनुकूल ठहराना और बजटको तैय्यार करना भिन्न भिन्न कार्य समझा जाता है। प्राय: शब्द इस लिये जोड़ दिया है कि बहुत से प्रतिनिधि-तन्त्र राज्योंमें शासक तथा नियामक विभागमें पार्थक्य होता है और नियामक विभागमें ही सारेके सारे प्रस्ताव पेश होते हैं।

*आदमकृत—साइन्स आफ फाइनेंस पृष्ठ १३६—१४४
रंगस्वामी आयंगरकृत—"इंडियन कांस्टीट्यूशन" पृष्ठ २०८—

ऐसे राज्योंमें बजटको तैय्यार करना तथा उसको नियमानुकूल ठहराना दो भिन्न भिन्न कार्य नहीं समझे जाते हैं। यही नहीं, भारतवर्ष जैसे पराधीन तथा आर्थिक स्वराज्य रहित देशोंमें भी यही घटना काम करती है।

संपूर्ण प्रतिनिधितन्त्र देशोंमें समितियोंके द्वारा ही नियामक विभाग बजटके कार्यको निपादन करते हैं। इंग्लैण्डमें समितियोंका संघटन प्रतिनिधि सभामें ही समझा जाता है, परन्तु फ्रान्समें इससे सर्वथा भिन्न तौर पर काम होता है। यहां दोनों सभाओंके नियमानुसार किसी एक समितिके ही हाथमें यह अधिकार है। अमेरिकामें तो स्थिर उपसमितियां पार्लमेन्टका ही भाग समझी जाती हैं। भारतवर्षमें शासकविभाग ही बजटके कार्यको करता है। विषयके स्पष्ट करनेके लिये प्रत्येक देशके बजट सम्बन्धी कार्यको दे देना उचित प्रतीत होता है।

इंगलैण्डमें बजटका कार्य क्रम।

(क) इंग्लैण्डमें बजट सम्बन्धी कार्य क्रमः— इंग्लैण्डमें संपूर्ण कार्यका आरम्भ राजाकी वक्तृता तथा उत्तरमें दिया हुआ एड्रस है। राजाकी वक्तृतासे कार्यका आरम्भ इंग्लैण्डमें चिरकालसे है। इसीमें साम्राज्यकी आर्थिक अवस्था तथा आर्थिक आवश्यकता प्रगट की जाती है और पार्लमेन्ट के संपूर्ण सभ्योंसे सम्मति ले ली जाती है कि राज्यको धनकी सहायता मिलनी

चाहिये। यहाँतक संपूर्ण काम शान्तिसे ही होता है। धनकी सहायता सम्बन्धी सम्मति के ले लेनेके अनन्तर वह दिन प्रतिनिधि सभाकी सम्मतिसे नियत होता है जिस दिन कि बजट सम्बन्धी विचार करना आवश्यक हो। दिन के नियत होने पर प्रतिनिधि सभा बर्खास्त हो जाती है और नियत दिन पर प्रतिनिधि सभाके सभ्य एकत्र होते हैं और साम्राज्यका कितना खर्चा है और उसके लिये कितना धन आवश्यक है यह निश्चित कर लेते हैं। इसके अनन्तर प्रतिनिधिसभा एक समितिके रूपमें बैठती है और वह विचार करती है कि धन किन किन स्थानोंसे प्राप्त किया जा सकता है। इस समितिको साधन-समिति (कमिटी आफ वेज़ एण्ड मीन्स) कहते हैं। इसी समिति में कोषाध्यक्ष (चांसलर आफ दि एक्सचेकर) अपनी बजट सम्बन्धी वक्तृता देता है।

प्रतिनिधि सभाका साधन-समितिके रूपमें बैठनेका रहस्य यह है कि उसके सभ्योंको विवाद करनेमें स्वतन्त्रता मिले और वह पार्लमेन्टके कठोर नियमोंसे बच जावें। ऐसा क्यों? यह इसीलिये कि बजटके काममें बड़े भारी चातुर्यकी आवश्यकता होती है और उसमें प्रत्येक श्रेणीके लोगोंके स्वार्थोंका ध्यान रखना पड़ता है। ऐसे कठिन कामको प्रतिनिधि सभा जैसी बड़ी सभा का सफलता पूर्वक करना कठिन होता है। यह

प्रतिनिधिसभा का साधन समितिके रूप मे बैठनेका रहस्य

कठिनता और भी अधिक बढ़ जाती यदि सभ्योंको पार्लमेन्टके रूपमें ही बैठना पड़ता। यहां पर यह स्मरण रखना चाहिये कि बजट सम्बन्धी कार्य आंग्ल प्रतिनिधि सभा जैसी बड़ी सभा के द्वारा सब देशोंमें सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है। यदि इस कार्यमें आंग्ल प्रतिनिधि सभाने सफलता प्राप्त की है तो इसका कारण है। यह इस प्रकार दिखाया जा सकता है।

आंग्ल प्रतिनिधि सभाका बजट सम्बन्धी सफलता के मुख्य कारण

इंग्लैण्डमें दलोंका राज्य है। दलके नेता लोग ही अपने पक्षपातियों तथा अनुयायियोंकी ओरसे बोलते हैं और देशकी राजनीतिमें पूर्ण भाग लेते हैं। प्रतिनिधि सभाके संपूर्ण सभ्य साधनसमिति में उपस्थित हो सकते हैं परन्तु प्रायः वे लोग ऐसा नहीं करते हैं भिन्न भिन्न दलोंके नेता ही साधन समितिमें जाते हैं और बजट बनानेमें भाग लेते हैं। सारांश यह है कि साधन समितिमें चतुर लोग ही जाते हैं और उनकी संख्या भी बहुत अधिक नहीं होती है।

(२) बजटपर विवाद प्रायः प्रश्नोंके रूपमें ही होता है जिससे बजट बनाते समय राज्यको बड़ी सावधानी करनी पड़ती है और संपूर्ण बातोंका ख्याल रखना पड़ता है। सारांश यह है कि बजट निर्माण का आंग्ल ढंग ऐतिहासिक है। आंग्लोंके आचार व्यवहारके ही यह अनुकूल है। संसारके

अन्य सभ्य देश इसका अनुकरण नहीं कर सकते हैं।

फ्रान्समें बजट का कार्य क्रम

(ख) फ्रान्समें बजट सम्बन्धी कार्य क्रमः—फ्रान्समें बजटका कार्यक्रम बहुत ही कृत्रिम है। बजटके कार्यके लिये फरांसीसी प्रतिनिधि सभा लाटरी द्वारा ११ भिन्न भिन्न समूहोंमें बांट दी जाती है। प्रत्येक नियम सम्बन्धी प्रस्ताव इन्हीं समूहोंके द्वारा पास किया जाता है। प्रत्येक समूह अपना एक एक सभ्य चुनता है जो कि नियामक उपसमिति (लेजिस्लेटिव कमिटी) के रूपमें बैठते हैं। यह उपसमिति ही भिन्न भिन्न नियमों पर विचार करती है परंतु बजटके मामलेमें विचार करनेके लिये प्रत्येक समूहको तीन तीन सभ्य चुनने पड़ते हैं और इस प्रकार ३३ सभ्योंकी उपसमिति बन जाती है जो कि बजट जैसे गम्भीर प्रश्नपर विचार करती है।

फरांसीसी बजट कार्यक्रमपर विचार

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि बजट जैसे गम्भीर मामलेके लिये फरांसीसी कार्यक्रम कहां तक उचित है? क्योंकि लाटरी द्वारा बजट बनानेके लिये सभ्योंको चुनना एक प्रकारसे साधारण योग्यताके आदमियोंके हाथमें इस महान कामको देना है। इससे कार्यका उत्तम विधिपर न हो सकना स्वाभाविक ही है। इस दोषको फरांसीसियोंने स्वयं भी अनुभव किया था और यही कारण है कि संवत् १९४४ में बजट समितिको लाटरी द्वारा न

चुन कर उसे समितियोंके द्वारा चुना। शोक है कि फ्रान्सने इस विधिको पुनः प्रचलित न किया और लाटरीके द्वारा ही अगले वर्षोंमें बजट समिति के सभ्योंको चुनना शुरू कर दिया। फरांसीसी बजट समिति तथा आंग्ल साधन-समितिमें बड़ा भारी भेद है। फरांसीसी बजट समिति धन सम्बन्धी प्रस्तावोंका ही एकमात्र निरीक्षण करती है और ऐसा उपाय करती है जिससे विवादमें सुगमता रहे। आंग्ल-साधन समितिके साथ यह बात नहीं है। वह बहुत कुछ अन्तिम निर्णय करती है। यह एक मात्र विवादकी सुगमताके लिये नहीं है। वह अपने विचारों तथा निर्णयोंके लिये उत्तरदायी है जबकि फरांसीसी बजट समिति इस प्रकारकी जिम्मेदारियोंसे सर्वथा मुक्त है। गंभीर तौर पर विचारनेसे मालूम पड़ता है कि फ्रान्सका बजट सम्बन्धी कार्यक्रम दोषपूर्ण होते हुए भी फरांसीसी जनताके स्वभावके सर्वथा अनुकूल है। अन्य जातिके लोग फरांसीसी विधिका अनुकरण नहीं कर सकते हैं क्योंकि प्रतिनिधि सभामें जो फरांसीसी बजटपर विवाद होता है और भिन्न भिन्न दलके लोग जिस प्रकार उसकी काट-छांट करते हैं उससे बजटमें गड़बड़ीका हो जाना स्वाभाविक ही है। यदि फ्रान्समें इस प्रकारकी गड़बड़ी नहीं होती तो इसका मुख्य कारण फरांसीसियोंका आचारव्यवहार है।

आंग्ल साधन समिति

अमरीकामें बजट सम्बन्धी कार्यक्रम

(ग) अमरीकामें बजट सम्बन्धी कार्यक्रम

अमरीकामें जिस समय प्रतिनिधितन्त्र शासन पद्धतिका निर्माण हुआ था उस समय नियम-सम्बन्धी संपूर्ण काम कांग्रेसके ही हाथमें थे। यह क्यों? यह इसी लिये कि उस समय काम बहुत थोड़े थे और कांग्रेस उन कामोंको बड़ी सुगमतासे कर सकती थी। परन्तु अब यह बात नहीं रह गयी है। यही कारण है कि संवत् १८१८ में प्रतिनिधि सभाको ५ स्थिर उपसमितियां बनायी गयीं। संवत १८९३ में सीनेटने भी स्थिर उपसमितियों-का होना आवश्यक मान लिया। आज कल अमरीकामें ५० से ६० तक प्रतिनिधि सभाकी स्थिर उपसमितियां विद्यमान हैं और सीनेटकी ४० स्थिर उपसमितियां हैं। इन उपसमितियोंका चुनाव कांग्रेसके द्वारा हुआ है। अमरीकाकी स्थिर उपसमितियोंके विचित्र अधिकार हैं और यही कारण है कि किसी भी देशकी उपसमितियोंसे उनकी तुलना नहीं की जा सकती है।

अमरीकन उपसमितियोंका स्वरूप।

(१) अमरीकन प्रतिनिधि सभाकी उपसमितियोंका चुनाव प्रतिनिधि सभाका प्रधान ही करता है। वह प्रायः अपने ही दलके लोगोंको भिन्न भिन्न उपसमितियोंमें रखता है। इससे नियम निर्माण तथा बजटमें भी दल सम्बन्धी मामलोंका प्रवेश हो जाता है। फ्रान्समें यह बात नहीं होती

है, क्योंकि वहाँ बजट समितिके सभ्योंका चुनाव लाटरीके द्वारा होता है।

(२) अमरीकन प्रतिनिधि-सभाका प्रधान उपसमितियोंके चुनावमें अन्य दलके लोगोंको भी स्थान देता है और भिन्न भिन्न स्थानों तथा व्यक्तियोंके स्वार्थका पर्याप्त तौर पर ध्यान रखता है। अमरीकाकी यही राजनीतिक प्रथा है। इसका अपलाप कोई भी प्रधान नहीं कर सकता है। इंग्लैण्डमें यही बात अन्य विधि पर स्वयं ही हो जाती है जिसका वर्णन अभी किया जा चुका है।

(३) अमरीकन उपसमितियोंमें संपूर्ण मामलों पर बहुत ही गम्भीर तौर पर विचार किया जाता है। भिन्न दलोंके लोगोंसे सम्मतियाँ ली जाती हैं और उन पर सोचा जाता है। यही कारण है कि एक प्रकारसे उपसमितियोंका निर्णय प्रायः अन्तिम निर्णय होता है, यद्यपि उस निर्णयको प्रतिनिधि सभा ही पास करती है। प्रतिनिधि-सभाके बीचमें यदि कोई सभ्य उपसमितिके प्रस्तावोंका संशोधन भी करे तो वह संशोधन प्रायः पास नहीं होता है, क्योंकि प्रतिनिधि सभाके सभ्योंका बहुपक्ष प्रायः उपसमितिके प्रस्तावोंको ही पास करता है। *

---

* बादम्सका फायनन्स (१८९८) पेज १४६ १५२।

भारतमें बजट सम्बन्धी कार्य-क्रम।

(घ) भारतमें बजट सम्बन्धी कार्यक्रमः— भारतवर्षमें बजैट सम्बन्धी उपरिलिखित कार्य क्रम नहीं है। यहाँ प्रतिनिधितन्त्र या उत्तरदायी राज्य नहीं है। उपरिलिखित कार्यक्रम उत्तरदायी राज्योंमें ही होता है। स्वेच्छाचारी अनुत्तरदायी राज्योंमें इस प्रकारका कार्यक्रम कभी भी सम्भव नहीं है। भारतमें सरकारी शासक सभी स्थिर हैं। वे जैसा चाहे बजट बनावें, जनता उसमें किसी प्रकारका विशेष परिवर्तन नहीं कर सकती है। आज कल नाममात्रका अधिकार जनताको मिला है। बजट तथा धन सम्बन्धी व्याख्यान (फाइनैन्शल स्टेटमेण्ट) में आज कल भेद कर दिया गया है। धन संबंधी व्याख्यान या प्रारम्भिक बजटके समयमें नियामक सभा (१) राज्य करमें परिवर्तन (२) नवीन जातीय ऋणके लेने तथा (३) स्थानीय राज्यको कुछ अधिक धनकी सहायता आदि देनेके मामलेमें नये नये प्रस्ताव पेश कर सकती है। इन प्रस्तावों पर सम्मति ले ली जाती है। इसके अनन्तर नियामक सभा भिन्न भिन्न समूहोंमें विभक्त हो कर धन सम्बन्धी भिन्न भिन्न शीर्षकों तथा विभागों पर उस विभागके शासककी अध्यक्षतामें विचार करती है। इस कार्यक्रमके बाद बजटको शासक सभा अन्तिम तौर पर पास करती है। इस बजटमें नियामक सभा कुछ भी परिवर्तन

नहीं कर सकती है। *

४—क्या सारे धनपर, प्रतिवर्ष बहु सम्मति ली जावे ?

बजटको पास करने तथा राज्य नियमानुकूल ठहरानेसे पूर्व यह निर्णय करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि क्या सारे धन पर प्रति वर्ष बहु सम्मति ली जावे या नहीं ? इस प्रश्नका उत्तर जनताके उत्तरदायित्व पर निर्भर रहता है। यदि जनतामें शासनपद्धति सम्बन्धी कुछ भी विवाद न हो, राज्यका कार्य प्रतिनिधियोंके द्वारा किया जाता हो और जनताको अपने अधिकारोंके खो देनेका कुछ भी भय न हो, तो उस हालतमें राज्यको कुछ धनकी राशि स्थिर तौर पर दी जा सकती है। परन्तु स्वरक्षित मार्ग यही है कि प्रति वर्ष ही संपूर्ण धन नियामक सभाके द्वारा पास किया जावे। भारतमें प्रतिनिधि तन्त्र राज्य नहीं है। राज्यके अधिकार अन्तिम हद तक पहुँचे हुए हैं। जब कभी भारतको उत्तरदायी राज्य मिले, भारतको यही चाहिये कि वह संपूर्ण धन पर प्रतिवर्ष सम्मति दिया करे और राज्यको स्थिर तौर पर धनकी राशि कभी भी न देवे। यद्यपि ऐसा करनेमें बहुतसे झमेले हैं परन्तु स्वतन्त्रताकी रक्षामें इन झमेलोंको सह लेना ही उत्तम

संपूर्ण धन पर बहु सम्मतिके प्रयोग विषयक समस्या।

भारतवर्षकी दशा

* "दि इंडियन कान्स्टीट्यूशन" लेखक श्री रंग स्वामी एय्यंगर।

है। यूरोपीय देशोंमें प्रतिनिधि तन्त्र राज्य चिर-कालसे हैं। अब उनको राज्यके स्वेच्छाचारका कुछ भी भय नहीं है। यही कारण है कि आज कल ये दिन पर दिन राज्यको कुछ धनकी राशि, स्थिर तौर पर दे देना पसन्द कर रहे हैं। यह इसी लिये कि:—

यूरोपीय देशों की दशा

उनका स्थिर तौर पर कुछ धन दे देनेका रहस्य।

(१) सारे धनपर प्रतिवर्ष बहु सम्मति लेना समयको वृथा गँवाना है। अतः धनकी कुछ राशि राज्यको सदाके लिये दे देना ही उचित है। इसमें मितव्ययिता है।

(२) बजटमें जितना अधिक धन भिन्न भिन्न कार्योंके लिये होता है उतना ही कम उसके प्रयोग पर गम्भीर विचार हो सकता है। यदि आवश्यक धन राज्यको स्थिर तौर पर दे दिया जावे और अवशिष्ट धन पर विचार किया जावे तो बहुतसे मामलों पर गम्भीर विचार हो सकता है और नियामक सभाको सोच विचार करके काम करनेकी आदत पड़ सकती है।

(३) प्रतिवर्ष यदि सारा धन पास किया जावे तो राज्य बहुतसे ऐसे काम नहीं कर सकता है जिनके पूरा करनेमें पर्याप्तसे अधिक समय लगता हो। लम्बे युद्धोंका सफलतापूर्वक करना भी राज्यके लिये कठिन हो सकता है।

सारांश यह है कि यदि कोई देश पूर्ण तौर पर प्रतिनिधि तन्त्र न हो या उसमें अभी प्रति-

निश्चितरूप राज्य स्थिर न हुआ हो तो उस हालतमें सारे धनका प्रतिवर्ष पास करना ही उत्तम है और राज्य पर बहुत विश्वास करना हानिकर है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि स्थिर उत्तरदायी राज्य वाले देशोंको कुछ धनकी राशि राज्यका स्थिर तौर पर भी दे देनी चाहिये।

(क) इंग्लैण्डमें कार्यक्रम—इंग्लैण्डमें बहुतसे विभागोंके लिये राज्यको स्थिर तौर पर धनकी राशि दे दी जाती है, जोकि कुल वार्षिक व्ययका १३ के लगभग है। इस स्थिर धनका व्यय सरकारी नौकरीकी तनख्वाहें, जातीय ऋणके व्याज तथा इसी प्रकारके स्थिर कार्मोंमें होता है। यह स्थिर धन कान्सालिडेटड फन्डके नाम से पुकारा जाता है।

इंग्लैण्डमें कार्यक्रम

(ख) फ्रान्समें कार्यक्रम—फ्रान्समें सवत् १८४६, १८४८ तथा १८८४ में स्थिर धन विधिको काममें लानेके प्रस्ताव किये गये परन्तु नियामक सभाने स्वीकृत न किया। अतः फ्रान्समें अभी तक सारा धन ही प्रति वर्ष पास किया जाता है।

फ्रान्समें कार्यक्रम

(ग) अमरीकामें कार्य क्रम—अमरीकामें स्थिर धन विधिका प्रयोग है। भिन्न २ तरीकोंसे यह स्थिर धन वहां खर्च किया जाता है। इसका विस्तृत वर्णन निरर्थक है अतः इसको यहां पर ही छोड़ देते हैं।

अमेरिकामें कार्य क्रम।

जर्मनीमें कार्य क्रम।

(घ) जर्मनीमें कार्यक्रम—महायुद्धसे पूर्व जर्मनीमें स्थिर-धन विधिका प्रयोग था। सैनिक व्ययका धन सात सालोंके लिये स्थिर तौर पर पास कर दिया जाता था। इसी प्रकार अन्य कार्योंके लिये भी धनकी राशि स्थिर तौर पर राज्यको मिली हुई थी। जनताको जो कुछ अधिकार था वह यह था कि वह नये नये कार्योंके लिये धनकी राशि पास करें या न करें।

भारतमें काय क्रम।

(ङ) भारतमें कार्य क्रम—भारतमें बजटका पास करना भारतीयोंके हाथमें नहीं है। पूर्णतः ऐसी दशामें भारतीयोंका पहिला मुख्य काम यह है कि पूर्ण आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करनेका यत्न करें और अपने धनको स्वेच्छानुसार खर्च करनेका अधिकार प्राप्त करें, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिका यह जन्म सिद्ध अधिकार है कि वह अपने धनको जैसे चाहे खर्च करे *

५—आय-व्यय-संतुलन

धनकी कमी कैसे पूरी का जाय।

बजटके पास कर लेने पर ही राज्यकी सारी कठिनाइयां हल हो जाती हों, यह बात नहीं है। बजटको काममें लाने पर सालके अन्तमें आनुमानिक आयसे आनुमानिक व्यय बढ़ सकता है। ऐसी हालतमें क्या किया जाय? धनकी कमी

* आदम्स कृत फाइनन्स पृ० १५१–१६२

किस प्रकारसे पूरी की जाय ? क्या एकही सालके बीचमें पुनः दूसरा बजट तैयार किया जाय और वह पास किया जाय ? परन्तु यह कभी भी संभव नहीं है, क्योंकि इससे बहुतसे झमेले खड़े हो सकते हैं। प्रायः ऐसा हो जाता है कि दुर्भिक्ष पड़नेसे या किसी अन्य प्रकारकी आर्थिक दुर्घटनाके आ जानेसे राज्यको आनुमानिक आय प्राप्त नहीं होती है। इस कमीको दूर करनेके लिये नये नये टेक्सोंको प्राप्त करवाना और नये नये नियमोंको बनाना भयंकर भूल करना होगा क्योंकि इससे अगले वर्षोंमें राज्य कोषमें धन बचना शुरू हो जायगा और जनता पर व्यर्थकोही करका भार डाला जायगा। यही कारण है कि बजटमें धनकी कमीके प्रश्नको हल करनेसे पूर्व निम्न लिखित तीन बातों पर विचार कर लेना चाहिये।

आयव्यय शास्त्र का विचार।

(१) आय-व्यय-शास्त्रका विचार—आय-व्यय शास्त्रका यह मुख्य सिद्धान्त है कि जहां तक हो सके व्ययसे अधिक धन बजटमें पास करावे। आय-व्यय-सचिवका कर्तव्य है कि आय तथा व्ययमें सन्तुलन स्थापित रखे। शासकों पर कड़ी नजर रखे कि वे अधिक धन न खर्च करें। जितना धन जिस विभागके लिये बजटमें नियमित हो उतना ही धन उस विभागमें खर्च किया जाय।

शासन संबंधी विचार।

(२) शासन सम्बन्धी विचार—शासनकी उत्तमता तथा सफलताका यह चिन्ह है कि जो काम शुरू किया जाय वह धनकी कमीके कारण बीचहीमें न छोड़ा जाय। प्रायः देखा गया है कि राज्यको बीसों काम धनकी कमीके कारण बीचमें ही रोक देने पड़ते हैं परन्तु यह उचित नहीं है। इससे शासनकी उत्तमता नष्ट हो जाती है।

शासनपद्धति संबंधी विचार

(३) शासनपद्धति सम्बन्धी विचार—प्रतिनिधितन्त्र राज्योंमें प्रजाके प्रतिनिधि ही बजटको पास करते हैं। सफलतापूर्वक बजटके न चलनेमें प्रतिनिधि सभाकी या शासकोंकी बेवकूफी समझी जाती है। अतः जहां तक हो सके इस बुराईसे बचना चाहिये और आयके अनुसार ही वार्षिक व्यय होना चाहिये।

धनकी कमीको भिन्न भिन्न यूरोपीय जातियाँ भिन्न भिन्न तरीकोंसे दूर करती हैं जिनमेंसे निम्न लिखित तीन तरीके मुख्य हैं।

सहायक या पूरक बजट।

(१) सहायक बजटः—सालके मध्यमें वार्षिक बजटके सदृश ही सहायक बजट पास किया जाता है, जिसके पास करनेमें भी वार्षिक बजटके सदृश ही विवाद होता है। सहायक बजटके पक्षमें मुख्य युक्ति यह है कि इसके पास करनेसे वार्षिक बजटकी त्रुटि सन्मुख आ जाती है। जिस

जिन स्थानोंपर, बजटमें गल्ती हो गयी होती है उसका पता लग जाता है। परन्तु महाशय आदम सहायक बजटके विरुद्ध हैं। उनका कथन है कि बजटका समय जितना लम्बा हो उतना ही अच्छा है, क्योंकि इसीसे शासकोंके शासनकी उत्तमताका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यदि ५ या ६ मास बाद पुनः सहायक बजट पास कर दिया जाय तो इसका पता ही कैसे लग सकता है कि शासकोंने जातीय धनके व्यय करनेमें कितनी मितव्ययिता की और कितनी फजूल खर्ची। यहीं पर बस नहीं। इस प्रकारके सहायक बजटसे व्यवस्थापक सभाका बहुत सा अमूल्य समय वृथाही नष्ट होता है। अतः धनकी कमीसे बचनेके लिये सहायक बजटके तरीकेको काममें लाना उचित नहीं है।

(२) सहायक धन—सहायक बजटके तरीके को काममें न ला कर प्रायः सभ्य देश सहायक धन (डेफीशियेन्सी बिल्स या सप्लेमेण्टरी क्रेडिट्स) पास करनेके तरीकेको काममें लाते हैं। सहायक बजट तथा सहायक धन पास करनेकी विधिमें बड़ा भारी भेद है। सहायक बजटके द्वारा जहाँ वार्षिक बजटमें परिवर्तन कर दिये जाते हैं वहां सहायक धनमें यह बात नहीं है। सहायकधनवाली विधि वार्षिक बजटको मुख्य रखती है और जिस विभागमें धनकी कमी मालूम पड़ती है उस

सहायक व पूरक धन।

विभागको धनकी सहायता पहुँचा देती है। इससे वार्षिक बजट ज्योंका त्यों बना रहता है और उसके स्वरूपमें किसी प्रकारका भी भेद नहीं आता है। सहायक धनके विरोधियोंका कथन है कि सहायक बजटकी विधि ही उत्तम है क्योंकि उससे शासकोंकी त्रुटि, शासनकी शिथिलता तथा प्रबन्ध कर्त्ताओंको फजूल खर्चीका ज्ञान पूर्ण तौर पर हो जाता है। सहायक धन विधिमें इन्हीं बातका ज्ञान नहीं होता है। महाशय आदम इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं।

महाशय आदमका सहायक धन शैलीके विषयमें विचार

(१) शासनकी शिथिलता तथा शासकोंकी फजूल खर्चीका उत्तरदायित्व मुख्य शासक या देशके प्रधान पर निर्भर रहता है। नियामक सभाका इससे कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। यदि नियामक सभा वार्षिक बजटके साथ सहायक बजटको भी पास करे तो क्या इससे किसी भी तरीकेसे शासनकी शिथिलता या शासकोंकी फजूल खर्ची दूर हो सकती है? क्योंकि सहायक बजट पास करनेके समयमें मुख्य शासक तथा राज्याधिकारियोंका फिरसे चुनाव होता ही नहीं है, जिससे शासनमें कुछ भी सुधार हो सके। जो शासक तथा प्रबन्धकर्त्ता वार्षिक बजटके समयमें होते हैं वही सहायक बजटके समयमें भी होते हैं, इससे शासनके सुधारकी आशा करना दुराशामात्र है।

(२) यदि सहायक बजटके बनाते समय शासकोंके शासनकी भलाई बुराईका निरीक्षण भी किया जाय तो भी इससे कुछ भी पता नहीं लग सकता है, क्योंकि इस प्रकारके निरीक्षण-का समय वार्षिक होना चाहिये न कि मध्य वार्षिक। ५ या ६ मासके बाद ही किसीके शासन-का निरीक्षण करना और उसकी सफलता या असफलताका अनुमान करना भयंकर भूल करना होगा।

सहायक धन विधिको प्रति वर्ष काममें न लाना चाहिये

जहाँतक हो सके सहायक धन विधिको भी प्रति वर्ष काममें न लाना चाहिये, क्योंकि इससे बहुत नुकसान हो सकता है। वार्षिक बजटके बनानेमें उपसमितियाँ या शासक विभाग शिथि-लता कर सकते हैं और असावधानीके साथ बजट बना सकते हैं। अतः जहाँ तक हो सके सहायक धन विधिको विपत्तिके समयमें ही काममें लाना चाहिये। यह प्रायः देखा गया है कि शासकोंने अपनी मितव्ययिता तथा शासनकी उत्तमताको दिखानेके लिये वार्षिक बजटमें उतना धन न मांगा जितना कि उनको माँगना चाहिये और वर्षके मध्यमें खास खास कारणोंको दिखा कर सहायक धन प्राप्त कर लिया। परन्तु यह बहुत बुरी बात है। इससे राजनीतिक आचार गिर जाता है।

शासक विभाग की स्वतन्त्रता

शासक विभाग निम्नलिखित तीन तरीकोंसे धनकी कमी पूरी करता है।

(३) शासन विभागकी स्वतन्त्रता सहायक धन तथा सहायक बजट विधिके दोषोंसे तङ्ग आकर प्रतिनिधितन्त्र राज्योंने शासक विभागोंको यह स्वतन्त्रता दे दी है कि राज्य-नियमको भंग न करते हुए वह जिस प्रकार चाहे धनकी कमीको दूर कर लेवे। यही कारण है कि आज कल निम्नलिखित तीन तरीकोंसे शासक विभाग धनकी कमीके प्रश्नको हल करता है।

१ शासक विभागको यह अधिकार है कि नियामक सभा द्वारा स्वीकृत कार्योंमें स्वेच्छानुसार धनको व्यय करे, परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि उसके इस अधिकारमें भिन्न भिन्न देशोंने पर्याप्त बाधायें डाली हैं। फ्रान्सके १८९१ तथा १८७९ के राज्य नियम इन बाधाओंको बहुत उत्तम विधिसे प्रगट करते हैं।

एक विभागके धनकी कमीको दूसरे विभागके धनसे पूरा करना। भारतमें यह विधि हानिकर है।

२ शासक विभागको यह अधिकार है कि विशेष विशेष समयोंमें एक विभागके धनकी कमीको किसी दूसरे विभागके धनकी बचतसे दूर कर दे। भारत जैसे देशोंमें शासक विभागको इस प्रकारका अधिकार होना बहुतसी बुराइयोंको उत्पन्न कर सकता है क्योंकि यहाँ शासक विभाग अपने किसी भी कामके लिये जनताके प्रति उत्तरदायी नहीं है। प्रतिनिधितन्त्र राज्योंमें किसी हद तक यह अधिकार शासक विभागको दिया जा सकता है। "किसी हद तक" इसलिये

कहा है कि इस अधिकारको अन्तिम हद तक यदि शासक विभाग काममें लावे तो नियामक सभा द्वारा बजटका पास करना और भिन्न भिन्न विभागोंके लिये धनका नियत करना कोई अर्थ नहीं रखता है।

३ उपरि लिखित दोनों तरीकोंके सदृश ही तीसरा तरीका यह है कि कुछ धन प्रति वर्ष नियामक सभा पास कर दिया करे और इस धनको कहाँ खर्च करना है यह निश्चित न करे। शासक विभाग जहाँ धनकी कमीको देखे स्वेच्छापूर्वक उस धनको वहाँ खर्च कर देवे। इंग्लैण्डमें नियामक सभाने एक उपसमिति नियत की है जो इस संरक्षित धनके खर्चका भी निरीक्षण करती है और धन-व्ययमें राज्यकी स्वेच्छाचारिता रोकती है।*

संरक्षित धन विधि

६—जातीय धन कहाँ रखा जावे।

राज्य जातीय धनको किस स्थान पर रखे? इस प्रश्नका उत्तर भिन्न भिन्न सभ्य देशोंका इतिहास ही प्रगट कर सकता है। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशोंमें राष्ट्रीय बैंकका प्रचार है। इन देशोंके राज्य अपनी आयको इन्हीं बैंकोंमें रखते हैं। संयुक्त प्रान्त अमेरिकामें राष्ट्रीय बैंकके स्थान पर साराका सारा जातीय धन राज्य कोषमें

जातीय धन कहाँ रखा जाय?

* टाड, पार्लमेण्टरी गवर्नमेण्ट आफ इंग्लैण्ड जिल्द २, पृ० २०–२३ आदम्स, फाइनन्स पृ० १७१–१८१

रखा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य यही है कि अमेरिकन राज्यका धन व्यापार आदिमें न लग सके।

जातीय धन किस स्थान पर रखा जाय, इस प्रश्न पर विचार करनेसे पूर्व यह पूर्ण तौर पर समझ लेना चाहिये कि राज्यका धन उसी स्थान पर रखा जाना चाहिये जहाँ पर कि वह रक्षित तौर पर रहे और उस धनका इस प्रकार प्रयोग होना चाहिये कि उसके धनके बाज़ारमें सहसा ही पहुँचने तथा सहसा निकलनेसे सारे बाज़ारमें गड़बडी न मच जावे।

(क) इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनीमें कार्य क्रमः—

बैंकविधि

अभी लिखा जा चुका है कि इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशोंमें जातीय धन राष्ट्रीय बैंकोंमें ही रखा जाता है। इंग्लैण्डमें राज्य करके द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण धन बैङ्क आफ इंग्लैण्ड के पास रखा जाता है। उसके हिसाब किताबका निरीक्षण इंग्लैंडका राज्य ही करता है। इसी प्रकार फ्रांस तथा जर्मनीमें भी अपने अपने राष्ट्रीय बैङ्कोंमें जातीय धन रखा जाता है।

(ख) अमरीकामें जातीय धन खजानेमें ही रखा जाता है। भारतवर्षमें भी किसी हद तक यही विधि प्रचलित है। राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र में इस विधिको कोष विधि (ट्रेज़री सिस्टम), यह नाम दिया गया है।

कोषविधि

वर्णानुक्रमणिका ।

विषय — पृष्ठ

र